ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याऐं

ईफ़ा पब्लिकेशन्ज़ नई दिल्ली

ⓒ **सर्वाधिकार प्रकाशक के पक्ष में सुरक्षित**

पुस्तक का नाम : ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याऐं

पृष्ठों की संख्या :

प्रकाशन वर्ष :

मूल्य : 150

ISBN :

प्रकाशक

ईफ़ा पब्लिकेशन्ज़

161- एफ़, बेसमेन्ट, जोगा बाई, पोस्ट बाक्स न0 9708,

जामिया नगर, नई दिल्ली-110025

फ़ोनः 011- 26981327

ईमेलः ifapublications@gmail.com

सम्पादकीय मंडल (मज़्लिसे इदारत)

- मौलाना मुफ़्ती ज़फ़ीरुद्दीन मिफ़ताही
- मौलाना मुहम्मद बुरहानुद्दीन संभली
- मौलाना बदरुल हसन क़ासमी
- मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी
- मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी
- मुफ़ती उबैदुल्लाह असअदी

بسم الله الرحمن الرحيم

विषय सूची

	मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी	7
स्वागतीय भाषण	मौलाना मुहम्मद रिज़वान अल-क़ासमी	13
		29
ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्यायें		29
		39
		42
ग़ैर मुस्लिम देशों में रहने वाले मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं	मौलाना सफ़दर ज़ुबैर नदवी मौलाना हिशामुल हक़ नदवी	42
		167
ग़ैर मुस्लिम देशों में रहने वाले मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं	मुफ्ती जमील अहमद नज़ीरी	167
ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की कुछ समस्याएं	मुफ़्ती अनवर अली आज़मी	182
ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ समस्याएं	मुफ़्ती सैयद असरारुल हक़ सबीली	195

ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की कुछ समस्याएं	मुहम्मद हिशामुल हक़ नदवी	210
ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ समस्याएं	ज़फ़रुल इस्लाम आज़मी	225
		241
मौलाना बदरुल हसन क़ासमी, कुवैत		243
डा. नूरुद्दीन अल–खादिमी, टयूनेशिया		285
मुफ़्ती सैयद असरारुल हक़ सबीली		309
मौलाना राशिद हुसैन नदवी		327
		347
डा. मुहम्मद महरूसुल मुदर्रिस, बग़दाद, इराक़		349
डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही		360
		369
मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी		371
		377

☆☆☆

प्रस्तावना

इसलाम एक विश्वव्यापी और सर्वव्यापी धर्म है, और प्रत्येक परिस्थितियों में राह दिखाने और नेतृत्व की क्षमता रखता है। इसलिए स्वयं रसूलुल्लाह (सल्ल०) को विभिन्न असहनीय परिस्थितियों से गुज़ारा गया ताकि उम्मत के लिए प्रत्येक परिस्थिति में आपका आदर्श मौजूद रहे जिसे वह अपने लिए मार्ग दीप बना सकें, इसी लिए इस्लामी शरीअ़त जिस प्रकार से बहुसंख्यक स्थिति में मुसलमानों का मार्ग दर्शन करती है, उसी तरह अल्पसंख्यक स्थिति में भी मुसलमानों को कार्य योजना उपलब्ध कराती है। जहॉ रसूल (सल्ल०) के मदीने के जीवन का अधिकतर भाग ऐसे वातावरण का था, जिसमें सत्ता मुसलमानों के हाथ में थी, वहीं मक्का का जीवन उन मुसलमानों के लिए कार्य योजना उपलब्ध कराती है, जो अपने बलवान दुश्मनों के बीच खड़े हुए हैं, और मदीने के जीवन का प्रारम्भिक दौर एवं हब्शा प्रवास (हिजरत) के हालात उन मुसलमानो के लिए खिज़्रे-राह (मार्गदर्शन) हैं, जो ग़ैर मुस्लिम पड़ोसियों के साथ आपस में सुख व चैन और समझौते में प्राप्त धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ रह रहे हैं।

इस समय स्थिति यह है कि दुनिया की आधी मुस्लिम आबादी उन देशों में आबाद है जहॉ ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हैं। यह अल्पसंख्यक मुसलमान कुछ ऐसी समस्याओं से जूझ रहे हैं जिन से भूतकाल में कभी ऐसी परिस्थितियों से सामना न रहा, इसकी बुनियाद यह है कि पहले हर राज्य का एक निर्धारित धर्म होता था इसलिए पवित्र क़ुरआन के अध्ययन से

पता चलता है कि अधिकतर नबियों को राज सत्ता से टकराना पड़ता था, हालाँकि सम्माननीय नबियों को सत्ता की ललक नहीं थी बल्कि उनका कहना था, कि हमारे काम का बदला तो अल्लाह ही के पास है। लेकिन इसके बावजूद समय की सत्ता उनका घोर विरोध करती थी। स्वयं जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर नुबुवत उतरी तो उस समय बड़ी-बड़ी राज सत्तायें रूम, ईरान आदि एक विशेष धर्म के अनुयायी थीं, संभवत: इसी कारण यहूदी अरब प्रायद्वीप में शरणार्थी के रूप में मौजूद रहे, जहाँ कोई नियमित सरकार न थी, कहा जाता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मुहाजिर (प्रवासी), अन्सार (मददगार) और यहूदियों के बीच जो समझौता कराया था वह ऐसे ही समाज के निर्माण का एक प्रयास था, जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग एक दूसरे के मानवधिकारों का सम्मान करते रहें और एक दूसरे के साथ धार्मिक मामलों में अन्याय और अत्याचार का रास्ता न अपनायें, यदि विचार किया जाये तो हुदैबिया के समझौते की आत्मा भी यही थी।

इस्लामी विजय और उसकी सत्ता स्थापित हो जाने के बाद सदियों तक यह स्थिति रही कि अगर किसी क्षेत्र में मुसलमानों का क़दम पीछे हटता और वह क्षेत्र उनके अधिकार क्षेत्र से निकल जाता, तो वहाँ बचे खुचे मुसलमान भी दारुल इस्लाम (इस्लामी शासन वाला क्षेत्र) की तरफ़ प्रवास कर जाते, जहाँ मुसलमानों को अपने दीन पर अमल करने की स्वतन्त्रता न हो वहां से दारुल इस्लाम की तरफ़ प्रवास करने में सक्षम हों तो उन पर प्रवास अनिवार्य है। संभवत: पहली बार स्पेन में मुसलमानों की पराजय के बाद ऐसी स्थिति पैदा हुई कि उसके कुछ क्षेत्र जैसे क़र्तबा और बलन्सिया में कुछ मुसलमान रह गये जो विजय प्राप्त करने वाले ईसाइयों के साथ एक

समझौते के अन्तर्गत रुक गये थे, लेकिन बाद में उनके साथ धोखा किया गया और उन पर बड़े-बड़े अत्याचार किये गये। फ़ुक़हा (न्याय विधियों) ने इन क्षेत्रों के मुसलमानों की परिस्थितियों को सामने रखकर अमीर का चुनाव, क़ाज़ी (न्यायधीश) की नियुक्ति जुमा और ईद की नमाज़, और अनाथ बच्चों के अभिभावकों इत्यादि जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है, लेकिन उस समय आज की तरह मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या के ग़ैर मुस्लिम शासन में रहने की कल्पना नहीं की गई थी।

सत्तरहवीं शताब्दी से एक नई प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की धारणा उभरी। फिर सरकार और चर्च की लड़ाई और इस लड़ाई में सरकार की विजय ने धर्मनिरपेक्ष प्रजातन्त्र (Secular Democracy) की धारणा को विकसित किया, और आज समस्त संसार में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का प्रभाव है, धर्मनिरपेक्ष प्रजातन्त्र का अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा और तमाम धर्मों को, उनके अनुयायियों को, अपने अपने धर्म पर अमल करने की पूरी आज़ादी होगी। अब यह और बात है कि कुछ राज्यों में धर्म के दायरे को बहुत सीमित कर दिया गया है, और मात्र अक़ीदा (आस्था) व इबादत को इसमें रखा गया है, और कुछ देशों में इस दायरे को तुलनात्मक रूप से विस्तृत रखा गया है,जैसे भारत में पारिवारिक़ कानून में भी धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है, इस व्यवस्था ने एक नई स्थिति पैदा कर दी है और इस पृष्ठभूमि में बहुत से प्रवासी मुसलमानों की बड़ी संख्या यूरोप और अमेरिका में आबाद है, या जहॉं मुसलमान पहले से मौजूद थे, मुसलमानों की सत्ता के समापन के बाद भी वह अपने देश वासियों के साथ रह रहे हैं, जैसे भारत, चीन और रूस के कुछ प्रान्त।

इन देशों में मुसलमान न इतने स्वतन्त्र हैं कि अपनी पसन्द का क़ानून

बना सकें, और न वह इस्लामी दृष्टिकोण के विरुद्ध बनाये गये क़ानून को रोक सकें, और न इतने असहाय हैं कि अपने धर्म का पालन न कर सकें या उन्हें जिस बात पर मतभेद हो उसके विरुद्ध वातावरण बनाने में असमर्थ हों। अर्थात् वह एक नई परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं। इन देशों में ऐसी समस्यायें पैदा हो रही हैं जिन पर सोचने और रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पवित्र जीवन के विभिन्न पहलुओं के गहन विश्लेषण की आवश्यकता है जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे फ़ुक़हा ने राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर गहराई से चर्चा की है, लेकिन हमारी फ़िक़्ह (इसलाना शास्त्र) उस दौर में संकलित हुई जब मुसलमान सत्ताधारी थे इसलिए उस समय के इजतेहाद और नियम बनाने में उन हालात की झलक मिलती है, इसलिए हमें युद्ध और शान्ति समझौते के क़ानून और मुस्लिम देशों में आबाद ग़ैर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के अधिकार, जितने अधिक विस्तार से मिलते है, दारुल कुफ़्र (काफ़िर देश) में बसे मुसलमानों की समस्याओं के बारे में क़ानून उसका दसवाँ भाग भी नहीं हैं, बल्कि काफ़िर देश में बसे मुसलमानों के मसले इतने कम हैं कि उनको उंगुलियों पर गिना जा सकता है। इस पृष्ठभूमि में अकल्लियात की फ़िक़्ह (अल्पसंख्यकों के सिलसिले की फ़िक़्ह) बहुत महत्वपूर्ण है, और इन समस्याओं पर विचार करते हुए फ़िक़्ह के पूर्ववर्ती विशेषज्ञों के इजतेहाद से लाभ उठाने के साथ-साथ कुरआन व हदीस के आदेश, नबी (सल्ल०) के जीवन आदर्श, और शरीअत के बुनियादी सिन्द्धान्तों को भी सामने रखना अनिवार्य है।

अतः इस्लामी दुनिया, यूरोप और अमेरिका के विभिन्न फ़िक़्ही इदारों (संस्थाओं) ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्याओं पर सेमीनार किये हैं,

चूँकि प्रत्येक देश की समस्यायें अलग-अलग हैं इसलिए भारत के मुसलमान कुछ ऐसी समस्याओं से जूझ रहे हैं जिनसे पश्चिम के मुसलमान नहीं जूझ रहे हैं और पश्चिम में कुछ ऐसी समस्याएं पैदा हुई हैं जो भारत के मुसलमानों के सामने नहीं हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए अकेडमी ने चौदहवें फ़िक़्ही सेमीनार के विषयों में बुनियादी और मौलिक विषय के रूप में ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे हुए मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं को रखा था। उस समय जब यह विषय निर्धारित हो रहा था तो अकेडमी के संस्थापक मौलाना क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी साहब (अल्लाह उनकी क़ब्र को रोशन रखे) जीवित थे। उनकी बीमारी के कारण सेमीनार का काम आगे न बढ़ सका, और उनके देहान्त के बाद यह पहला सेमीनार उसी तौर तरीक़े के साथ आयोजित हुआ जिस तरह उनके जीवन में हुआ करता था, इससे अवश्य उनकी आत्मा को शान्ति मिली होगी। इस सेमीनार की मेज़बानी का प्रस्ताव हज़रत मौलाना मुहम्मद रिज़्वान अल-क़ासमी, भूत पूर्व उपाध्यक्ष अकेडमी की ओर से हुआ था। उनकी बीमारी के कारण सेमीनार के आयोजन में अधिक विलम्ब हुआ।

अन्ततः (1-3) जमादिल ऊला 1425 हिजरी तद्नुसार (मुताबिक) 20-22 जून 2004 को दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद के अहाते में यह सेमीनार आयोजित हुआ, अफ़सोस कि कुछ महीनों के बाद उनका भी देहान्त हो गया। इस तरह इस सेमीनार से हमारे दो बुजुर्गों की यादें जुड़ी हैं,अल्लाह तआला उनको भरपूर बदला दे।

यह संकलन जो आपके सामने प्रस्तुत है, इसी सेमीनार के शोधलेखों (Papers), विद्वान उलमा के दृष्टिकोणों, सेमीनार में होने वाली परिचर्चा, के विषय से सम्बन्धित सवालनामा (प्रश्नावली) और निर्धारित प्रस्ताव आदि

पर आधारित है। सौभाग्य से ये सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुए हैं। शोध पत्रों में जो अन्य विचार आये हैं वह अकेडमी के दृष्टिकोण के अनुकूल नहीं हैं बल्कि जो प्रस्ताव पारित हुए हैं वही अकेडमी के वास्तविक दृष्टिकोण हैं। इसलिए प्रस्ताव को शोध लेखों (Papers) से पहले रखा गया है ताकि पाठक पहली ही दृष्टि में विषय के भावार्थ से अवगत हो जायें। इस अवसर पर हजरत मौलाना मुहम्मद रिज़्वान अल-क़ासमी ने बड़ा आलिमाना (विद्वतापूर्ण) और अदीबाना (साहित्यिक) स्वागत भाषण प्रस्तुत किया था और इन पंक्तियों के लेखक ने कार्यवाही की रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें अकेडमी का अब तक का संक्षिप्त इतिहास भी आ गया है, इसलिए सेमीनार से संबन्धित होने के कारण ये दोनों लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं।

इस संकलन के सम्पादन का अधिक कार्य अकेडमी के साहित्य विभाग के रफ़ीक़ (सहकर्मी) जनाब इम्तियाज़ अहमद क़ासमी और अन्य साथी मौलाना सफ़्दर अली नदवी और मौलाना सिराज अहमद क़ासमी ने बड़े ध्यान पूर्वक इस कार्य में साथ दिया, अत: अनावश्यक बातों को निकाल दिया गया और कुछ चीजों के अनुवाद किए गये और जहॉं जहॉं आवश्यक हुआ उसे ठीक किया गया। आशा की जाती है कि सेमीनार के दूसरे शोध लेखों की तरह इसे भी विद्वान और साहित्यिक रूचि रखने वालों की ओर से इसका स्वागत होगा। और मेरी दुआ है कि अल्लाह तआ़ला ज्ञान और शोध के इस कारवॉं को अपने लक्ष्य की तरफ़ गतिमान रखे और उम्मत को इससे लाभान्वित करें।

ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

खादिम इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी

ख़ुत्ब-ए-इस्तक़्बालिया (स्वागतीय भाषण)

मौलाना मुहम्मद रिज़वान अल क़ासमी
प्रबन्धक-दारुल उलूम सबीलुस्सलाम, हैदराबाद

نحمده ونصلى على رسوله الكريم!

ज्ञान की इस बस्ती में, और शिक्षा के इस केन्द्र में सोच विचार के कारवां और ज्ञान और शोध की राह के मुसाफ़िरों का स्वागत करते हुए मुझे जितनी ख़ुशी का एहसास हो रहा है, उसको प्रकट करना ज़बान और क़लम से संभव नहीं है, यह दिन और यह घड़ी मेरे लिए और दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद के व्यवस्थापकों, शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए सौभाग्य का अवसर है। बल्कि यह पूरे शहर के लिए यादगार और ऐतिहासिक क़दम है, आप में से बहुत से लोग जानते होंगे, कि इस शहर में इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी (इण्डिया) की पहली ईंट रखी गई थी, और यहीं से उसने अपना सफ़र प्रारम्भ किया था, दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद को यह सम्मान प्राप्त है कि इसी शहर में हमें दूसरी बार इसकी मेज़बानी का अवसर मिल रहा है, अकेडमी के चौथे फ़िक़्ही सेमीनार का उद्घाटन करते हुए 9 अगस्त 1991 को अकेडमी के संस्थापक हज़रत मौलाना क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी ने कहा था, जिसके शब्द आज भी कान में गूँज रहे हैं वह ये हैं:

“शायद 1980 की बात है कि इसी हैदराबाद शहर में मुस्लिम पर्सनल

ला बोर्ड की बैठक हुई थी, और इस बैठक के कारण उलमा और शोध कर्ताओं की एक बड़ी संख्या यहां मौजूद थी, उनमें से कुछ उलमा को मैने एकत्र किया था, और इस बात पर चर्चा हुई कि भारत में नईं समस्याओं पर सोच विचार के लिए उलमा और आधुनिक शिक्षा के विशेषज्ञों का एक मंच होना चाहिए, जो हर तरह की गिरोही और जमाअती तंगियों से बचते हुए मात्र मिल्लत के हित के लिए काम करे और नई समस्याओं का हल उम्मत के सामने प्रस्तुत करे, इसलिए इस उद्देश्य के लिए मर्कजुल बहस-अल-इल्मी (Center for Academic Research) की स्थापना हुई। अल्लाह का शुक्र है, जो सफ़र हमने हैदराबाद की धरती से शुरू किया था, एक बार फिर इसी ज्ञान और साहित्य की उर्वर ज़मीन पर खेमा डाला है, यह शहर काफ़ी दिनों तक इसी देश में नहीं बल्कि पूरी दुनिया में इस्लामी शिक्षाओं के पुनर्जागरण का निशान समझा जाता था, और विद्वान इसको भारत का बग़दाद कहते थे, जिस रियासत में फ़तावा आदिल शाही और फ़तावा आलमगीरी जैसी फ़िक़्ह की किताबें जिनको गागर में सागर कहा जा सकता है लिखी गईं, जिनके माध्यम से कई फ़िक़्ह इस्लामी की पाण्डुलिपियां जो दफ़न थीं उनका मुद्रण (Printing) व प्रकाशन (Publishihg) हुआ और विद्वानों ने उनको हाथों हाथ लिया।"

क्या ही अच्छा होता! कि रहमत के फ़रिश्ते क़ाज़ी साहब को ख़बर करते कि उनके सपनों को साकार करते हुए एक बार फिर यह ज्ञान का कारवाँ इसी प्रतिष्ठित भूमि पर ख़ेमा डाले हुए है, और इसी जगह ज्ञान व शोध की यह महफ़िल पूरी चमक दमक के साथ सजी हुई है, जहाँ उन्हीं के मुबारक हाथों से मस्जिद उमर इब्ने ख़त्ताब की आधार शिला रखी गई

थी, अगर इस विनाशशील संसार की खबरें रूहों (आत्मा) की दुनिया तक पहुँचती हों तो अवश्य आज का दिन उनके लिए संतोष का दिन होगा।

इन पंक्तियों के लेखक ने जब क़ाज़ी साहब के देहावसान से कुछ महीने पहले चौदहवें फ़िक़्ही सेमीनार के लिए उनकी इच्छा का संकेत पाकर मेज़बानी का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो उन्होंने उसी परिचित प्यार और मुहब्बत से बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लिया और इस सिलसिले में उन्होंने उत्साह बढ़ाने वाली भाषा में उत्तर लिखा। आज ये सारी बातें मन के क्षितिज पर बार-बार आती हैं, और उनकी याद ताज़ा हो जाती है, और उनकी जुदाई का घाव हरा हो जाता है, फिर भी शायर की यह पंक्तियाँ मरहम का काम करती हैं:

होगा किसी फ़लक पर, वह ख़ुरशीद जलवागर
कहते हैं आफ़ताब कभी डूबता नहीं

(वह सूरज किसी आसमान पर बिराजमान होगा क्योंकि कहा जाता है कि सूरज कभी डूबता नहीं है)

हज़रत क़ाज़ी साहब मेरे उस्ताद भी थे और आपसे पारिवारिक निकटता भी थी, लेकिन उन सम्बन्धों में दो दिशाएं मेरी निगाह में महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि मैं समसामयिक (Contemporary) शिक्षा की ओर जाने वाला था, और उस दिशा में मैं चल चुका था, क़ाज़ी साहब की इच्छा और उनके बार-बार कहने पर मेरी शिक्षा की दिशा में परिवर्तन किया गया और शिक्षा के सम्बन्ध में मुझे दुनिया से दीन की तरफ़ मुड़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अल्लाह की कृपा से जो कुछ मुझे दीन की सेवा करने का मौक़ा मिला और वह आज भी जारी है, उसके असली प्रेरक क़ाज़ी साहब

थे। अगर अल्लाह तआ़ला ने हमसे कोई भला काम कराया तो वह उसके प्रतिफल में बराबर के हिस्से दार होंगे।

उनका दूसरा एहसान हमारा वैचारिक प्रशिक्षण था और वह उम्मत की एकता के आवाहक थे, विशाल हृदय और कुशाग्र दृष्टि उनकी विशेषतायें थीं, उनकी बैठकों में रहने और उनकी नसीहतों को सुनने और उनके प्रशिक्षण में रहने से मुझको सन्तुलन और विस्तृत सोच का सबक़ पढ़ने का अवसर मिला, इसलिए क़ाज़ी साहब के विचारों से समानता का एहसास उस समय भी होता था, और अब भी होता है, अल्लाह तआला उनकी क़ब्र को नूर से भर दे और उनके छोड़े हुए कामों को करने का अवसर प्रदान करे।

आज इस अवसर पर मैं यह घोषणा (ऐलान) करते हुए बहुत ख़ुश हूँ, और मैं स्वयं अपने लिए सौभाग्य मानता हूँ कि मस्जिद के पास निर्माणाधीन कान्फ़्रेंस हाल हज़रत क़ाज़ी साहब के नाम पर समर्पित होगा। चूँकि उन्होंने मस्जिद उमर इब्ने ख़त्ताब की बुनियाद रखी थी और उसके निर्माण के लिए अपना बहुमूल्य उपहार पाँच हज़ार रूपये के रूप में दिया था, अब मस्जिद के नीचे, जिसका निर्माण पूरा होने वाला है, वह हर तरह से इस ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि, इस शहर से दिली लगाव और यहाँ से हज़रत क़ाज़ी साहब के नेतृत्व में फ़िक़्ही कारवाँ के गठन का तक़ाज़ा है कि इस हाल का नाम ''क़ाज़ी हाल'' ही रखा जाये, प्रसिद्ध भी है:

"बुलबुल हमीं कि क़ाफ़िया गुल शुद बस अस्त"

(बुलबुल के लिए फूलों की एक क़तार ही काफ़ी है)

आदरणीय मेहमानों! यह भी एक वास्तविकता है कि आज आपका यह ऐतिहासिक इज्तिमा एक ऐतिहासिक शहर में हो रहा है, मुहम्मद अली क़ुतुब शाह, जो अपने समय का इबादत गुज़ार, सन्यासी और ज्ञान-मित्र बादशाह

था, उसने 990 ई॰ हिजरी (1599 ई0) में इस शहर की बुनियाद रखी और दकनी भाषा में अल्लाह से दुआ की:

"मेरा शहर लोगॉं सों मामूर कर"

(मेरे शहर को लोगों से आबाद कर दे)

बादशाह की यह दुआ ऐसी कुबूल (स्वीकार) हुई कि उसके जीवन में ही शहर ऐसा आबाद हुआ कि उसने अपने अच्छे चुनाव (पसन्द) की स्वयं प्रसंशा की और कहा:

लतीफ़ वो दिल कुशाब आब वह वाए
मुबारक मंज़िले, फ़रखंदा जाये

(जिसका वातावरण बहुत अच्छा और ख़ुश करने वाला है जगहें बरकत वाली हैं और यह प्रसन्न करने वाली जगह है)

फिर इस शहर की शायरों, विद्वानों, सूफ़ियों, साहित्यकारों ने सदैव प्रसंशा की है जैसा कि अमीर मीनाई ने कहा:

अल्लाह अल्लाह रे बहारे चमनिस्ताने दकन
हूर पर है न, ये जोबन, न परी पर ये फबन

शाह नसीर ने जब दिल्ली से हैदराबाद जाने के लिए अपना सामाने सफ़र बांधा तो अपने प्यारे शागिर्द से कहा:

वह बहिश्त है बहिश्त में जाता हूँ चलो तुम भी चलो

मौलाना हाली और दाग़ ने इस शहर से अपने लगाव की भावनाएं इस तरह उडेली हैं और मीर अहसन ने इस शहर के लिए अल्लाह से दुआ की:

सर सब्ज़ यह शहर हैदराबाद रहे
या रब आबाद हैदराबाद रहे

दाग़ देहलवी का यह शेअर तो बहुत प्रसिद्ध है:

नहीं हैदराबाद पेरिस से कुछ कम
यहॉं भी सजे हैं मकॉं, कैसे कैसे

मुंशी बिशेश्वर प्रसाद मुनव्वर लखनवी की पूरी एक कविता "दकन" पर है, जिसका एक शेअर है:

हसीं सुब्हे दकन है, हसीं शामे दकन
जमील फ़र्शे दकन, जमील बामे दकन

यह शहर सूफ़ीयों का शहर है, जहॉं हज़रत शाह मुईनुद्दीन चिश्ती, जो हज़रत शाह ख़ामोश के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्होंने यहॉं अपना निवास बनाया और इसी शहर को यह प्रतिष्ठा प्राप्त है कि इसी में शेख़ मख़्दूम अलाउद्दीन अन्सारी और हज़रात यूसुफ़ैन आबाद हुए और कितने ही सूफ़ी और बुज़ुर्ग़ यहॉं दफ़न हैं।

यह उलमा और शोधकर्ताओं का शहर है, साहित्य की उर्वर ज़मीन है, इतिहास के हर दौर में, ख़ास तौर पर निकट भूत काल में, शोध कार्य करने वाले उलमा के अवतरित होने और ठहरने का जो सम्मान इस शहर को हासिल है, उसकी मिसाल कम मिलेगी, जैसे मौलाना सैयद मनाज़िर अहसन गीलानी, मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ॉं शेरवानी, मौलाना इलियास बर्नी, मौलाना अब्दुल क़दीर बदायूनी, मौलाना हाफ़िज़ मुहम्मद देवबन्दी, मौलाना शिब्ली नोमानी, मौलाना शब्बीर उसमानी, मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी, मौलाना अब्दुलबारी नदवी, मौलाना माहिरुल क़ादरी और बहुत से उलमा हैं, जिनके साहित्यिक कारनामों ने इस शहर की चमक दमक में चार चॉंद लगाए, और स्वयं इस क्षेत्र से जामिया निज़ामिया के संस्थापक मौलाना अनवारुल्लाह ख़ॉं

फ़ारूक़ी, दकन के मुहद्दिस (हदीस के माहिर) मौलाना अब्दुल्लाह शाह साहब और मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी जैसे बुद्धिजीवी पैदा हुए, और पेरिस में इस्लामी दावत के एक महान व्यक्तित्व, एक ज़माने तक यहां मौजूद थे, जिन्होने इस्लामी दुनिया में शोध और लेखनकार्य की एक मिसाल क़ायम की, और इस राह के नये चिराग़ जलाये, मेरा तात्पर्य डाक्टर मुहम्मद हमीदुल्लाह से है, उनका सम्बन्ध भी इसी 'बग़दाद-ए-इल्मी' से है। अपने समय के मशहूर ख़तीब (प्रवक्ता) और रसूलुल्लाह सल्ल0 की बाग़ की चहकती बुलबुल नवाब बहादुर यार जंग भी ज़मीन के इसी ख़ित्ते से, पूरी उम्मत के लिए एकता और मुहब्बत का पैग़ाम अपने ख़ास सुर और लय के साथ देते रहे हैं।

यह साहित्यकारों और शायरों का शहर है जहाँ उर्दू के पहले दीवान (संकलन) लिखने वाले शायर 'मुहम्मद अली क़ुतुब शाह, पैदा हुए। और उर्दू भाषा के ज्ञात इतिहास से पहले मशहूर शायर वली दकनी भी यहीं के रहने वाले थे, इसी शहर में अमजद हैदराबादी जैसे सुधारक और दीनदार, सफ़ी जैसे क्रांतिकारी शाज़ तमकनत जैसे नई शैली के प्रस्तुत कर्ता और ओज याक़ूबी जैसे ठोस और पुरानी सभ्यता के रक्षक शायरों को पैदा किया।

साहित्य और शिक्षा व उर्दू भाषा की जो सेवा इस शहर ने की है उसको कभी भुलाया नहीं जा सकेगा, यहीं दारुत्तर्जुमा (अनुवाद केन्द्र) की स्थापना हुई और 1917 से 1950 तक उसने विज्ञान, दर्शन, और इतिहास आदि जैसे स्तरीय साहित्य को उर्दू में परिवर्तित करने का जो महान कार्य किया है उसकी मिसाल वह स्वयं है। इसी दारुत्तर्जुमा में उर्दू भाषा की उर्दू परिभाषिक शब्दावली(Terminology) बनाने का काम किया और इसके

लिए पूरे देश से चुने हुए उलमा और साहित्यकारों की सहायता ली गई, जिनमें मौलवी ज़फ़र अली ख़ाँ, मौलवी अब्दुल हलीम शरर और मौलाना अब्दुल्लाह अमादी आदि उल्लेखनीय हैं।

यहां 'दायरतुल मआ़रिफ़ अल उसमानिया' की स्थापना हुई जिसने इस्लामी साहित्य की सैकड़ों हस्तलिपियों को जीवन दान दिया और उनको प्रकाशित करवाया। कंजुल आमाल बैहेक़ी, मुश्किलुल आसार, अनसाब (Geneelogy) इमाम मुहम्मद की किताब अल-अस्ल, मौलाना अब्दुल हई (सैयद अबुल हसन अली नदवी के पिता) की किताब नुज़हतुल ख़्वातिर और फ़िक़्ह व हदीस, तफ़्सीर व दर्शन तिब्ब (आयुर्विज्ञान) व साहित्य, जीवनी और भाषा तथा दर्शन साहित्य की कितनी ही किताबें हैं जो अपने मुद्रण व प्रकाशन (Printing Publishing) और त्रुटि संशोधन और व्याख्या में दायरतुल मआ़रिफ़ की ऋणी हैं। इस तरह से इस शहर ने अपने मूल्यवान स्तरीय और बड़े पुस्तकालयों के द्वारा भी ज्ञान व साहित्य की सेवा की है, मुफ़्ती मुहम्मद सईद ख़ाँ की लाइब्रेरी सईदिया (जो अब चेन्नई में है) अपने ज्ञान के मोतियों के लिए प्रसिद्ध है। आसिफ़ीया लाईब्रेरी देश की कुछ लाइब्रेरियों में से एक है, सालार जंग म्यूज़ियम की लाइब्रेरी हस्तलिपियों के लिए विश्व विख्यात है, और उर्दू भाषा की बहुत महत्वपूर्ण लाइब्रेरियां शहर में मौजूद हैं, और इस्लामी साहित्य की हस्तलिपियों की रक्षा में शायद पटना व कलकत्ता के बाद यह शहर सबसे आगे है और हस्तलिपियों और अद्वितीय पुस्तकों को अपने दामन में समेटने में पूरे विश्व में यह शहर विख्यात है।

एक ज़माना था कि इस शहर की चमक दमक बादशाह की तरफ़ से

मिलने वाली धन राशि और सरकारी छत्र-छाया में चलने वाली साहित्य की सेवाओं से थी, 1948 के बाद हालॉकि वह चमक दमक शेष न रहीं, लेकिन ईमान का जोश और इस्लाम के लिए सेवाएं, साहित्य की देख भाल, और ज्ञान मित्रता का जो सबक़ यहाँ के पूर्वजों ने अपनी आने वाली पीढ़ी को दिया था, उसकी चिंगारियॉ अब भी मौजूद थीं। उसका प्रभाव यह पड़ा कि यहाँ नये सिरे से साहित्यिक मंच और संस्थाएं स्थापित हुईं, संगठन और पार्टियॉ स्थापित हुईं और जो पहले से स्थापित थीं उनमें तेज़ी आई और दीनी मदरसे और मकतब स्थापित हुए जिनकी आवश्यकता दूसरी जगहों की तुलना में यहाँ अधिक थी, इसी प्रकार अब यहाँ महत्वपूर्ण आधुनिक स्कूल कालेजों की अच्छी संख्या है, बहुत से इन्जिनियरिंग कालेज, मेडिकल कालेज और हास्पिटल भी हैं, यह सब अल्पसंख्यक संस्थाओं के मुस्लिम प्रशासन के अन्तर्गत कामयाबी के साथ चल रहे हैं।

सज्जनों! यह एक सच्चाई है कि 'इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी इण्डिया' की स्थापना भारत के साहित्यिक, इस्लामी इतिहास का एक सुनहरा अध्याय और रोशन कारनामा है, अकेडमी ने नई समस्याओं के समाधान करने के अतिरिक्त मुफ़्तियों में ऐसी समस्याओं पर सोचने और शोध करने की जो उमंग पैदा की है, कोई न्यायवादी उसके महत्व को झुठला नहीं सकता। क्या ही अच्छा होता कि लोग अपनी मानसिक तंगियों से बाहर निकल कर सच्चाई को मान लेते। इस सिलसिले में अरब व अजम के सर्वप्रिय साहित्यिक और इस्लाम की तरफ़ बुलाने वाला व्यक्तित्व इस्लामी चिन्तक, हजरत मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी के उन अनुभवों का उल्लेख करना चाहता हूं जो उन्होंने अकेडमी के चौथे फ़िक़्ही

सेमीनार, जिसका आयोजन दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद में हुआ था उस अवसर पर उन्होंने इस लेखक को सन्देश के रूप में एक पत्र के उत्तर में भेजा था। मौलाना फ़रमाते हैं:

"किसी इस्लामी देश और मिल्लत के किसी महत्वपूर्ण तत्व और भाग के लिए यह काफ़ी नहीं है कि वह संख्या में बड़ी हो और आर्थिक औार राजनीतिक हैसियत से वह प्रभावशाली हो, इसकी दीनी समझ और कार्य क्षमता, उपयोगिता और न केवल उसकी जीवित रहने की योग्यता बल्कि नेतृत्व की योग्यता के सबूत के लिए यह भी अनिवार्य है कि यह पता चले कि उसके विकास और नई पीढ़ी और नये युग के नेतृत्व का प्रमाण देने के लिए वह क्या संघर्ष कर रही है, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह क्या तरीक़े प्रयोग कर रही है।"

इसी सिलसिले का एक महत्वपूर्ण कार्य इस्लामी शरीअत और फ़िक़्ही आदेशों के इस बदले हुए परिवेश में न केवल अमली होने की योग्यता का परिचायक है बल्कि उसकी बड़ाई को भी सिद्ध करता है, इस सिलसिले का एक बुनियादी और महत्वपूर्ण कार्य यह है कि कुरआन व सुन्नत, इस्लामी शरीअत और फ़िक़्ही आदेश की रोशनी में बदले हुए हालात और नई पैदा होने वाली समस्याओं के बारे में शरीअत के आदेश और समस्यायें और उनके समाधान प्रस्तुत किए जायें, शरअी उसूलों की अबदीयत (अपरिवर्तनीयता), फ़िक़्ही भण्डार का विस्तार, तर्क द्वारा नतीजा निकालने की योग्यता का प्रमाण दिया जाये, इस सिलसिले में इस्लामी फ़िक़्ह अकेडमी (इण्डिया) ऐसी संस्था है जिसपर भारत के मुसलमानों को

स्वाभिमान और इससे अधिक अल्लाह का शुक्र अदा करने का हक़ हासिल है, यह शुद्ध रूप से एक रचनात्मक, वैचारिक और साहित्यिक और फ़िक़्ही संगठन है, जिसमें देश के प्रसिद्ध और सही अक़ीदे वाले और सही सोच रखने वाले और विस्तृत ज्ञान वाले उलमा और कार्यकर्ता शामिल हैं।

ख़ुशी की बात यह है कि हज़रत मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी ने अकेडमी के लिए जो पथ रेखाएं और कार्य प्रणाली निर्धारित की थीं उन्हीं पर अकेडमी का सफ़र जारी है, वह काम लगातार चल रहा है, और उसकी साहित्यिक और फ़िक़्ही कोशिशों में कोई विराम नहीं लगा है, इसमें जहॉं अकेडमी के संस्थापक की ईमानदारी का दख़ल है वहीं बड़ा हिस्सा, इस कार्य के लिए व्यक्तित्व निर्माण की तरफ़ विशेष ध्यान का भी है, वह कहा करते थे कि निचली सतह से नेतृत्व को उठना चाहिए, और नई पीढ़ी को काम के लिए तैयार करना चाहिए, जिन-जिन संस्थाओं से वह जुड़े थे उन सभी संस्थाओं में उन्होंने अमली तौर पर यही कार्य प्रणाली अपनायी। इस पृष्ठभूमि में हम सब पर अकेडमी के सिलसिले में ज़िम्मेदारी आती है कि हम ज्ञान, शोध, दीन और विवेक की अमानत को समेट कर न रखें बल्कि उसको आगे बढाएं, उसे आने वाली पीढ़ी तक पहुॅंचायें, और उससे होने वाले लाभ के दायरे को फैलाने का प्रयास करें।

सज्जनों! हम भली भांति जानते हैं कि जब कारवॉं चलता है तो गर्द उठती है लेकिन गर्द मंज़िल के चाहने वालों के लिए और हिम्मत और इरादा रखने वालों के लिए रुकावट नहीं बनती है, हमें इस्लामी चिन्तक मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी का यह विवेक पूर्ण वाक्य याद है, "विरोध को मनीआर्डर की वापसी की रसीद समझना चाहिए" अर्थात रसीद

बताती है कि जो संदेश आप पहुँचाना चाहते थे वह पहुँच गया। मौलाना अली मियाँ यह भाव पूर्ण शेअर अक्सर पढ़ा करते थे:

गिला नहीं जो गुरेज़ाँ हैं चन्द पैमाने
निगाहे यार सलामत हज़ार मयख़ाने

हमारी निगाह अल्लामा इक़बाल के इस निगाह खोल देने वाले शेअर पर भी है;

जहाँ बानी से है दुश्वार तर कारे जहाँ बीनी
जिगर ख़ूँ हो तो चश्मे दिल से होती है नज़र पैदा

सज्जनों! इस सेमीनार के लिए अकेडमी ने जिन विषयों को चुना है वे बहुत महत्वपूर्ण हैं, ज़रूरी और सही समय पर हैं और अकेडमी के ज़िम्मेदारों की समय की समझ की दलील भी हैं, "मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों के सम्बन्ध" की समस्या, वर्तमान परिस्थितियों में विशेष रूप से 11 सितम्बर के बाद इस्लाम के विरुद्ध अमेरिका और पश्चिमी देशों के अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और दुष्प्रचार अभियान ने इस समस्या को बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। अत: इस विषय पर बहुत गहराई से सोच विचार की आवश्यकता है, ताकि मुसलमानों को वर्तमान परिस्थितियों में सही कार्य प्रणाली का सन्देश भी मिले, और इस्लाम के बारे में जो दुष्प्रचार हो रहा है उसका भी उत्तर दिया जा सके। इस पृष्ठभूमि में "इस्लाम और विश्व शांति" का विषय भी बहुत महत्वपूर्ण है, इस विषय के अन्तर्गत हमें दुनिया के सामने शांति और अमन और मानव सम्मान के आधार पर इस्लामी शिक्षा को प्रस्तुत करने का मौक़ा मिलेगा।

आज मुसलमान जिन परिस्थितियों को झेल रहे हैं, शिक्षा में पिछड़ापन

और ग़रीबी ने उन्हे जिस तरह जकड़ रखा है, इनके सामाधान में वक़्फ़ सम्पत्तियों से बहुत सहायता मिल सकती है, इस बात की आवश्यकता है कि देश भर में मुसलमानों की जो मूल्यवान वक़्फ़ सम्पत्तियां मौजूद हैं उन्हें उपयोगी और फलदायक बनाया जाये, मुसलमानों की शैक्षिक और आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उनके प्रयोग के अवसर प्रदान किये जायें तथा मुसलमानों में वक़्फ़ करने की भावना को उभारा जाये, मुझे आशा है कि सेमिनार में इस विषय पर होने वाली चर्चा और पारित प्रस्ताव इस सिलसिले में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे। इसी तरह खाद्य सामग्री और दवाओं में जिलेटिन का प्रयोग बहुत अधिक हो रहा है इस पृष्ठभूमि में इस विषय के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता, आशा है इन समस्याओं पर सेमीनार जो फ़ैसले करेगा उसके अनुकूल और दूरगामी प्रभाव पड़ेंगे।

माननीय सज्जनों! दारुल उलूम सबीलुस्सलाम हैदराबाद जिसको आपने आतिथि का सम्मान दिया है 1393 हिजरी 1972 ई0 में इसकी स्थापना हुई, और स्थापना के 16 वें वर्ष 1408 हिजरी में दौरे हदीस का उद्घाटन हुआ। फिक़्ह के मैदान में कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने पर शुरू से इस जामिया के जिम्मेदारों के साथ-साथ शिक्षकों का विशेष ध्यान रहा है। इसी उद्देश्य के लिए 1408 हिजरी में तख़स्सुस फिल-फ़िक्ह (फ़िक्ह में विशेष योग्यता) के दो वर्षीय कोर्स का उद्घाटन हुआ, बातिल फ़िरक़ों, नये पुराने धर्मों, व्यवस्थाओं के अध्ययन और इस्लाम के विरुद्ध चलने वाले आन्दोलन की जानकारी और साथ-साथ इस्लाम की तरफ़ दावत के उसूलों की जानकारी के लिए 1410 हिजरी में तख़स्सुस फ़िद् दावह का विभाग स्थापित हुआ, 1422 में मस्जिद के इमामों के प्रशिक्षण के लिए 'तद्रीबुल

अइम्मा' का एक वर्ष का कोर्स प्रारम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त क़ुरआन व हदीस और अरबी साहित्य में भी निकट भूतकाल में विशेष अध्ययन के विभाग स्थापित हुए और आधुनिक शिक्षा प्राप्त नौजवानों के लिए अल्पकालिक आलिम कोर्स की स्थापना हुई, जामिया ने आधुनिक शिक्षा और समाज सेवा की तरफ क़दम बढ़ाते हुए कम्प्यूटर और टेलरिंग प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया, और 'अस्सलाम अस्पताल' का निर्माण कार्य तीव्र गति से चल रहा है, इन विभागों से न केवल इस जामिया के विद्यार्थियों और शिक्षकों को लाभ होगा बल्कि आस-पास के मुसलमान भी इससे लाभ उठा सकेंगे, आप सज्जनों से निवेदन है कि इस संस्था के स्थायित्व और विकास के लिए सच्चे और अच्छे परामर्श दें और दुआओं में याद रखें।

मैं इस अवसर पर अरब दुनिया, इस्लामी दुनिया और देश के कोने-कोने से आये हुए उलमा मुफ्ती और उम्मत के नेताओं को दिल की गहराई से धन्यवाद देता हूँ कि आपने हमें मेज़बानी का अवसर दिया, इस मौक़े पर हम जामिया के शिक्षकों और विद्यार्थियों और सेमीनार के स्वागत कमेटी के सदस्यों के बहुत आभारी हैं कि इनके सामूहिक प्रयासों से ही सेमीनार का आयोजन हो सका। इस अवसर पर स्वागत कमेटी के सभी सदस्यों विशेष रूप से जनाब सैयद जमीलुद्दीन, जनाब मुहम्मद जाफ़र, जनाब मीर मज़हरुद्दीन, जनाब मुहम्मद सलमान सिद्दीक़ी और उनके मित्र जनाब एस.ए.अन्जुम, जनाब अब्दुल लतीफ़ उसमान, जनाब अब्दुल मुक़्तदिर, डा. मुहम्मद यूसुफ़ आज़म, जनाब अब्दुल मजीद फ़हीम, जनाब अब्दुल वहीद, जनाब आफ़ताब पाशा, जनाब मुहम्मद इक़बाल अली, जनाब सैयद उमर हुसैनी, जनाब मुहम्मद सलीम, जनाब सफ़्दर अली ख़ाँ, जनाब अताउर्रहमान,

जनाब इफ़्तिख़ार हुसैन और जनाब नदीम हुसैन का आभारी होना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिनका सहयोग हर क़दम पर साथ रहा और दिन रात सेमीनार को कामयाब बनाने के लिए ध्यान देते रहे और चिन्तित रहे। उर्दू अखबारों, सियासत, मुन्सिफ़, रहनुमा-ए-दकन, अवाम, अंग्रेज़ी और तेलुगू अखबारों और दूसरे मीडिया का भी आभारी हूँ जिनका पूरा पूरा सहयोग हमें प्राप्त रहा।

इसी के साथ आप सज्जनों से निवेदन है कि हमारी तरफ़ से अगर कोई कमी हो तो हमें क्षमा करें।

अन्त में एक तरफ़ आप सज्जनों पर नज़र डालता हूँ तो शायर की यह आवाज़ दिल की धड़कन बन जाती है:

ज़बान क़ासिर है क्योंकर उसका शुक्रिया अदा होगा
इनायत का, तवज्जों की नज़र का, मेहरबानी का

दूसरी ओर ज़रा कान लगाता हूँ तो इस्लामी फ़िक़्ह अकेडमी के ज़िम्मेदारों और कार्य कर्ताओं के लिए लाहौर से अल्लामा इक़बाल यह सन्देश दे रहे हैं:

हर एक मक़ाम से आगे गुज़र गया महे नव
कमाल किस को मयस्सर हुआ है बे तगो दौ

इक़बाल का सन्देश मजलिस में भाग लेने वालों के लिए यह है:

मिल्लत के साथ राब्ता उस्तावार रख
पैवस्ता रह शजर से उम्मीदे बहार रख

इक़बाल अपने मर्दे दर्वेश और दीनी मदरसों के लोगों का ध्यान इस

तरफ़ खीचते हैं:

हवा है गो तुंन्दो तेज़ लेकिन, चिराग़ अपना जला रहा है
वह मर्दे दर्वेश जिसको हक़ ने, दिए हैं अन्दाज़े ख़ुसरुवाना

दुआ है कि अल्लाह तआला सेमीनार को कामयाब और नतीजा ख़ेज़ बनाये और हिम्मत व साहस के साथ इसका सफ़र जारी रहे और शरीअत के स्रोंतों की रोशनी में नई आने वाली समस्याओं का हल सामूहिक सोच विचार के माध्यम से क़ौम के सामने लगातार आता रहे और उलमाओं, फ़ुक़हा और मुफ़्तियों के जीवन में कलीम आजिज़ का यह शेअर साकार रूप लेता रहे:

कोई बज़्म हो कोई अन्जुमन यह शिआर अपना क़दीम है
जहॉं रोशनी की कमी मिली वहीं एक चिराग़ जला दिया

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्यायें

मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या ऐसे देशों में आबाद है जहाँ ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हैं और वहाँ राजनीतिक और आर्थिक रूप से ग़ैर मुस्लिमों को सत्ता प्राप्त है। उन देशों की परिस्थितियाँ जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं उन क्षेत्रों से बिल्कुल अलग हैं जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हैं, और विशेष रूप से जब मुसलमान किसी ऐसे देश में हों, जहाँ राजनीतिक सत्ता ग़ैर मुस्लिमों के हाथ में हो और मुसलमान इस दशा में न हों कि राजनीतिक व्यवस्था शुद्ध इस्लामी शिक्षाओं के आधार पर मज़बूत कर सकें। यही कारण है कि परिस्थितियों और स्थान के बदलने से आदेश (अहकाम) भी बदल जाते हैं, और हर समय के फ़ुक़हा शरई क़ायदे के रूप में इस बात को मानते चले आये हैं कि आवश्यक अवसरों और साधारण हालात में अर्थात इज़्तेरार (मजबूरी) और इख़्तेयार (अपनी पसन्द से अमल की क्षमता) दोनों के आदेश एक दूसरे से अलग हैं; अतः क़ुरआन व हदीस के अनुसार फ़ुक़हा ने स्थायी क़ायदा बनाया है:

"لا ينكر تغير الاحكام بتغير الزمان"

ज़माने के बदलाव के साथ आदेशों में बदलाव से इन्कार नहीं किया जा सकता है" और इसी तरह मुज्तहिद इमामों में से इमाम शाफ़ई का कथन है:

"يجوز فى الضرورة ما لا يجوز فى غيرها" (الأم ٤-١٦٨)

और स्पष्ट है कि जहाँ मुसलमान ग़ैर मुस्लिम क़ौमों के साथ रह रहे हैं और सत्ता उनके हाथ में न हो वहाँ वैसा रवैया नहीं अपना सकते जहाँ सत्ता मुसलमानों के हाथ में हो, अतः ऐसी स्थिति में उनके लिए विस्तृत और आसानी का रास्ता निकालना उलमा के लिए अनिवार्य है। जैसे फ़ुक़हा के यहाँ यह स्वीकार्य क़ायदा है: "اذا ضاق الامر اتسع" (जब कोई मामला तंग होता है तो वह स्वयं विस्तृत हो जाता है) कुछ विद्वानों ने फ़िक़्हुल अक़्लियात (अल्पसंख्यकों की समस्याओं का विचार) पर एक स्थाई विषय के रूप में चर्चा करने और सोचने समझने की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया है। इस पृष्ठभूमि में कुछ महत्वपूर्ण समस्यायें सामने आई हैं जिनमें एक समस्या ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों का चुनाव में भाग लेना और दूसरी समस्या एक साथ रहना और सामाजिक मेल मिलाप की है, पहली समस्या बुनियादी तौर पर नई राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत पैदा हुई है इसलिए स्पष्ट है कि क़ुरआन व हदीस में उसका कोई स्पष्ट आदेश नहीं मिल सकता और पहले एवं बाद में फ़ुक़हा के यहाँ इसका स्पष्टीकरण मिलना कठिन है इसलिए फ़ुक़हा के इज्तिहाद भी अपने ज़माने और घटनाओं और हालात के अनुकूल होते हैं, तो इस समस्या पर सोचने के लिए तीन आधारभूत बातें सामने रहनी चाहिएं।

प्रथमः मौजूदा लोकतन्त्र अपनी आधारभूत सोच के अनुसार इस्लाम के विचार से पूरे तौर पर अनुकूल नहीं है।

द्वितीयः अधिकार में होने और मजबूर होने की स्थितियों में अन्तर।

तृतीयः यदि दो बुरी चीजें सामने हों और दोनों से बचना संभव न हो तो जिसमें कम बुराई हो उसे अपनाया जाये।

यदि इन सब बातों को सामने रखकर सोचा जाये तो स्थिति यूँ बनती है कि वोट देने की दशा में यह बुराई है कि कभी कभी पार्लियामेंट में ऐसे नियम व क़ानून बन जाते हैं जो शरअ़ी आदेशों के विरुद्ध होते हैं या मुसलमानों के क़ौमी और मिल्ली हितों के विपरीत होते हैं।

और दूसरी तरफ़ यह भी एक वास्तविकता है कि आज लोकतांत्रिक व्यवस्था में वोट बहुत बड़ी ताक़त है और इसी ताक़त से राजनीतिक और सामाजिक जीवन में क़ौमों का स्तर निर्धारित होता है, और उनके अधिकारों की रक्षा होती है।

अगर विधायिका Legislature में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व होता है या ऐसे सदस्य वहाँ उपस्थित हों जिनके चुनाव में मुस्लिम वोट प्रभावी हों तो इसके द्वारा मुसलमानों के न केवल क़ौमी बल्कि धार्मिक हितों की भी रक्षा होती है, अगर मुसलमान ऐसे देशों में चुनाव से अलग हो जायेंगे तो राजनीतिक और क़ौमी स्तर पर उनका कोई महत्व शेष नहीं बचेगा बल्कि कुछ स्थितियों में वह धार्मिक अधिकारों से भी वंचित हो सकते हैं।

अत: इस पृष्ठभूमि में निम्न लिखित प्रश्न उठते हैं:

प्रश्नः-१- इस समय विश्व के अधिकतर देश लोकतांत्रिक हैं, जिनमें चुनाव के माध्यम से सरकार बनती है, इन चुनावों में सभी बालिग़ (वयस्क) पुरुष, स्त्री मतदान करते हैं और जो चुनाव में उम्मीदवार होते हैं उन्हें अपने आपको उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है, फिर आम चुनाव से असेम्बली और पार्लियामेंट का गठन होता है, तो पार्लियामेंण्ट के तमाम सदस्यों को देश के संविधान के अनुसार वफ़ादारी की शपथ लेना पड़ती है, और स्पष्ट है कि पार्लियामेंण्ट बहुत से ऐसे क़ानून बनाती है जो

इस्लामी शरीअत के विरुद्ध होते हैं तो:

(अ) क्या इन देशों में मुसलमानों का चुनाव में भाग लेना उसमें उम्मीदवार बनना, मतदान करना, किसी उम्मीदवार का प्रचार करना वैध होगा?

(ब) चूँकि चुनाव से मुसलमानों के मिल्ली और धार्मिक हित जुड़े होते हैं तो क्या इस आधार पर मुसलमानों के लिए वोट देना, शरीअत के अनुसार वाजिब (अनिवार्य) क़रार दिया जा सकता है?

(स) अगर कुछ ऐसे राजनीतिक दल चुनाव में भाग लेते हैं जिन्होंने खुले तौर पर मुसलमानों के विरोध को अपने दल का लक्ष्य बना लिया हो, लेकिन उनके कुछ उम्मीदवार व्यक्तिगत रूप से अच्छे हों और मुसलमानों के साथ उनका व्यवहार मुनासिब हो तो क्या मुसलमानों को उनकी दलगत सोच पर ध्यान न देकर उनके व्यक्तित्व के आधार पर वोट देना वैध होगा? और स्वयं मुसलमानों का ऐसे दलों का सदस्य बनना वैध होगा?

(द) क्या चुनाव के अवसर पर ग़ैर मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों से मिलने वाले हितों को देखते हुए उनसे समझौता किया जा सकता है? और शरीअत में इसकी क्या हैसियत होगी?

(इ) नेकी को फैलाना बुराई से रोकना, मानवता की भलाई के लिए काम करना, समाज में न्याय, शान्ति और सुरक्षा का वातावरण बनाना मुसलमानों का दीनी कर्त्तव्य है, इन उद्देश्यों के लिए कभी-कभी समाज के विभिन्न वर्गों से सहायता प्रात करना पड़ता है और ऐसा भी संभव है कि कभी कभी कुछ ग़ैर मुस्लिम भाइयों

के साथ मिलकर यह काम किया जाता है तो क्या समाज की सामूहिक ज़िम्मेदारियों और अच्छी बातों को बढ़ावा देने और बुराई से रोकने के लिए ग़ैर मुस्लिम भाईयों से मिलकर यह कार्य किया जा सकता है? और ऐसी संस्थाएं और संगठन स्थापित किए जा सकते हैं जिनमें मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर इस उद्देश्य को प्राप्त करने की कोशिश करें?

प्रश्न-२:- जहॉ मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के साथ रहते हैं वहॉ सामाजिक जीवन में एक दूसरे से निकटता के कारण विभिन्न समस्याएं पैदा होती हैं तो इससे सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्न ध्यान देने योग्य हैं:

(अ) क्या मुसलमानों के लिए मिली जुली आबादी में बसना बेहतर है, ताकि वे ग़ैर मुस्लिमों को इस्लामी नैतिक मूल्यों के माध्यम से प्रभावित कर सकें या अपनी आबादियाँ अलग बनाना बेहतर है ताकि वह ग़ैर इस्लामी सभ्यता से प्रभावित न हों?

(ब) एक साथ रहने के लिए आवश्यक है कि एक दूसरे के दुख-सुख में भागीदारी हो, इस सिलसिले में कठिनाई उस समय आती है जब ग़ैर मुस्लिम मित्र या पड़ौसी के यहॉ किसी का देहान्त हो जाये, क्या मुसलमान ऐसे अवसर पर शव-यात्रा में भाग ले सकते हैं या नहीं? अन्तिम संस्कार के समय शव के पास रह सकते हैं या नहीं? कुछ लोग ग़ैर मुस्लिम शव के लिए कुरआन पढ़कर उसको पुण्य भी पहुॅचाते हैं, क्या शरीअत में इसका कोई स्थान है?

(स) ग़ैर मुस्लिम अपने त्यौहारों और दूसरे समारोहों के अवसर पर मिठाइयॉ और उनके अक़ीदे (विश्वास) के अनुसार प्रसाद अपने

मुसलमान दोस्तों को प्रस्तुत करते हैं और यह समारोह धार्मिक भी होते हैं और धर्म निरपेक्ष भी होते हैं, जैसे विवाह, बच्चे के जन्म के अवसर पर जो भेंट उपहार दिये जाते हैं वे भी दो तरह के होते हैं, कुछ मूर्तियों पर चढ़ाये हुए होते हैं और कुछ बिना चढ़ाये होते हैं, हमारे भाई उसे प्रसाद कहते हैं तो ऐसी वस्तुओं का स्वीकार करना और खाना वैध है या नहीं?

(द) आपसी मेल जोल से ऐसा भी होता है कि ग़ैर मुस्लिम मस्जिदों में सहयोग देते हैं दीनी कार्य क्रमों के लिए चन्दा देते हैं, कुछ लोग दीनी मदरसों में सहयोग देते हैं फिर वे अपने पूजा स्थलों के निर्माण और धार्मिक त्यौहार और कार्यक्रमों के लिए मुसलमानों से इसी प्रकार सहयोग मांगते हैं तो क्या मुसलमानों को इस प्रकार का सहयोग स्वीकार करना और धार्मिक समारोहों और पूजा स्थलों के निर्माण के लिए सहयोग देना वैध होगा?

(इ) आज कल यह रुझान पैदा हो रहा है कि विभिन्न सम्प्रदायों के लोग एक दूसरे के धार्मिक समारोहों में भाग लें और सहयोग करें, जैसे रमज़ानुल मुबारक और ईद के अवसर पर बहुत से ग़ैर मुस्लिम सामाजिक और राजनीतिक नेता मुसलमानों के साथ इफ़्तार में भाग लेते हैं और ईद मिलन का समारोह आयोजित करते हैं, और इसी तरह मुसलमानों से भी यह आशा की जाती है कि वे भी धार्मिक गिरोहों के त्यौहारों में भाग लें।

(क) तो क्या मुसलमानों के लिए ऐसे समारोहों में भाग लेना वैध है?

(ख) और क्या ग़ैर मुस्लिम भाइयों को उनके त्यौहारों की शुभ कामनायें

देना वैध है?

प्रश्न-३: मुसलमान अल्पसंख्यक कुछ ऐसी समस्याओं को झेल रहे हैं जिनको दूसरे सम्प्रदाय मात्र एक राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्या समझते हैं लेकिन मुसलमान उन्हें दीनी दृष्टिकोण से देखते हैं, इस सिलसिले में कुछ प्रश्न विशेष रूप से उलमा और मुफ़्तियों के ध्यान देने योग्य हैं:

(अ) आज कल अधिकतर देशों में झण्डे को सलामी देने की परम्परा है और उसे झण्डे का आदर समझा जाता है, शरीअत के दृष्टिकोण से क्या यह ठीक है?

(ब) कुछ देशों में ऐसे राष्ट्रीय गानों का चलन है जिनमें अनेक श्वधारणवादी सम्मिलित है, स्वयं भारत में वन्दे मातरम पढ़ने को कहा जाता है जिसमें देश की धरती की पूजा की धारणा पाई जाती है, क्या मुसलमानों को इस तरह के तरानों का पढ़ना वैध होगा?

(स) जो संस्थाऐं देश वासियों को न्याय उपलब्ध कराती हैं वे देश के प्रचलित क़ानून और साक्ष्य या दूसरे नियमों के कारण कभी ऐसे ैसले भी कर सकती हैं जो इस्लामी दृष्टिकोण से ठीक नहीं होते हैं ऐसे मामले में अगर दोनों पक्ष मुसलमान हों तो उन्हें क्या तरीक़ा अपनाना चाहिए? और जिस पक्ष के हित में सला हुआ है उसके लिए उससे लाभान्वित होने की गुन्जाइश है?

प्रश्न-४: मुस्लिम उम्मत बुनियादी तौर पर एक ऐसी उम्मत है जिसको लोगों तक सच्चाई की दावत पहुंचाने के लिए भेजा गया है, इसके लिए

एक तरह यह बात अनिवार्य है कि स्वयं यह उम्मत सही सोच रखे, चाहे परिस्थितियाँ अनुकूल हों अथवा प्रतिकूल हों, उसको दीन के आदेशों पर अमल करना चाहिए और दूसरी तर अल्लाह के बन्दों के साथ उसका संम्बन्ध प्यार, हमदर्दी, भाई चारा और आपसी सहयोग का हो। इस पृष्ठ भूमि में कुछ प्रश्न ध्यान देने योग्य हैं?

(अ) आज कल विश्व स्तर पर इस बात का प्रयास हो रहा है कि लोगों में सांस्कृतिक एकता पैदा हो जाये, विलय के इस प्रयास में धर्म सबसे बड़ा अवरोध है, इसलिए पश्चिमी देशों ने यह प्रयास किया कि धर्म को सक्रिय मानव जीवन से अलग कर दिया जाये और कुछ पूजा पाठ के रीति-रिवाज इस दायरे में बाक़ी रखे जायें, धर्म को और अधिक प्रभाव हीन बनाने के लिए दूसरा प्रयास यह भी किया जा रहा है कि "रास्ते अलग-अलग हैं और मंज़िल एक है" और इन धर्मों की हैसियत एक ही मंज़िल को जाने वाली विभिन्न रास्तों की है, इस्लामी दृष्टि कोण से क्या यह किसी श्रेणी में स्वीकार्य है?

(ब) विश्व के कुछ भागों में ग़ैर मुस्लिमों का एक वर्ग दूसरे वर्ग को अत्याचार और शोषण का शिकार बनाये हुए है, भारत में बहुत बड़ी आबादी जो दलित के नाम से जानी जाती है, सदियों से उँची जाति (स्र्वण) समझे जाने वाले वर्ग के अत्याचारों का शिकार है, जिनको राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा वर्ग बनाये रखने का संगठित और योजनाबद्ध प्रयास किया जा रहा है, और इसलिए कुछ देशों में काले और गोरे के बीच भेद भाव जारी

रखा गया है, ऐसी स्थिति में पीड़ित वर्ग के साथ मुसलमानों का क्या व्यवहार होना चाहिए? क्या मुसलमानों पर मानव भाइचारे के रूप में उनका सहयोग करना एक दीनी बाध्यता (कर्त्तव्य) है? अथवा चूँकि सत्ता उनके हाथ में नहीं है इसलिए वे इस बारे में उत्तरदायी नहीं हैं।

(स) यह बात स्पष्ट है कि समाज सेवा का इस्लाम में बड़ा महत्व है, और कुरआन व हदीस में विभिन्न माध्यमों से प्रेरित किया गया है लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि दूसरे धर्मों से मुस्लिम उम्मत का सम्बन्ध भाईचारा और मानवता पर निर्भर है और मुसलमानों से उसका दोहरा संम्बन्ध है, एक मानवता का और दुसरा ईमान (विश्वास) का भाईचारा, इन परिस्थितियों में मुसलमान जन-सेवा के लिए कोई संस्था स्थापित करें, जैसे अस्पताल आदि तो उन्हें इन संस्थाओं से ग़ैर मुस्लिम भाईयों को लाभ पहुँचाने का क्या तरीक़ा अपनाना चाहिए? इस्लामी दृष्टि कोण से ऐसी संस्थाओं को मुसलमानों के लिए सीमित रखना है या बिना किसी धार्मिक भेद भाव के तमाम लोगों के लिए सेवा व सहयोग के विचार से दरवाज़ा खुला रखना चाहिए?

(द) जब कोई प्राकृतिक आपदा आती है जैसे भूकम्प, बाढ़, संक्रामक रोग, इत्यादि तो इसका प्रभाव समाज में रहने वाले तमाम ही लोगों पर पड़ता है और सभी लोग सहायता के मोहताज होते हैं, दुर्भाग्य से भारत में कुछ साम्प्रदायिक तत्व ऐसे हैं कि ऐसी आपात स्थिति में भी वे लोग विभिन्न वर्गों के बीच भेदभाव का बर्ताव करते हैं,

मुसलमानों के बहुत से संगठन ऐसे अवसर पर राहत कार्य करते हैं तो इन हालात में देश के भाइयों के साथ मुस्लिम संगठनों को क्या व्यवहार करना चाहिए?

☆☆☆

<u>फ़ैसले:</u>

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं

1-इस्लाम की अपनी एक स्थाई शासन व्यवस्था है, लेकिन मौजूदा विश्व परिस्थितियों में दूसरे ग़ैर इस्लामी शासन व्यवसथाओं की तुलना में प्रचलित लोकतान्त्रिक व्यवस्था ही मुस्लिम अलपसंख्यकों के लिए अधिक वरीयता देने योग्य है, इसलिए इस व्यवस्था के अन्तर्गत मुसलमानों का निर्वाचन में भाग लेना, उम्मीदवार बनना, मतदान करना और किसी उम्मीदवार के लिए चुनाव प्रचार अभियान चलाना वैध है।

2-मुसलमानों के मिल्ली और धार्मिक हितों को ध्यान में रखते हुए मुसलमान वोट देने के संवैधानिक अधिकार को भरपूर तरीक़े से उपोग में लायें।

3-जिन राजनीतिक दलों ने घोषित तौर पर मुसलमानों के विराध को अपने दल का उद्देश्य बना लिया हो उनमें मुसलमानों का भाग लेना वैध नहीं है और उनके किसी उम्मीदवार को वोट देना भी वैध नहीं है चाहे वह स्वयं भली प्रवृति वाला हो।

4-लोकतांत्रिक और धर्म निरपेक्ष दलों से मिल्ली हितों के अन्तर्गत समझौते किए जा सकते हैं।

5-देश और मानवता के हितों और समाज में न्याय शान्ति और सुरक्षा का वातावरण स्थापित करने के लिए ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर काम

किया जा सकता है और उनकी भागीदारी में संगठन भी बनाएं जा सकते हैं।

6-मुसलमानों को ऐसी जगह बसेरा बनाना चाहिए जहाँ वह अपने दीन व ईमान की पहचान बना सकें और शिक्षा व प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए जिस से वह अपनी दीनी व मिल्ली पहचान की रक्षा कर सकें।

7-इस्लाम में ग़ैर मुस्लिम पड़ोसियों और सम्बन्ध रखने वालों के भी अधिकार हैं, इसलिए उनकी बीमारी और शोक के अवसर पर भेंट को जाना और संवेदना प्रकट की जाये।

8-वन्दे मातरम गीत जिसमें अनेकश्वरवादी धाारणा आधारित के शब्द हैं और देश की धरती को पूज्य का दर्जा दिया गया है, इसलिए मुसलमानों के लिए इसका पढ़ना शरीअत के अनुसार हराम और उससे बचना अनिवार्य है।

9- अगर ग़ैर इस्लामी साक्ष्य कानून या दूसरे क़ानूनों के आधार पर किसी मुसलमान के हित में शरीअत के विरुद्ध फ़ैसले हो जायें तो इससे लाभ उठाना वैध नहीं है। यह सेमीनार तमाम मुसलमानों से अनुरोध करता है कि वह अपने झगड़ें दारुल क़ज़ा में ही ले जायें और वहाँ जो फ़ैसला हो उसे स्वीकार करें और उसके अनुसार अमल करें, यह इसलिए भी अनिवार्य है कि कुछ मामलों में मुसलमान न्यायाधीश का फ़ैसला ही शरीअत में मान्य है।

10- वहदत-ए-अदयान (धार्मिक एकता) का विचार ग़ैर इस्लामी है, क़ुरआन व सुन्नत के अनुसार ग़लत और व्यवहारिक रूप से लाभदायक नहीं है बल्कि वास्तव में इस्लाम की पहचान को मिटाने का एक षड्यन्त्र है और मुसलमानों को भटकाने का एक अपवित्र प्रयास है मुसलमानों को ऐसे

फितनों(वाहकों) से बचना चाहिए।

11- इस्लाम मानवता का आदर करता है इसलिए यथा सम्भव मानवीय सहानुभूति के आधार पर पीड़ित ग़ैर मुस्लिम भाईयों की सहायता करना उनका नैतिक और धार्मिक कर्त्तव्य है।

12- मुसलमानों की ओर से चलायी जाने वाली जन सेवा की संस्थाएं जैसे अस्पताल इत्यादि के माध्यम से बिना किसी धार्मिक भेद भाव के लोगों की सेवा और सहायता करनी चाहिए यही मानवीय सहानुभूति और इस्लामी शिक्षाओं की मांग है। परन्तु इस बात को ध्यान में रखना अनिवार्य है कि ज़कात की रक़म केवल हक़दार मुसलमानों पर ही खर्च की जानी चाहिए।

13- इस्लामी शिक्षाओं की माँग यह है कि प्राकृतिक आपदा के अवसर पर मुस्लिम संगठनों की ओर से देश के भाईयों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाये और उनके साथ सहानुभूति का रवैया अपनाया जाये।

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं

मौ० सफ़्दर ज़ुबैर नदवी

मौ० हिशामुल हक़ नदवी

प्रश्न संख्या-१: चुनाव में भाग लेना:

क्या लोकतांत्रिक देशों में मुसलमानों का चुनाव में भाग लेना, चुनाव में उम्मीदवार बनना, मतदान करना, किसी उम्मीदवार के लिए प्रचार करना शरीअत के अनुसार वैध है?

अधिकतर लेखकों ने इस प्रश्न के उत्तर में यह राय दी है कि मुसलमानों का चुनाव में भाग लेना, उम्मीदवार बनना, मतदान करना, किसी उम्मीदवार का प्रचार करना वैध है। (देखिएः मौ० सैयद असरारुल हक सबीली, मौ० खुर्शीद अहमद आज़्मी, मौ० सुल्तान अहमद इस्लाही, मौ० उबैदुल्लाह असअदी, डा० अबुल अज़ीम इस्लाही, मौ० मु0 अरशद मदनी, मौ० इब्राहीम गुजिया फ़लाही इत्यादि)

मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौ0 असअद क़ासिम सम्भली, मौ0 सैयद मोहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मुफ़्ती फुजैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मौ0 मो. इक़बाल क़ासमी, मौ0 अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौ0 वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौ0 अबुल आस वहीदी, मौ0 मुहिउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौ0

नियाज़ अहमद, अब्दुल हमीद मदनी और मौलाना मो0 शम्सुद्दीन ने सैन्द्धान्तिक रूप से मौजूदा दौर की लोकतांत्रिक व्यवस्था को इस्लामी शासन व्यवस्था के विरुद्ध बताया है, क्योंकि इसमें अल्लाह तआला की सत्ता को सर्व शक्तिमान नहीं माना गया है, लेकिन इसके बावजूद अवश्यकता और मजबूरी और मिल्ली हितों को ध्यान में रखते हुए इन उलमा ने चुनाव में भाग लेने, मतदान करने उम्मीदवार बनने और किसी उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार करने को वैध ठहराया है। यद्यपि इन उलमा में से कुछ लोगों ने कुछ शर्तें लगा दी हैं।

उदाहरणतः मौ. राशिद हुसैन नदवी और मौ. मुहिउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, के अनुसार मतदाता और उम्मीदवार के मन में अल्लाह तआला को शासक, व वास्तविक विधाता होने का विचार स्पष्ट होना अवश्यक है, मौ0 अबुल आस वहीदी और मौ0 नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी ने इसके लिए सावधानी की शर्त लगा दी है।

चुनाव में भाग लेने के पक्ष में दलीलें:

चुनाव में भाग लेने को बिना शर्त समर्थन करने वाले और कुछ सावधानी एवं शर्तों के साथ समर्थन करने वाले दोनों गिरोहों का तर्क है कि लोकतांत्रिक देशों में चुनाव में भाग लेने से दीनी व मिल्ली हित और उद्देश्य जुड़े हैं, और कहीं-कहीं तो इसके बिना मिल्लत की पहचान और उसका अस्तित्व भी खतरे में होता है।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही और मुफ़्ती फुजैलुर्रहमान हिलाल उसमानी के अनुसार इस्लाम के विरुद्ध बनाये गये क़ानून को चुनौती देने के लिए और उनको निरस्त कराने के लिए इससे अच्छा कोई माध्यम नहीं है

कि चुनाव में भाग लिया जाये और जन सहयोग प्राप्त करके पार्लियामेन्ट ही से उस क़ानून के विरुद्ध प्रदर्शन किया जाये।

मौ0 साबित शमीम रशादी के अनुसार (लोकतांत्रिक देशों की पार्लियामेण्ट में बनाये गये इस्लाम विरोधी क़ानूनों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील प्रभावी माध्यम है,मो0 राशिद हुसैन नदवी का कहना है कि लोकतांत्रिक देशों में यदि चुनाव में भाग लिया जाये और अपनी तरफ़ से जितना संभव हो शरीअत के विरुद्ध क़ानूनों को निरस्त कराने के प्रयास के बावजूद यदि असफलता हो तो ऐसी दशा में मुसलमानों की हैसियत उन इस्लाम विरोधी कानूनों से घृणा करने वाले की सी हो जायेगी उन्होने

"الامن اکرہ و قلبہ مطمئن بالایمان"

''सिवाय उसके जो घृणा करे और उसका दिल ईमान पर सन्तुष्ट हो''

और

"لایکف اللہ نفسا الا وسعہا"

"अल्लाह तआला किसी व्यक्ति पर क्षमता से अधिक भार नहीं डालता"से तर्क दिया है। वह लिखते हैं कि इस स्थिति में मुसलमान इस हदीस:

"من ر أی منکم منکرا....الخ"

"तुम में से जो कोई बुराई को देखें तो उसे चाहिए कि दिल में ऐसी चीजों को बुरा समझेंगे''। लेकिन मौ0 असअद क़ासिम सम्भली ने 'मजबूरी' ज़ोर ज़बरदस्ती के उपरोक्त स्पष्टीकरण की आलोचना की है, उनका कहना है कि व्यक्तिगत स्तर पर मजबूरी और ज़ोर ज़बरदस्ती की बात समझ में

आती है। मगर करोड़ों की आबादी सदैव के लिए मजबूर हो जाये और आसानी का रास्ता ढूंडे यह बात समझ में नहीं आती है वह आगे लिखते हैं कि यदि यह दशा कुछ समय के लिए हो तो बात समझ में आती है लेकिन ऐसे अवसर पर मक्का के जीवन का हवाला देना और विश्व की दशा को भूतकाल की स्थिति से भिन्न बता कर दारुल इस्लाम और दारुल हर्ब (युद्ध क्षेत्र) के अन्तर को मिटाना और इसी सोच के अनुसार अल्पसंख्यकों की फिक्ह के संकलन की बहस छेड़ना किसी तरह ठीक नहीं है।

इसके विपरीत डा. महरूसुल मुदर्रिस आज़मी (इराक़) का विचार है कि जब सत्ता मुसलमानों के हाथ में थी तो प्रतिदिन उसका दायरा बढ़ता जा रहा था और एक ही शासन व्यवस्था (खिलाफ़त) के अन्तर्गत बहुत से क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े थे उस जमाने में अगर मुसलमानों ने अपने शासित क्षेत्रों को दारुल इस्लाम और ग़ैर मुस्लिमों द्वारा शासित क्षेत्रों को दारुल कुफ्र मान लिया तो उस समय की उस की स्थिति के अनुसार यह बात तार्किक और उचित प्रतीत होती है परन्तु अब जब कि अधिकतर देशों से मुसलमानों की सत्ता समाप्त हो चुकी है और गैर मुस्लिम शासित देशों में मुसलमान बड़ी संख्या में आबाद हो गये हैं और वहां की नागरिकता प्राप्त करके अधिकार और रियायतें हासिल कर रहे हैं जो उन देशों के दूसरे नागरिकों को प्राप्त हैं, तो परिस्थितियों के बदलने से पूर्व की भाँति दुनिया के विभाजन की आवश्यकता और उपयोगिता नहीं प्रतीत होती है क्योंकि यदि दारुल इस्लाम और दारुल हर्ब की पूर्व की तरह विभाजन को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाये और उसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता न प्रतीत हो तो

इससे यह अनिवार्य हो जायेगा कि:

(अ) ग़ैर मुस्लिम देशों में इस्लाम स्वीकार करने वालों के लिए यह अनिवार्य हो जायेगा कि अपने दीन की रक्षा के लिए हिजरत कर जायें।

(ब) जिन देशों में मुसलमानों की सत्ता समाप्त हो चुकी है वहॉं से भी मुसलमानों को हिजरत करना होगी।

इसके बाद डाक्टर साहब ने ऐसी हानियों की सूची बनाई है कि जिनकी पूर्ति असंभव है और इस कार्य प्रणाली पर अमल करने से पूरी उम्मत को घाटा उठाना पड़ेगा जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण हानियॉं ये हैं:

(१) मुसलमान अपनी सम्पत्तियॉं और व्यवसायिक, राजनीतिक और सामूहिक केन्द्रों को छोड़ने पर मजबूर होंगे।

(२) अपने शिक्षा केन्द्र, धार्मिक संस्थाओं, मस्जिदों, यूनिवर्सिटियों से वंचित हो जायेंगे।

(३) जहॉं वे पहले से बसे हुए हैं और रहने की स्थिति में वहॉं के शासकों के फ़ैसलों पर वे प्रभावी होते हैं, और इसके नतीजे में इस्लामी दुनिया से जुड़ी नीतियों पर भी प्रभावी होते हैं यदि वे उन देशों को छोड़ देंगे तो वे अपने अधिकार व प्रभाव से स्वयं वंचित हो जायेंगे।

(४) जिन देशों की नागरिकता मुसलमानों को प्राप्त है, वहॉं के समाज से उनके गहरे सम्बन्ध हैं, वहॉं उनको अनगिनत ऐसी आज़ादियां और सुविधाएं प्राप्त हैं जो मुस्लिम देशों में नहीं हैं इसी तरह अपने दीन की ओर लोगों को दावत देने और प्रचार के क्षेत्र में मीडिया और मुद्रण प्रकाशन की उत्तम स्तर की गुणवत्ता और विश्व स्तर की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों और

प्रकाशनों से लाभान्वित होने, पुस्तकों की उपलब्धता जो अधिकतर मुस्लिम देशों में नहीं है मुसलमान उनसे वंचित हो जायेंगे। डाक्टर साहब लिखते हैं कि इन कारणों और हितों को देखते हुए मैं उन लोगों के विचार से सहमत नहीं जो ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों पर वहां से स्थानान्तरण को अनिवार्य क़रार देते हैं। अन्यथा इसके अनुसार यह अनिवार्य हो जायेगा कि नेपाल भारत, फिलीपीन, थाइलैण्ड, श्रीलंका, म्यांमार, इसके अतिरिक्त अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, यूरोपीय देश, लैटिन अमेरिका के अधिकतर देश आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड इत्यादि से मुसलमान निकल जायें, क्या यह उचित है? क्या यह दृष्टिकोण शरीअत के उद्देश्य के अनुकूल हो सकता है? फिर आगे वह लिखते हैं कि नुसूस(कुरआन व सुन्नत) की अर्थापन किसी एक गिरोह को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि पूरी उम्मत को ध्यान में रख कर किया जाएगा।

मुफ़्ती ज़ाकिर हुसैन नोमानी के अनुसार अम्र बिल मारूफ़ व नहि अनिल मुनकर (नेकी का आदेश देना और बुराई से रोकना) के कर्त्तव्य को पूरा करने का एक तरीक़ा और माध्यम चुनाव प्रक्रिया में भाग लेना भी है, जबकि क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल के अनुसार चुनाव में भाग लेने की हैसियत दीनी नहीं बल्कि सांसारिक और सामाजिक है।

मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन और मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी ने पार्लियामेंट में जाकर इस्लाम के विरुद्ध बनाये गये क़ानूनों के निरस्तीकरण और लोगों की सेवा की नीयत से चुनाव में भाग लेने को वैध ठहराया है इन दोनों सज्जनों ने फ़तावा महमूदिया 425/13 का एक फ़तवा भी अपने मत के समर्थन में प्रस्तुत किया है।

मौलाना बुराहानुद्दीन सम्भली का विचार है कि यदि संसद के माध्यम से साधारण रूप से अथवा, अधिकतर क़ानून इस्लाम के विरुद्ध बनाए जाते हैं तो चुनाव में भाग लेना अवैध होगा और यदि कभी-कभी ऐसी स्थिति आती हो तो चुनाव में भाग लेना वैध होगा।

सैन्द्धान्तिक रूप से लोकतन्त्र को ग़ैर इस्लामी ठहराने वालों ने चुनाव में भाग लेने को "اھـــون البـــليتيـــن" दो मुसीबतों में छोटी मुसीबत, के फ़िक़्ही नियम के आधार पर वैध ठहराया है, चुनाव में भाग लेने और बिना शर्त समर्थन देने वाले मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़्मी, और मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी ने इसी सिद्धान्त को अपनी दलील बनाया है। मौ. मुहम्मद उबैदुल्लाह साहब (जामिया अशरफ़िया लाहौर) ने भारत के संविधान को कुफ़्र (इस्लाम विरोधी) पर आधारित बताया है, उनके मतानुसार लोकतांत्रिक देशों में जो व्यवस्था प्रचलित है उसमें अल्लाह के बजाये जनता को संप्रभु सम्पन्न माना जाता है। इन्हीं कारणों से मौलाना के मतानुसार भारत और दूसरे लोकतांत्रिक देशों में चुनाव में भाग लेना अवैध है, उन्होंने जुब्दुतुल उसूल (टीका के साथ) पृष्ठ 2 का हवाला देते हुए अल्लाह की प्रभुसत्ता (हाकिमियत-ए-इलाह) के पहलू को इस्लाम के मौलिक और अपरिवर्तनशील उसूलों में गिनते हुए यह राय दी है।

मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी ने हदीस में:

"من رأی منکم منکرا"

"तुम में से जो कोई बुराई को देखे........" से चुनाव में भाग लेने की वैधता पर दलील दी है। मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही ने 'मज़बूत मोमिन कमज़ोर मोमिन से उत्तम है' इस हदीस को दलील बनाते हुए इसमें

राजनीतिक शक्ति और कमज़ोरी को भी सम्मिलित कर लिया है।

मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी ने चुनाव में भाग लेने को इसे ढाल के तौर पर प्रयोग करना ठहराया है, अर्थात जिस तरह काफिर मुसलमानों को युद्ध की स्थिति में ढाल बनायें और उनको आगे-आगे रखें और फिर इस्लामी देश के हित को देखते हुए इस्लामी फ़ौज उनपर हमला करेगी। इसी प्रकार चुनाव और सरकारी व्यवस्था शरीअत की दृष्टि में बुरा होने के बावजूद उसमें भाग लिया जायेगा। मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी ने हज़रत यूसुफ़ (अलै0) की घटना को अपनी दलील बनाया है इसी प्रकार उन्होंने शामी, क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती, मौलाना ज़फ़र अहमद उसमानी और मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब के वाक्य भी प्रस्तुत किये हैं

मौ0 नईम अख़्तर क़ासमी और मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही ने इसके अन्तर्गत शपथ लेने की समस्या पर भी प्रकाश डाला है, इन सज्जनों के अनुसार भारत का संविधान चूंकि हर धर्म के आदर और विचारों की स्वतन्त्रता के विश्वास पर आधारित है इसलिए शपथ लेने में कोई बुराई नहीं है।

चुनाव में भाग लेने की हैसियत और आचार:

सभी लेखकों ने चुनाव में उम्मीदवार के लिए योग्यता और दीनदारी जैसे गुणों का वाहक होने की शर्त लगाई है, इसी तरह उन्होंनें चुनाव प्रचार में एक दूसरे पर दोषारोपण करना उनके विरु अपमान जनक भाषा का प्रयोग करना और झूठ बोलने से बचने को अनिवार्य ठहराया है, अधिकतर लेखकों ने वोट की तीन शरअी हैसियतों का उल्लेख किया है: शहादत (गवाही), शफ़ाअत (सिफ़ारिश- संस्तुति), वकालत (प्रतिनिधित्व),

जवाहिरुल फ़िक्ह (2-291)। इसका उल्लेख निम्न उलमा के लेखों में आया है: मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मुफ़्ती रफ़ी उसमानी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने इसके गवाही के पहलू पर और मौलाना असरारुल हक़ सबीली और क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल ने वकालत (प्रतिनिधित्व) के पहलू पर अधिक ज़ोर दिया है। क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल ने इस्लामी विचार परिषद (Islamic ideological Council) की वार्षिक रिपोर्ट जो 1981-82 में जारी हुई थी उसके हवाले से परिषद का यह सर्वसम्मत फ़ैसला व्यक्त किया है कि वोट वास्तव में तौकील (प्रतिनिधि बनाना) तफ़्वीज़ (अधिकार सौंपना), गवाही की ज़मानत और अभिभावक बनाना है। काज़ी साहब के अनुसार ग़ैर मुस्लिम देशों में गवाही के मुक़ाबले प्रतिनिधि बनाने की हैसियत ही अधिक उचित है।

मौलाना ख़ुर्शीद अहमद आज़मी, मौ॰ साबित शमीम रशादी और मौ॰ मुहम्मद इक़बाल क़ासमी ने उम्मीदवार बनने की स्थिति में पाई जाने वाली तलब (महत्वाकांक्षा) को इस्लामी शरीअत के अनुसार जायज़ महत्वाकांक्षा ठहराया है। इस पहलू पर मौ॰ साबित शमीम रशादी एक दूसरे कोण से दृष्टि डालते हुए लिखते हैं कि इस समय लोकतांत्रिंक देशों में यह स्थिति, कि कोई स्वंय अपने आप का नामांकन करे, नहीं पाई जाती, बल्कि कुछ लोग किसी का नामांकन करते हैं और इलैक्शन कमीशन में उम्मीदवार नामांकन पत्र दाखिल करके वास्तव में अपनी सहमति प्रकट करता है ।

प्रश्न-१ (ब) वोट देने का शरअी आदेश?

वोट देने को अनिवार्य ठहराने के समर्थक:

इस सिलसिले में अधिकतर लेखकों की राय वोट देने को अनिवार्य ठहराने की है, हालाँकि दलीलों में भेद है कुछ सज्जनों का कहना है कि इससे मुसलमानों के दीनी और मिल्ली हित जुड़े हों तो शरीअत के अनुसार वोट देना अनिवार्य होगा। (मौ॰ इब्राहीम गजिया फ़लाही, सैयद क़ुद्रतुल्लाह बाक़वी, मौ॰ आमिर ज़फ़र, डा0 अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौ॰ नियाज़ अहमद मदनी, मौ॰ अबूल आस वहीदी, मौ॰ सुल्तान अहमद इस्लाही, मौ॰ मुहम्मद सादिक़ मुबारक पूरी, मौ॰ अबू बक्र क़ासमी मौ॰ मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौ॰ क़मरुज़्ज़मा नदवी, सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी)

डाक्टर अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौ॰ नियाज अहमद मदनी, मौ॰ अबुल आस वहीदी और मौ॰ सुलतान अहमद इस्लाही ने अपनी राय की दलील में मौलिक नियम "فإنه مالايتم الواجب إلا بل فهو واجب"

''अगर अनिवार्य किसी चीज़ के बिना पूरा नहीं होता तो उसका हासिल करना भी अनिवार्य है'' को प्रस्तुत करते हैं, जबकि मौ॰ मुहम्मद इरशाद क़ासमी का कथन है कि मतदान उसी समय करना और उसी उम्मीदवार को वोट देना शरीअत के अनुसार अनिवार्य हो सकता है जो अपने निकट प्रतिद्वंदी की तुलना में नेक और इस्लाम धर्म का पालन करने वाला हो।

मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी और सैयद अमीर हुसैन गीलानी का कथन है कि नेकी का आदेश देना और बुराई से रोकना किसी माध्यम से या बिना किसी माध्यम के हर मुसलमान का कर्त्तव्य है जो एक उददेश्य को पूरा करने का माध्यम है, इसलिए मतदान करना अनिवार्य है।

मौलाना साबित शमीम रशादी, मौ॰ अब्दुल लतीफ़ और मौ॰ मुहम्मद

सलमान की स्पष्ट राय है कि मतदान की हैसियत एक गवाही की है और सच्ची गवाही अनिवार्य है:

”کو نوا قوامین با لقسط شهیداً للّٰه“

न्याय स्थापित करने वाले बनो और अल्लाह के लिए गवाही दो, इस तरह गवाही को छिपाना हराम और गुनाह है, जैसा कि आयत में है:

”لاتکتمو الشهادة ون یکتمها فإنه آثم قلبه“

गवाही मत छिपाओ और जिसने गवाही को छिपाया उसका दिल गुनाहगार (पापी) है” इसलिए मुसलमानों पर चुनाव में भाग लेना अनिवार्य होगा।

मुफ़्ती फुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी का कथन है कि किसी विशेष स्थिति में मतदान करना उसी प्रकार अनिवार्य हो जायेगा जिस प्रकार इस्लाम विरोधी शक्तियों से जिहाद अनिवार्य होता है।

यही बात मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ॰ राशिद हुसैन नदवी और मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी भी कहते हैं और दलील में निम्नलिखित आयतें प्रस्तुत करते हैं:

”فان آمن بعضکم بعضاً فلیود الذی اؤتمن امانتهٗ ولیتق الله ربه ولا تکتمو الشهادة ومن یکتمها فانه ‘ثن قلبه“ (سورة بقره ۲۸۳)۔

“अगर तुम एक दूसरे से सन्तुष्ट हो जाओ तो जो अमानत रखी गयी है उसे अदा कर देना चाहिए और अपने पालनहार अल्लाह से डरना चाहिए और गवाही को मत छिपाओ जो कोई गवाही छिपाता है तो उसका दिल पापी होता है''

”من کتم شهاته اذا دعی الیها کان کمن شهد بالز ور“ (جمع فوائد۲۶)

जिस व्यक्ति ने गवाही को छिपाया जब कि उसके लिए बुलाया गया हो, वह उस व्यक्ति जैसा है जो झूठी गवाही देता है। (जमउल फ़वायद 62)

"الا اخبر کم بخیر الشھداء الذی یأتی بشھادۃ قبل ان یسئلھا"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया: मै तुम्हें बेहतरीन गवाह बताता हूं 'वह है जो पूछने से पहले ही गवाही दे दे"

मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी का विचार है कि यदि मतदान न करने से अन्याय करने वाली सरकार का सत्ता में आना निश्चित हो तो मतदान करना अनिवार्य होगा और उसे क़ौमी और दीनी कर्त्तव्य भी ठहराया है, और लगभग यही मौ0 अब्दुर्रहीम क़ासमी का भी कथन है।

(फ़िक़्ही मक़ालात 293/2)

वोट की शरअी हैसियत बयान करते हुए मौलाना असरारुल हक़ सबीली ने कहा कि यदि वोट की हैसियत गवाही मान ली जाये तो उसका अनिवार्य होना सिद्ध किया जा सकता है, और दलील में निम्न लिखित आयतों का उल्लेख किया है,

"ولا یآب الشھداء اذا ما دعوا سورۃ بکرہ"

1-गवाहों को जब इसके लिए बुलाया जाये तो वह मना न करें।

"ولا تکتموا الشھادۃ ومن یکتمھا فانہ آثم قلبہ"

2-गवाही को मत छिपाओ इसका छिपाने वाला पापी है।

(सूर: बकरा 283)

गवाही अल्लाह के लिए स्थापित करो "واقیموا الشھادۃ للہ"

(सूर: तलाक-2)

अगर वोट की हैसियत वकालत (प्रतिनिधि बनाना) मान ली जाये तो

उसका अनिवार्य होना भी कु़रआन की इन आयतों और हदीस से सिद्ध होगा, जिनमें न्याय स्थापित करने और एक दूसरे की सहायता करने और नेक काम का आदेश देना और बुराई से रोकना, इत्यादि आदेश हैं।

"یاایھاالذین آمنوا کونوا قوامین بالقسط"

1-ऐ लोगो जो ईमान लाए हो न्याय स्थापित करने वाले बनो।

(सूर: निसा-135)

"اعد لوا ھوا اقرب للتقوی"

2-न्याय करो वह तक़्वा से अधिक निकट है। (सूर: माइदा-8)

"لا خیر فی کثیر من نجواھم الا من امر بصدقة او معروف او اصلاح بین الناس"

3-उनकी बहुत सी कानाफूसियों में कोई भलाई नहीं सिवाय जिसमें दान, नेकी और लोगों के बीच सुधार की बात का आदेश हो। (सूर: निसा114)

"تعاونوا علی البروا لتقوی ولا تعاونوا علی الاثم والعد وان"

4-भलाई और अल्लाह से डरकर काम करने में सहयोग करो और पाप और (दीन के) विरोध में सहयोग न करो। (सूर: माइदा-2)

"وافعلو االخیر لعلکم تفلحون"

5- भलाई करो शायद तुम कामयाब हो जाओ। (सूर:हज-77)

" فاتقوا اللہ واصلحوا ذات بینکم"

6-अल्लाह से डरो और अपने आप का सुधार करो। (सूर: अन्फ़ाल-1)

इस सिलसिले में कुछ हदीसें निम्नलिखित हैं:

"من رأی منکم منکرا فلیغیرہ بیدہ فان لم یستطع فبلسانہ....."

1-तुम मे से कोई बुराई को देखे तो उसे हाथ से रोके और सम्भव नहीं है तो ज़बान से और यह भी संम्भव नहीं है तो दिल से बुरा समझे और यह सबसे कमज़ोर ईमान की श्रेणी है। (मुस्लिमरू 49)

" المسلم اخ المسلم لا يظلمه ولا يسلمه من كان فى حاجة اخيه كان الله فى حاجته"

2-मुसलमान मुसलमान का भाई होता है उसपर वह अत्याचार नहीं करता है, और अगर वह आश्रय लेता है तो उसको दुश्मन के हवाले नहीं करता है, और जो अपने भाई की ज़रूरत पूरी करता है अल्लाह उसकी आवश्यकता पूरी करता है। (बुख़ारी: 70/5, मुस्लिम: 258)

"والله فى عون العبد ما كان العبد فى عون خيه"

3-अल्लाह हमेशा अपने बन्दों की सहायता में रहता है जब तक बन्दा अपने भाई की सहायता में रहता है। (मुस्लिम: 2699)

"من دل على خير فله مثل اجر فاعله "

4-जिसने किसी भलाई का रास्ता दिखाया तो उसका बदला उतना ही होगा जितना करने वाले का होगा। (मुस्लिम: 1893)

मौ० नईम अख़्तर क़ासमी कहते हैं कि लोकतांत्रिक देश में बिना किसी वैध कारण के वोट न देना देश के संविधान की अवज्ञा है और संविधान की अवज्ञा क़ानून के दायरे में आती है इसलिए इस दृष्टिकोण से वोट देना अनिवार्य होना चाहिए।

मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी कहते हैं कि मजबूरी की हालत में विभिन्न हितों को ध्यान में रखते हुए मतदान को अनिवार्य क़रार दिया जा सकता है, लगभग यही कथन मौ० उबैदुल्लाह अस्अदी और मुफ्ती जमील अहमद

नज़ीरी का भी है।

मौ० राशिद हुसैन नदवी और मौलाना अबू बक्र क़ासमी के कथनानुसार ऐसे प्रतिनिधि को वोट देना अनिवार्य ठहराया जा सकता है जिसमें मिल्ली व धार्मिक हितों को प्राप्त करने की योग्यता हो।

लगभग यही बात मौलाना शमसुद्दीन भी कहते हैं, लेकिन आगे लिखते हैं कि राजनीतिक स्थिति में इसको अनिवार्य किया जा सकता है, और उसे दो दिशाओं से अनिवार्य ठहराया है:

1-जनगणना जिससे पहचान बची रहे।

2-नागरिकता और नागरिकता का अधिकार प्राप्त करने के लिए, और यही विचार मौ० मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी का भी है, इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि इसे शरअी तौर पर अनिवार्य ठहराना दीन में नई बात जोड़ना होगा जबकि दीन पहले से ही पूर्ण है।

मुफ़्ती महबूब अली वजीही का विचार है कि इस्लाम की रक्षा और मुसलमानों की रक्षा और मुसलमानों के अधिकार की रक्षा को प्राप्त करने की नीयत से मतदान करना यदि अनिवार्य कर दिया जाये तो उचित है।

वैधता के समर्थक:

निम्नलिखित सज्जन इस सिलसिले में कोई प्रमाण या मज़बूत तर्क न होने के कारण मतदान को केवल वैध ठहराते हैं। वे निम्नलिखित हैं:

मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी, मौ0 अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौ0 मुहम्मद अरशद मदनी, मौ० बुरहानुद्दीन सम्भली।

मौ० मुहम्मद अरशद मदनी साहब ने नियम ”يجوز فی الضرورة مالا يجوز فی غيرها“ ''आवश्यकता होने पर वैध है अवश्यकता के बिना जो वैध

नहीं है" और "اخف الضررين" दो हानियों में जो कम हो) को आधार बनाया है।

मौलाना बुरहानुद्दीन संम्भली साहब और मौलाना अस्अद क़ासिम साहब ने मुफ़्ती साहब के फ़तवा, जिसमें उन्होंने वोट को गवाही बताया है, पर आलोचना की है और कहा है कि यह बात मुस्लिम देश के लिए सही हो सकती है लेकिन दूसरे देशों पर यह बात उचित हो अनिवार्य नहीं है।

अनिवार्य न मानने वाले:

जो सज्जन मतदान को अनिवार्य नहीं मानते वे निम्नलिखित हैं:

मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौ० अस्अद क़ासिम, सम्भली क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौ० मुहम्मद रफ़ी उस्मानी, मौ वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौ० अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़्वी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौ० मुहम्मद शमसुद्दीन, मौ० मुहम्मद अरशद मदनी, मौ० ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौ० मुहीउद्दीन गाज़ी फ़लाही, मौ० उबैदुल्लाह।

मौ० वलीउल्लाह मजीद क़ासमी का कथन है कि मतदान करना, अमली कुफ़्र और बहुत बड़ा पाप है और यह पापियों की सहायता है, मजबूरी के आधार पर अनुमति है, अनिवार्य किसी भी स्थिति में नहीं है।

मुसलमानों के लिए मतदान को अनिवार्य बताना शरीअत की दृष्टि से उचित नहीं लगता (मौ० ख़ुरशीद अहमद आज़मी)

वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है कि वोट देना अनिवार्य हो जाये (मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल का कथन है कि धार्मिक हितों के लिए काल्पनिक आशा पर वोट देने को, शरीअत की दृष्टि से अनिवार्य की हैसियत नहीं दी जा सकती और न ही ग़ैर मुस्लिम देशों में मतदान को गवाही कहा जा सकता है।

प्रश्न-१.(स) मुस्लिम विरोधी दलों को वोट देनाः

इस प्रश्न के दो भाग हैं, एक यह कि ऐसे राजनीतिक दल जिनका उद्देश्य इस्लाम और मुसलमानों का विरोध हो, अगर उनका कोई प्रत्याशी भला आचरण रखता हो और मुसलमानों के साथ अच्छा व्यवहार करे, तो क्या ऐसे प्रत्याशी को वोट दिया जा सकता है, या नहीं?

यह कि मुसलमान ऐसे दलों की सदस्यता ग्रहण कर सकते है या नहीं? तो अधिकतर लेखकों का विचार इस सिलसिले में अवैधता का है और व्यक्तिगत रूप से भले आचरण के प्रत्याशी को वोट देना उचित नहीं है, इसलिए कि व्यक्तिगत राय दल के घोषणा पत्र या उसके फ़ैसलों पर प्रभावी नहीं हो सकती, ऐसे प्रत्याशी को विजयी बनाना जिसका सम्बन्ध इस्लाम और मुसलमान दुश्मन दल से हो तो, यह उसको बल देना होगा जिससे इस्लाम और मुसलमानों को हानि होगी, और यह अपराध और विद्रोह की सहायता करना होगा। यह राय निम्नलिखित लेखकों की है:

मौ० अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौ० मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौ॰ इब्राहीम गुजिया फ़लाही, सैयद क़ुद्रतुल्लाह बाक़वी, मौ॰ नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी, मौ॰ अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौ॰ अबुलआस वहीदी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नौमानी, मौ॰ क़मरुज़्ज़मा नदवी, मौ॰ उबैदुल्लाह असअदी, मो० वलीउल्लाह

मजीद क़ासमी, मौ० मुहम्मद मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौ० साबित शमीम रशादी, मौ० मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौ० मुहम्मद अरशद मदनी, मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी, मौ० बुरहानुद्दीन सम्भली, मौ० फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मौ० मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौ० ज़फ़र आज़म नदवी, मौ० मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ० अबू बक्र क़ासमी, मौ० मुहम्मद इरशाद क़ासमी इत्यादि)।

मौ० मुहम्मद असअद क़ासिम सम्भली इस्लाम और मुस्लिम विरोधी पार्टी को हिज़्बुश्शैतान (शैतानों की पार्टी) मानते हैं और उसमें भाग लेने को हराम बल्कि इसे काफ़िर हो जाने का कारण बताते हैं।

दलीलें:

"ولا تعاونوا على الاثم والعد وان"

गुनाह और इस्लाम के विद्रोह में सहायक न बनो। (सूरः माइदा-2)

"واثمها اكبر من نفعهما"

उनका गुनाह उनके लाभों से अधिक बड़ा है। (सूरः बक़रः 219)

"انما ينهاكم الله عن الذين قاتلوا كم فى الدين واخرجوكم من دياركم وظاهروا على اخراجكم ان تولواهم ومن يتولهم فاولأئكهم الظالمون لظالمون"

अल्लाह तुम्हें जिस बात से रोकता है वह यह है कि, तुम उन लोगों से दोस्ती न करो जिन्होने तुमसे दीन के मामले में युद्ध किया, और तुमको तुम्हारे घरों से निकाला, और तुम्हें निकालने में एक दूसरे की सहायता की, और जो लोग उनसे दोस्ती करें वही अन्याय करने वाले (ज़ालिम) हैं। (सूरः मुम्तहिना-9) (मौलाना मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौ० मु०

इरशाद क़ासमी)

"من كثر سواد قوم فهو منهم"

जिसने किसी क़ौम का तरीक़ा अपनाया उसकी गिनती उसी में होती है। (मौ० मुहम्मद हारून मैंगल)

"الاعتبار للاكثر لا للا قل "

अधिक संख्या की मान्यता होती है कम की नहीं। (मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"لا تجد قوما يومنون باالله واليوم الآخر يوادون من حاد الله ورسوله ولوكانوا آباء هم اوا بناء هم اواخوانهم او عشيرتهم"

तुम ऐसी क़ौम नहीं पाओगे जो अल्लाह और क़यामत (प्रलय) पर ईमान (विश्वास) रखती हो और दोस्ती करते हैं उन लोगों से जो अल्लाह का विरोध करते हैं यद्यपि वह उनके बाप, बेटे, भाई और परिवार के लोग हों। (सूर: मुजादिला -22) (मौलाना असअद क़ासिम सम्भली)

"يا ايهاالذين آمنو ا لا تتخذوا الذين اتخذوا دينكم هزوا ولعبا من الذين أؤتواالكتاب من قبلكم والكفار اولياء واتقواالله ان كنتم مومنين" (سوره مائده ۵۷)

ऐ ईमान वालो उन लोगों को दोस्त न बनाओ जिन्होने तुम्हारे दीन की हँसी उड़ाई, उन लोगों में से जिनको तुम से पहले किताब दी गयी थी और, काफ़िरों को, और अल्लाह से डरो अगर तुम ईमान वाले हो। (सूर: माइदा-57, मौ० ख़ुर्शीद अहमद आज़मी)

"لا تركنو الى الذين ظلموا فتمسكم النار وما لكم من دون الله اولياء ثم لاتنصرون"

मत झुको उन ज़ालिमों की तरफ़ कि आग तुमको छू ले और अल्लाह

के सिवा तुम्हे कोई सहायता न मिले। (सूर: हूद-113, मौ० असरारुल हक़ सबीली)

"الـذيـن يتـخذون الكافرين اولياء من دون المومنين ايبتغون عندهم العزة فان العزة لله جميعا"

जो लोग मोमिनों को छोड़कर काफ़िरों को दोस्त बनाते हैं क्या वह उनसे आदर की आशा करते हैं, तो जान लो सारा सम्मान अल्लाह के लिए है। (सूर: निसा-139)

"وقـد نـزل اليكم فى الكتاب اذا سمعتم آيات الله يكفر بها و يستهزو بها ولا تقعدوا معهم حتى يخو ضوا فى حديث غيره"

तुम पर किताब उतार दी गई है और उस किताब में है कि जब तुम अल्लाह की आयतों को सुनो कि उससे इन्कार किया जा रहा है और उसका उपहास उड़ाया जा रहा है तो उनके साथ मत बैठो, उस समय तक जब तक वे दूसरी बात न करने लगें। (सूर: निसा-140)

मुस्लिम विरोधी दल से सहयोग की गुंजाइश:

कुछ लोग किसी न किसी तरह मुस्लिम विरोधी दलों के अच्छे स्वभाव वाले लोगों को व्यक्तिगत रूप से वोट देने का समर्थन करते हैं, उदाहरणत:

मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी का दृष्टिकोण है कि दल अगर अपने कार्यक्रम से इस्लाम व मुसलमानों के विरुद्ध शत्रुता को निकाल दे तो उसके अच्छे स्वभाव वाले उम्मीदवार को व्यक्तिगत रूप से वोट देना जायज़ हो सकता है।

"اما من استغنى فانت له تصدى" (سوره عبس ۵/۶)

जो व्यक्ति बे परवाह हो गया तुम उस पर अधिक ध्यान देते हो।

(सूरः अबस-5/6)

एक राय यह भी है कि अगर सभी उम्मीदवार ऐसी पार्टी में हैं, या स्वयं वे मुसलमानों के खुले दुश्मन हैं, तो ऐसी स्थिति में इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है कि पार्टी की विचार धारा पर ध्यान न देकर उम्मीदवार के व्यक्तित्व को देखा जाये, जिस उम्मीदवार से मुसलमानों के लाभ की आशा हो उसी को वोट दिया जाये। (मौलाना आमिर ज़फ़र)

मौलाना अरशद हुसेन नदवी साहब का कथन है कि अगर किसी व्यक्ति के बारे में यक़ीन है कि वह इतनी अधिक सहानुभूति रखने वाला और मुसलमानों के विरुद्ध आने वाले किसी भी बिल का समर्थन नहीं करेगा तो उसकी योग्यता को ध्यान में रखते हुए उसी को वोट दिया जाये, लेकिन इस स्वार्थ में वशीभूत दौर में ऐसे व्यक्ति का मिलना असंभव है।

मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी साहब लिखते हैं कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो अपनी पार्टी में, उसकी नीतियों पर प्रभाव डाल सके, और वह वायदा करे कि वह अपनी पार्टी की सोच को बदलने का प्रयास करेगा तो उसको वोट देने के बारे मे सोचा जा सकता है।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना अबू सूफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, सैयद ज़ाकिर हुसेन शाह सियालवी, मौलाना याक़ूब क़ासमी और डा० अब्दुल अज़ीम इस्लाही की राय है कि ऐसी पार्टी के अच्छे स्वभाव वाले उम्मीदवार से अगर मुसलमानों को लाभ प्राप्त होने और हानि को रोकने की आशा हो तो ऐसे उम्मीदवार को वोट देना उचित है परन्तु शर्त यह है कि उससे अच्छा कोई उम्मीदवार न हो।

"دفع المضرة اولی من جلب المنفعة"

1-हानि को रोकना लाभ प्राप्त करने से अधिक महत्वपूर्ण है

"من ابتلی ببلیتین فلیختر اهونهما"

2-जो व्यक्ति दो मुसीबतों में पड़े तो उसको कमतर को अपनाना चाहिए

"درء المفاسد اولی من جلب المصالح"

3-बुराइयों को दूर करना लाभ प्राप्त करने से बेहतर है

मुस्लिम विरोधी पार्टी में शामिल होना:

कुछ लोगों की राय है कि राजनीतिक रणनीति या किसी विशेष उद्देश्य के लिए इस तरह की पार्टी में भाग लिया जा सकता है। (डा० यूसुफ़ क़ासिम, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, सैयद खुरशीद हसन रिज़वी, सैयद अमीर हुसेन ग़ीलानी, मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

दलीलें:

"وان جنحوا للسلم فا جنح لها"

1-यदि वह शान्ति समझौते के लिए झुकें तो उसके लिए सहमत हो जाओ।

2-सैयद अमीर हुसैन गीलानी ने नबी अकरम (सल्ल०) का मदीना आने के बाद ग़ैर मुस्लिमों से समझौता करने को भी दलील के रूप में प्रस्तुत किया है।

3-मौलाना शमसुद्दीन साहब ने मुफ़्ती महमूद हसन गंगोही (फ़तावा महमूदिया 425/13) की राय, अर्थात राजनीतिक पार्टी में सम्मिलित होने की वैधता के लिए अपनी दलील बनाया है।

लेकिन मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी ने सम्मिलित होने वाले के लिए शर्त लगाई है कि वह उस पार्टी की नीतियों से कभी सहमत न हो, और मुफ़्ती अब्दुर्रहीम साहब ने ऐसे व्यक्ति के लिए अपने दीन व ईमान की रक्षा करने की शर्त लगाई है।

प्रश्न- -(द) मिल्ली हितों के अन्तर्गत ग़ैर मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों से समझौतेः

इस प्रश्न के दो भाग हैं: एक तो मिल्ली हितों के अन्तर्गत चुनाव के अवसरों पर उनके साथ समझौते और पार्टी में सम्मिलित होने और उसको समर्थन देने से सम्बन्धित है, और दूसरा यह कि उसकी शरआी हैसियत क्या बनती है, लगभग सभी शोध पत्र लेखकों ने इसको वैध ठहराया है, उनका कहना है कि हुदैबिया समझौता और मदीने के आस पास के यहूदी क़बीलों से समझौता जिसे मीसाक़-ए-मदीना (मदीने का समझौता) कहा जाता है, वह हमारे लिए उपयुक्त उदाहरण है, परन्तु साधारण रूप से हर स्थिति पर उसे लागू नहीं करना चाहिए।

मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, और मौलाना आमिर ज़फ़र का कहना है कि यह मात्र वैध ही नहीं बल्कि यह वरीयता देने योग्य है, और मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना असरारुल हक़ सबीली की राय है कि ऐसा करना अवसर होने पर अनिवार्य है, और मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी साहब कहते हैं कि यदि किसी बड़ी हानि की संभावना हो तो ऐसा करना अनिवार्य होगा।

दलीलें:

"انا فتحنا لک فتحا مبینا" (سورہ فتح۔ ۱)

हमने आपको खुली विजय दे दी है। (सूर: फ़तह-1) (लेख मौलाना शमसुद्दीन, मौ० अक़ीलुर्रहमान क़ासमी)

"وان جنحو اللسلم فاجنح لها" (سوره انفال ۶۱)

और अगर वह शान्ति समझौते के लिए बढ़ते है तो आप भी उनकी तरफ़ बढ़िये। (सूर: अन्फ़ाल-61) (क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना साबित शमीम रशादी)

"تعاونوا علی البر والتقوی" (سوره مائده-۲)

नेकी और अल्लाह के डर में सहयोग करो। (सूर: माइदा-2) (मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी)

"كان بينهم وبين النبی ﷺ عهد" (فتح الباری ۶/۲۷۲/ کتاب الجزیه والموادعه)

उनके और नबी (सल्ल०) के बीच समझौता था। (फ़तहुल बारी 272/6, किताबुल जिज़्या वल मुवादिआ) (मौलाना नियाज़ अहमद मदनी)

"وقد کان نبی عاهد حین قدم المدينة اصناف من المشرکين منهم النضير و بنو قينقاع و قريظه وعاهد قبائل من المشرکين ثم کانت بينه وبين قريش هدنة الحديبيه الی ان نقضت قريش ذلک العهد بقتالها خزاعة خلفاء النبی" (احکام القرآن للجصاص ۳/۶۹) مقالہ مولانا ثابت شمیم رشادی

नबी (सल्ल०) जब मदीना आये तो ग़ैर मुस्लिमों के बहुत से गिरोहों से समझौता किया था उनमें से बनू नज़ीर, बनू क़ीनक़ाअ, क़ुरैज़ा उल्लेखनीय हैं, और ग़ैर मुस्लिमों के क़बीलों से समझौता हुआ परन्तु क़ुरैश, ने नबी (सल्ल०) के सहयोगी ख़ज़ाअ: से युद्ध करके उस समझौते को तोड़ दिया। (अहकामुल क़ुरआन लिल जसास 69/3) (लेख मौलाना साबित शमीम रशादी)

"الضرر الاشد يذال بالضرر الاخف"

भारी हानि को हल्की हानि के द्वारा मिटाया जाता है। (लेख मौलाना सादिक़ मुबारकपूरी)

मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने समझौते की यह दलीलें बयान की हैं:

नबी करीम (सल्ल०) ने मक्का वालों के विरुद्ध खज़ाअ: क़बीले से समझौता किया था।

"دخلت خزاعة فی عقد رسول الله وعهده" الخ

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने खज़ाअ: क़बीले से समझौता किया था।

(पैग़म्बर जीवनी: इब्ने हिशाम 390/2)

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी ने लड़ाई की स्थिति में ग़ैर मुस्लिमों से सहायता लेने को आधार बनाया है, और इस सिद्धान्त का उल्लेख किया है:

"اذا ابتلی ببلیتین فلیختر اهونهما"

अगर दो मुसीबतें एक साथ आयें तो उनमें से हल्की को चुनना चाहिए। (किफ़ायतुल मुफ़्ती 339/9) और यही कथन मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी का भी है।

सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन सियालवी ने विभिन्न फ़ुक़हा के हवाले से लिखा है कि यह समझौते, सहयोग या सहायता सामूहिक भी हो सकते हैं और व्यक्तिगत भी (नीलुल अवतार 223/7, सुबुलस्सलाम 49/4, अलबदाएअ 101/7, अलमुग़नी अल मुहताज 389/4, अल बहरुज़्ज़ख़्ख़ार 389/5, अल मीज़ान लिश्शोअ़रानी 181/7, अल फ़िक़्हुल इस्लामी व अदिल्लातुहू 6421/8)

" واستعار الرسول ایضا یوم الحنین ادرعا من صفوان بن امیه وهو یومئذ مشرک" (سیره بن هشام ۱/۰۸۴)

1-रसूलुल्लाह सल्ल0 ने भी हुनैन की लड़ाई के समय सफ़वान बिन उमैया से एक दिरआ उधार के रूप में लिया। और वह उन दिनों ग़ैर मुस्लिम थे। (पैग़म्बर जीवनी: इब्ने हिशाम 480/1)

”واستعان كذالک فی هذه المعركة للاشتراک فی الجهاد بجماعة من المشركين تا لفهم من الغنا ئم“ سبل السلام ۴/۰۵) الفقه الاسلامی ۴/۲۴۲۶)

2-और इसी प्रकार उसी युद्ध में जिहाद में भाग लेने के लिए ग़ैर मुस्लिमों के एक गिरोह से सहायता प्राप्त की और ग़नीमत के माल से उनका दिल जीता ।

समझौते के शिष्टाचार:

आवश्यकता है कि ये समझौते शरीअत के दायरे में हों और अवैध मांगों का समर्थन न किया गया हो, और दूर दृष्टि रखने वाले मुसलमानों से इस सिलसिले में परामर्श किया जाये। यह राय मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपूरी, मौलाना उबैदुल्लाह, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, डा० अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अबू बक्र क़ासमी और सैयद शकील अहमद अनवर आदि की है। लेकिन मुफ़्ती महबूल अली वजीही साहब ने यह शर्त लगाई है कि समझौता लिखित होना चाहिए और मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी का कथन है कि समझौते का पालन न होने की स्थिति में उससे अलग हो जाना अनिवार्य होगा।

”امرهم شورى بينهم“ (سوره شوریٰ ۳۸)

1-उनके मामलात आपसी परामर्श से होते हैं। (सूर: शूरा-38)

”واوفوا بالعهد ان العهد كان مسئولا“

2-वचन को पूरा करो, इसलिए कि वचन के बारे में पूछ ताछ होगी। (सूरः इसरा-34)

" من لا يهتم بامر المسلمين فليس منهم ومن لم يصبح ويمسى ناصحا لله و رسوله ولكتابه ولامامه ولعامة المسلمين فليس منهم" (الاوسط للطبرانی)

3-जो मुसलमानों के मामलों पर ध्यान न दें वे उनमें से नहीं, और जो सुबह शाम अल्लाह, उसके रसूल, और किताब और उसके इमाम और आम मुसलमानों के लिए उपदेश न दे तो वह उनमें से नहीं।

(अल अवसत- लित्तबरानी)

विशेष परिस्थितियों में समझौता:

हानि से बचने और लाभ प्राप्त करने" के सिद्धान्त के अनुसार हालात और हितों को ध्यान में रखते हुए समझौते या समर्थन का निर्णय लिया जाये, और जो पार्टियाँ पक्षपाती (साम्प्रदायिक), इस्लाम दुश्मन, और मुस्लिम दुश्मन न हों केवल उन्हीं के साथ समझौता किया जायेगा। (देखिए लेख: मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी)

लेकिन मौलाना सुलतान अहमद इस्लाही का कहना है कि समझौता न करके केवल भाग लेने या समर्थन की नीति अपनायी जाये, जब कि मुफ़्ती रफ़ी उसमानी और मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी यह शर्त लगाते हैं कि समर्थन या समझौते इस्लाम और मुसलमानों के विरूद्ध न हों और न उनसे इस्लामी विश्वास पर कोई प्रभाव पड़े (मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना जफ़र आलम नदवी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

"لا ينهى كم الله عن الذين لم يقاتلوا كم في الدين ولم يخرجوا كم من ديار كم" الخ

1-तुमको अल्लाह नहीं रोकता उन लोगों से जिन्होने तुम्हारे साथ युद्ध नहीं किया और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला .... (सूरः मुम्तहिना-8)

"فيكون هذا من باب ارتكاب اخف الضررين"

2-यह कमतर हानि वाले गुनाह करने के अध्याय से होगा।

"ان الله ليئو دهذا الدين باالرجل الفاجر"

3'निः संदेह अल्लाह इस दीन को गुनाहगार आदमी से पूरा करता है। (हदीस)

4-मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी और मौलाना मुहम्मद इक़्बाल क़ासमी ने (किफ़ायतुल मुफ़्ती 392/9,401) और ब्यानुल क़ुरआन (खण्ड एक, सूरा आले इमरानः 28) के हवाले से इसकी वैधता की राय का उल्लेख किया है।

ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग लेने के सिलसिले में मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी साहब ने विभिन्न फ़ुक़्हा की रायें नक़्ल की हैं, उनमें इब्ने मन्ज़र, और जौज़ानी ने इससे मुसलमानों को मना किया है, इमाम शाफ़ई ने इसे वैध होने के लिए शर्त लगाई है कि वह ग़ैर मुस्लिम मुसलमानों के पक्ष में अच्छी सोच रखता हो, इमाम मालिक और इनके साथी ग़ैर मुस्लिम से सेवा लेने को वैध कहते हैं और इमाम अबू हनीफ़ा और उनके साथियों ने उनसे सहयोग लेने और सेवा प्राप्त करने को वैध ठहराया है।

(अल-मुग़नी 456/10, ईलाउस्सुनन 51/12)

समझौता की अवैधताः

कुछ शोध लेखकों का मानना है कि इस्लाम और मुस्लिम विरोधी

पार्टियों से समझौता करना या उनका समर्थन करना उचित नहीं है। (मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी इत्यादि) मुफ़्ती रफ़ी उसमानी साहब इसके अतिरिक्त कहते हैं कि यदि नेतृत्व ग़ैर मुस्लिमों के हाथ में हो तो उससे बचना अनिवार्य होगा।

"ایھاالناس ! اتقوا الظلم فانہ ظلمات یوم القیامۃ"

1-ऐ लोगो! अन्याय से बचो इसलिए कि क़यामत के दिन उसके कारण तुम्हारे सामने अन्धेरे होंगे। (मुस्लिम 320/2)

2- यह बुराई और विद्रोह का सहयोग करना होगा।

"یا ایھاالذین آمنوا لا تتخذوا بطانۃ من دونکم " الخ

3-ऐ लोगो जो ईमान लाये हो अपने लोगों के सिवा दूसरों को अपना रहस्य न बताओ .... (सूर: आले इमरान-118)

"یاایھاالذین آمنوا لا تتخذوا الیھود و النصاری اولیاء بعضھم اولیاء بعض و من یتولھم منکم فانہ منھم" (سورہ مائدہ ۵۱)

4- ऐ लोगो जो ईमान लाये हो यहूद और ईसाइयों को दोस्त न बनाओ वे आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं और जो कोई तुममें से उनकों दोस्त बनाता है तो उन्ही में से है। (सूर: माइदा-51)

इन आयतों को ध्यान में रखते हुए क़ुरआन मजीद के व्याख्या कारों ने लिखा है कि ग़ैर मुस्लिमों से दोस्ती करना और मुसलमानों के मामले में उनसे सहयोग या समर्थन लेना विशेष रूप से दीन के मामले में उचित नहीं है। (अहकामुल क़ुरआन लिल जस्सास 123/3) (तफ़सीर अबु मसऊद 226/1, जवाहिरुल फ़िक़्ह के हवाले से)

समझौते की शरअी हैसियत:

प्रश्न के दूसरे भाग की शरअी तौर पर क्या हैसियत होगी? तो इस सिलसिले में कुछ लेखकों ने स्पष्ट रूप में उत्तर दिया है। कुछ लोगों का कथन है कि उसकी शरअी हैसियत वचन और समझौते की होगी। (मौलाना अमीर हुसैन जीलानी, मौलाना फुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, क़ाज़ी हारून मैंगल) मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही के अनुसार इसकी शरअी हैसियत हानि से बचना है, और मौलाना जमील अहमद नज़ीरी का कथन है कि इसकी हैसियत एक परामर्श की होगी, लेकिन मौलाना साबित शमीम रशादी के अनुसार इसकी हैसियत वैधता की होगी जैसा कि इब्ने अरबी कहते हैं:

"وعقد الصلح ليس بلازم للمسلمين وانما جائز باتفاقهم"

शान्ति समझौता करना मुसलमानों के लिए अनिवार्य नहीं है उनकी सहमति से ही वह वैध है। (तफ़सीर माजिदी 310/2)

मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी का कहना है कि महत्व और आवश्यकता के अनुसार ही उसकी शरअी हैसियत निर्धारित की जायेगी, मौलाना असअद क़ासमी साहब इस सिलसिले में कहते हैं कि समझौता तो कर सकते हैं लेकिन उसको शरीअत का रंग देना और नेतृत्व के पदों पर आसीन लोगों का भाग लेना उचित नहीं है।

प्रश्न- -(इ) भलाई का आदेश व बुराई से रोकना, न्याय, शान्ति और सुरक्षा का वातावरण स्थापित करने के लिए ग़ैर मुस्लिमों के साथ सहयोग:

इस प्रश्न के अन्तर्गत लगभग सभी उलमा ने कहा है कि उपरोक्त काम करने के लिए ग़ैर मुस्लिमों के सहयोग व भागीदारी से काम किया जा सकता है और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ग़ैर मुस्लिमों के साथ

मिलकर संगठन बनाये जा सकते हैं, इन सज्जनों ने निम्न लिखित दलीलें दी हैं और विशेष रूप से अच्छे कामों में सहयोग को अपनी दलील बनाया है:

"كنتم خيرا مة اخرجت للناس تامرون بالمعروف و تنهون عن المنكر"

(سوره آل عمران ١٠)

तुम बेहतरीन उम्मत हो, लोगों के लिए भेजे गये हो, भलाई का आदेश देते हो, और बुराई से रोकते हो। (सूर: आले इमरान-110) (लेख मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"انماالمومنين اخوه فاصلحوا بين اخويكم" (سوره حجرات ١٠)

मुसलमान भाई-भाई हैं अत: उनके बीच शान्ति समझौता कराओ (सूर: हुजुरात 10) (लेख मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"ان اللـه يـامـر بـالعدل والاحسان وايتاء ذى القرباء و ينهى عن الفحشاء والمنكر وابغى" (سوره نحل ٩٠)

अल्लाह आदेश देता है, न्याय का और भलाई का, और रिश्तेदारों को, देने का और रोकता है, अश्लीलता से, बुराई से और विद्रोह से (सूरा: नहल: 90) लेख- मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी)

"والـذى نـفسى بيده لتأمرن بالمعروف ولتنهون عن المنكير يوسكن الله ان يبعث عليكم عقابا ثم تدعونه ولا يستجاب لكم" (ترمزى)

क़सम है उस हस्ती की जिसके हाथ में मेरी जान है तुम भलाई का आदेश करोगे और बुराई से रोकोगे या निकट हो जाओगे इस बात से कि तुम्हारे ऊपर अल्लाह सज़ा उतार दे फिर तुम उसको पुकारोगे तो स्वीकार नहीं करेगा।

"انصرا خاک ظالما او مظلوما"

अपने भाई की मदद करो, चाहे वह अत्याचार करे, या उस पर अत्याचार हो रहा हो। (हदीस) (लेख- मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"تعاونوا علی البر والتقوی"

सहयोग करो नेकी और अल्लाह के डर के मामले में। (सूर: माइदा-2) (मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना अकीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी)

मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, और मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी नेकी में इन्सान के हित में जितने काम हो सकते हैं उन सबको सम्मिलित किया है।

और मौलाना अबू सूफ़ियान मिफ़्ताही ने इस हदीस को दलील बनाया है:

"ان اللہ یوید ھذاالدین بقوم لا خلاق لھم"

"बेशक अल्लाह इस दीन की मदद उस क़ौम के द्वारा कराता है जो नीच होती है।"

कुछ उलमा ने हिल्फुल फ़ुज़ूल की घटना से भी दलील दी है, और कहा है कि प्रश्न में जिन मामलों का उल्लेख किया गया है, हिल्फुल फुजूल के उद्देश्य भी लगभग वही थे, मौलाना राशिद हुसैन नदवी इसकी इबारत यूँ नक़ल करते हैं:

"وشھد رسول اللہ حلف الفضول (الی) وتعاقدوا وتعا ھدوا باللہ لیکوننّ یدا واحدۃ مع المظلوم علی الظالم حتی یؤدی حقہٗ (الیٰ) لقد شھدت فی دار عبد اللہ بن جدعان حلفاً لودعیت بہٖ فی الاسلام لا جبت، تحا لفوا ان

يردوا الفضول على أهلها وان لا يعز الظالم مظلوما"

रसूलुल्लााह (सल्ल्०) हिल्फुल फ़ुज़ूल में मौजूद थे और लोगों नें आपस में वचन दिया कि वे लोग एक जुट होकर पीड़ित का समर्थन करेंगे और अत्याचारी का विरोध करेंगे यहाँ तक कि पीड़ित का हक़ मिल जाये, मैं अब्दुल्लाह इब्ने जद्आन के घर में (हिल्फुल फ़ुज़ूल के समझौते के समय मौजूद था और अब इस्लाम में भी इस तरह के समझौते की दावत मुझे दी जाये तो उसे स्वीकार करूंगा। और लोगों ने वचन दिया कि हक़दार को उसका हक़ वापस करेंगे और पीड़ित के मुक़ाबले में अत्याचारी का समर्थन नहीं किया जायेगा।) (सीरत इब्ने कसीर-257, 259/1) (मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, डा० अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना क़मरूज्ज़मा नदवी, मुफ़्ती महबूब अली वज़ीही, मुफ़्ती फुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना ज़फर आलम नदवी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी)

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी ने इन मामलों को उच्च नैतिकता से सम्बंधित बताया है और कहा है कि इस्लाम में इसका बहुत महत्व है, अत: रसूलुल्लाह (सल्ल्०) ने फ़रमाया:

"انما بعثت لاتمم مكارم الاخلاق" (٩)

1-"मैं इसलिए भेजा गया हूँ कि मैं उच्च नैतिकता को पूर्णता प्रदान करूं" (शोअबुल ईमान, बैहेक़ी 231/6)

2-हज़रत ज़ाबिर (रज़ि) से उल्लिखित है कि रसूलुल्लाह (सल्ल्०) ने फ़रमाया ''अल्लाह ने मुझे अच्छे आचरण, व पूर्णरूप से अच्छे कामों के

लिए भेजा है" (शोअ़बुल ईमान, बैहेक़ी)

3-अब्दुल्लाह इब्ने मुबारक से रिवायत (उल्लेख) है कि लोगों से हँसी ख़ुशी से मिलना, भलाई का व्यवहार करना और किसी को कष्ट देने से बचाना।

उन्होने आगे कहा कि सहयोग केवल मुसलमानों के साथ विशेष नहीं है बल्कि साधारण लोगों, यहाँ तक कि ग़ैर मुस्लिमों के साथ भी अच्छे व्यवहार और सहयोग का आदेश है ।

"قال رسول الله خالق الناس بخلق حسن"

4-लोगों का पैदा करने वाला अच्छे आचरण वाला है। (तिर्मिज़ी 19/2)

"قال ر سول الله الخلق عيال الله فاحبٌ الخلق إلى الله من احسن الى عياله"

5-रसूलुल्लाह (सल्ल्०) ने फ़रमाया: सारी स्रष्टि (मख़लूक़) अल्लाह का कुटुम्ब है, तो अल्लाह की दृष्टि में सबसे प्यारी स्रष्टि (मनुष्य) वह है जो उसके कुटुम्ब के साथ अच्छा व्यवहार करे। (मिश्कात-425)

6-इमाम बुख़ारी ने "ग़ैर मुस्लिम के साथ अच्छा व्यवहार" पर एक अध्याय स्थापित करके इस बात की तरफ़ इशारा किया है कि ग़ैर मुस्लिम के रक्त सम्बधियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाना चाहिए।

"لا ينهى كم الله عن الذين لم يقاتلوا كم فى الدّين ولم يخرجو كم من ديار كم" الخ

7-अल्लाह तुमको नहीं रोकता है उन लोगों से जिन्होनें तुम से लड़ाई नहीं की और तुमको तुम्हारे घरों से नहीं निकाला। (सूर : मुम्तहिना-9) (लेख: मौलाना बुरहानुद्दीन संभली, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

और आप नबी (सल्ल्०) ने स्वयं ग़ैर मुस्लिमों की मदद की है

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

(अ) हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर अपने पिता से रिवायत करते हैं कि कुरैश (मक्का के गै़र मुस्लिमों) को सूखे का सामना हुआ तो आप (सल्ल्०) ने सोने की गुठलियाँ अबू सुफ़ियान को भेजीं कि वह अपनी कौम मैं बाँट दें,जब सुफ़ियान को यह पहुँचा तो उसने कहा कि मुहम्मद (सल्ल्०) के पास अच्छे आचरण ही तो हैं (मकारिम इब्ने अबी दुनिया 258)

(ब) अल्लामा शामी लिखते हैं:

"ان النبیؐ بعث خمس میاۃ دنیا ر الی مکه حین قحطوا وامر بدفعها الی ابی سفیان و صفوان بن امیه لیفرقا علی فقرا أهل مکه" (شامی ۲.۳۵۳)

2-जब मक्का में अकाल पड़ा तो नबी (सल्ल्०) ने पाँच सौ दीनार अबू सुफि़यान और सफ़्वान इब्ने उमय्या को भेजा कि वह उसे मक्का के ग़रीबों में बाँट दें। (शामी-353-2)

(स) इमाम मुहम्मद ने अस्सीरुल कबीर में लिखा है

"لآ باس لمسلم أن یؤتی کا فرا حر بیا أو ذمیا"

मुसलमान के लिए इस बात में कोई तंगी नहीं है कि वह अपने विरुद्ध युद्धरत (हर्बी) काफ़िर या गै़र मुस्लिम जो मुसलमानों की छत्र छाया में (ज़िम्मी) हों, को दान दें। इसपर अल्लामा शामी लिखते हैं ।

"ولانّ صلة الرحم محمودة فی کل دین ولا هداء الی الغیر من مکارم الا خلا ق"

रक्त सम्बन्धियों से अच्छा व्यवहार हर धर्म में सराहनीय है और दूसरों को उपहार देना उच्च नैतिकता की बात है। (353-2)

मौलाना सैयद कुदरतुल्लाह बाक़वी का कथन है कि गै़र मुस्लिमों के

साथ सहयोग इस शर्त के साथ वैध है कि दोनों का उद्देश्य एक हो और दलील में यह आयत प्रस्तुत करते हैं:

"عا لواعلی کلمة سواء بیننا وبینکم........الا خر"

उस बात की तरफ़ आओ जो हमारे और तुम्हारे बीच एक जैसी है........

मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी लिखते हैं कि मदीना में मुसलमानों के सबसे क़रीबी पड़ौसी यहूदी थे, रसूलुल्लाह (सल्ल्॰) ने उनके साथ समझौता किया था और इस समझौते की धाराओं पर विचार करने से पता चलता है कि शान्ति और न्याय स्थापित करने के लिए अपने पड़ौसी ग़ैर मुस्लिमों से एक सीमा तक सहयोग लिया जा सकता है, बल्कि सामूहिक रूप में यदि यह दायित्व पूरा किया जाये तो उसके अच्छे प्रभाव होंगे।

और मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी और मौलाना अबू बक्र क़ासमी ने आज़ादी की लड़ाई में ग़ैर मुस्लिमों के साथ सहयोग को दलील बनाया है।

मौलाना अबू बक्र क़ासमी ये दलीलें प्रस्तुत करते हैं:

1-सीरत (जीवनी) की किताबों में लिखा है कि जब नबी (सल्ल्॰) मदीना पहुँचे तो आपने मदीने के यहूदियों से समझौता किया और उस समझौते में यह घोषणा भी थी कि यस्‌रिब पर हमले की स्थिति में एक दूसरे की सहायता की जायेगी। (सीरत इब्ने हिशाम 119-2)

2-वाकि़दी ने मग़ाज़ी में उल्लेख किया है।

"خرج رسول الله بعشرة من یهود المدینة غزابهم أهل خیبره"

रसूलुल्लाह (सल्ल्॰) दस यहूदियों के साथ मदीने से निकले और ख़ैबर वालों से युद्ध किया। (नसबुर्राया 422-3)

"روی الشافعی فی مسنده عن ابن عباس ان النبی استعن بناس من الیهو د

فی حر به"

3-शाफ़ई ने अपनी किताब मुसनद में लिखा है कि नबी (सल्ल्०) ने युद्ध में यहूदियों के कुछ लोगों से सहयोग लिया।

4-बद्र के युद्ध से पहले हुज़ूर ने इरशाद फ़रमाया मैं अनेकश्वरवाद की पूजा करने वालों से कभी सहयोग नहीं लूँगा। "لن استعین بمشرک" लेकिन फिर बद्र की लड़ाई के बाद आप (सल्ल्०) ने ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग लेने की अनुमति दे दी थी। (रद्दुल मुहतार 257-3)

5-अबू दाऊद ने अपने मरासील में लिखा है कि जब हज़रत सफ़वान ग़ैर मुस्लिम थे उन्होंने हुनैन की लड़ाई में भाग लिया और सहयोग दिया तो कुरैश के काफ़िरों ने उनसे पूछा क्या तुम मुहम्मद (सल्ल्०) से मिलकर युद्ध करते हो हालाँकि तुम उनके धर्म को नहीं मानते हो तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि, हाँ कुरैश क़बीले का पालनहार हवाज़िन के पालनहार से बेहतर है ।"

6-अल्लामां इब्ने हेमाम ने फ़त्हुल क़दीर में लिखा है:

"وهل یستعان بالکافر عندنااذا دعت الحاج جازوهو قول الشافعی"

क्या ज़रूरत के समय ग़ैर मुस्लिमों से मदद माँगना वैध है? ''हमारे मत के अनुसार आवश्यकता होने पर वैध है।'' और यह शाफ़ई का कथन है।

7-अल्लामा कासानी ने ग़ैर मुस्लिमों से लड़ाई में आवश्यकता पड़ने पर ग़ैर मुस्लिमों से मदद लेने को वैध लिखा है। (बदाइउस्सनाएअ 101-7)

इसके अतिरिक्त चारों इमामों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि आवश्यकता पड़ने पर ग़ैर मुस्लिमों और अनेकश्वरवाद की कारण रखने

वालों से मदद लेना वैध है।

मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी और मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी के कथनानुसार आपस के शान्ति समझौते के माध्यम से इस्लाम और मुसलमानों के सम्मान की रक्षा के लिए इस पर अमल करने की गुन्जाइश है, और उन्होंने किफ़ायतुल मुफ़्ती पृ॰ 445, 393/9 के हवाले से लिखा है कि तमाम विभागों में, उद्योगों, और व्यापार व कृषि में अपने दीन व ईमान की रक्षा के साथ भाग लेना वैध है ।

कुछ प्रतिबन्धों के साथ मिलकर काम करने की अनुमतिः

कुछ शोध लेखकों ने ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर काम करने और संस्था और संगठन बनाने की अनुमति तो दी है लेकिन कुछ बातों की तरफ़ ध्यान देने का उल्लेख भी किया है जैसे मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही दो बातों की तरफ़ ध्यान दिलाना चाहते हैं:

1-अच्छा यह है कि इस प्रकार के काम में मुस्लिम संगठन या व्यक्ति स्थायी रूप से मुस्लिम पहचान के साथ काम करें ताकि उसका लाभ सीधे तौर पर इस्लाम और मुसलमानों को मिले।

2-इन संगठनों और संस्थाओं पर समझदार मुसलमानों का नियन्त्रण हो, ताकि इनको दूसरे उद्देश्यों के लिए प्रयोग न किया जा सके।

सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने इस हदीस:

”أخرج الإمام أحمد وأبوداود ونسائی وابن حبان والحاكم عن أنس ابن مالک أن النبیؐ قال جاهد والمشركين بأموالكم وأنفسكم والسنتكم“

इमाम अहमद, अबू दाऊद, नसाई और इब्ने हिब्बान और हाकिम ने अनस इब्ने मालिक से रिवायत की है कि नबी (सल्ल्॰) ने फ़रमाया कि

अपने माल जान और ज़बान से ग़ैर मुस्लिमों से जिहाद करो। (अल फ़िक़्हुल इस्लामी 6014/3) के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह बात यहाँ स्पष्ट है कि आर्थिक सहायता दिल को बदलने और रिझाने के लिए होगी, अगर संगठन हैं तो उनसे सहयोग होगा और मानवता की भलाई के लिए आगे बढ़ना होगा, मुसलमान शासन वाले देशों में ज़िम्मियों (जो मुसलमानों की पनाह में हों) उनसे मिलकर मुसलमान ऐसे सभी काम करते रहे हैं तो ग़ैर मुस्लिम शासन में इस्लामी हितों के लिए ऐसा करना इससे भी अच्छा होगा। अल्लामा जुहैली के हवाले से यहाँ तक वे कहते हैं कि मानवता की भलाई के लिए अपने सदक़े (दान) तक ग़ैर मुस्लिमों को दे सकते हैं।

"وتحل الصدقة ايضًا على فاسق وكافر من يهودون صرانى او مجسى ذى أو مربى"

सदक़ा देना हलाल किया गया है यहूदी, ईसाई, आग पूजने वालों में से ग़ैर मुस्लिमों को जो मुसलमानों की छत्र छाया में हों अथवा मुसलमानों के विरुद्ध युद्धरत हों। (फ़िक़्ह इस्लामी 2057/2)

और किताब के लेखकों ने इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए इस आयत को दलील बनाया है

"ويطعمون الطعام على حبه مسكينا و يتيما واسيرا"

वह खाना खिलाते हैं अल्लाह की मुहब्बत में ग़रीबों, यतीमों (अनाथ) और क़ैदियों को।

ग़रीब और यतीम तो मुस्लिम समाज में मौजूद थे लेकिन क़ैदी से तात्पर्य तो लेखक के अनुसार उस समय मात्र ग़ैर मुस्लिम योद्धा ही हो सकता है।

विभिन्न सामाजिक, जन कल्याण, और मानवीय समस्याओं में ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग के सिलसिले में अल्लामा ज़ुहैली ने एक वाक्य का उल्लेख किया है।

”ولخلاصة ان الاسلام يتوا فی لحظة واحدة عن سعيه لاقامة علاقات طيبة مع غير المسلمين لتحقيق التعاون البناء فی سبيل الخير والعدل ا لبر ولامن وحماية الحرمات ونحو ذالک“

और निचोड़ यह है कि इस्लाम ग़ैर मुस्लिमों से अच्छे सम्बन्ध बनाने की कोशिश में क्षण भर भी देर नहीं करता जिसके फलस्वरूप भलाई, न्याय, नेकी, शान्ति और निषिद्ध चीजों से रोकने के लिए सहयोग हो सके।

(अल फ़िक़्हुल इस्लामी 6421/8)

और इसके साथ वह इस बात को अनिवार्य बताते हैं कि अपनी पहचान बनाये रखें और बहुसंख्यक सभ्यता में विलीन न हो जायें।

कुछ उलमा का कथन है कि केवल सहयोग करना अनिवार्य नहीं बल्कि उलमा और पथ-प्रदर्शकों को इसमें पहल करना चाहिए, इसलिए कि यह मुसलमानों और इस्लाम की अच्छी छवि प्रस्तुत करने का माध्यम बनेंगी, लेकिन शर्त यह है कि तरीक़ा इस्लाम के विरुद्ध न हो और न इससे इस्लामी हितों को कोई हानि पहुँचे। (मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना मुहम्मद इसहाक़ क़ासमी)

और कुछ उलमा का कथन है कि हर सम्भव मुसलमानों को स्वयं

यह कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए, और मुसलमान ख़ुद इस प्रकार की संस्था और संगठन स्थापित करें और आवश्यकतानुसार ग़ैर मुस्लिमों को भी उसमें सम्मिलित करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन अधिकार और निर्णय का हक़ मुसलमानों के ही पास रहना चाहिए। (मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र, मुफ़्ती मुहम्मद असरारुल हक़ सबीली, मौलाना उबैदुल्लाह, मुफ़्ती रफ़ी उसमानी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, सैयद अमीर हसन जीलानी)

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी लिखते हैं कि ग़ैर मुस्लिमों के साथ उनके धर्म को पसन्द करते हुए उनसे दोस्ती और प्रेम रखना हराम है, लेकिन एक साथ रहने और पड़ौसी की हैसियत से या सभ्यता और सामाजिक आवश्यकता के लिए उनसे मिलना, जुलना बात चीत करना, और क्रय-विक्रय करना और उपहार का लेन देन सब हलाल और वैध हैं (किफ़ायतुल मुफ़्ती 272/9) और अमीर हसन जीलानी का कहना है कि मुसलमान अगर अल्पसंख्यक हैं और राजनीतिक रूप से दुर्बल हैं तो यह मजबूरी है:

"ومن يفعل ذالک فليس من الله فی شيی ان تتقوا منهم تقاةً"

1-जो ऐसा करेगा तो अल्लाह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु यदि तुम्हें उनसे डर हो तो ज़ाहिरी तौर पर ऐसा कर सकते हो। (आले इमरान 28)

"وقد فصل لكم ما حرم عليكم الا ما اضطررتم اليه..." (سورہ انعام ۱۱۹)

2-मजबूरी की बातों के सिवाय जो चीजें तुम्हारे लिए हराम हैं उनका विस्तृत विवरण तुम्हें वह बता चुका है। (सूरः अनआम 119)

3-हिदाया में है:

”اذا رأی الامام ان یصالحا اهل الحرب اوُ فریقاً منهم وکان ذالک مصلحة للمسلمین فلا بأس بهِ“

अगर इमाम मुसलमानों से युद्ध करने वालों या उनके किसी एक पक्ष को देखे कि उनसे शान्ति समझौता करना मुसलमानों के हित में है, तो इसमें कोई हानि नहीं है।

इन सब मत व विचारों के विपरीत मौलाना अस्‌अद क़ासिम सम्भली की राय अलग है, उनका कथन है कि अच्छाई और बुराई (मारूफ़ व मुनकर) शुद्ध शरअी शब्दावली हैं जिनकी अम्र व नेही (आदेश व मनाही) का दायित्व कुरआन ने ईमान वालों पर डाला है, यह उसी समय सम्भव है जब मुसलमानों को अधिकार प्राप्त हों और नियम अधिक नहीं तो एक सीमा तक उनके पक्ष में हों, हम अगर इस समय इस स्थिति में नहीं हैं तो न्याय स्थापित करना हमारा दायित्व भी नहीं है। इसलिए ऐसी संस्थाएं स्थापित करना और उनमें भाग लेना भी उचित नहीं है। हमें यह काम पहले की तरह स्वयं करना चाहिए।

इस प्रश्न के अन्दर शब्द 'ग़ैर मुस्लिम भाइयों' के प्रयोग पर असहमति व्यक्त करते हुए मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी साहब कहते हैं कि कुरआन करीम ने कई जगह ग़ैर मुस्लिमों को मित्र बनाने से मना किया है, और भाई बनाना तो बहुत दूर की बात है, भाई का सम्बन्ध केवल मुसलमानों के बीच ही हो सकता है। इस सिलसिले में कुछ आयतें हैं जो निम्नलिखित हैं:

”یا ایهاالذین آمنوا لا تتخذوا عدوی وعدوکم اولیاء تلقون الیهم بالمؤدة وقد کفروا بما جاء کم من الحق.....“(سوره ممتحنه ۱)

1-ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मेरे दुश्मनों और तुम्हारे दुश्मनों को दोस्त न बनाओ तुम उनसे प्यार से मिलते हो हालाँकि वे इनकार करते हैं उस

सच्चाई से जो तुम्हारे पास आई है। (सूर: मुम्तहिना-1)

"ياايهاالذين آمنوا لا تتخذوالذين اتخذوادينكم هزواً ولعباً من الذين اوتوا الكتاب من قبلكم والكفار اولياء"

2-ऐ लोगो जो ईमान लाये हो जिन लोगों को तुमसे पहले किताब दी गई और काफ़िरों ने तुम्हारे दीन को मज़ाक़ और खेल बना रखा है उन को अपना दोस्त मत बनाओ। (माइदा-51)

"ياايهاالذين آمنوالا تتخذواليهود والنصارى اولياء بعضهم اولياء بعض ومن يتولهم منكم فانه' منهم "

3-ऐ ईमान वालो यहूदियों और ईसाइयों को दोस्त न बनाओ वे एक दूसरे के दोस्त हैं और तुममें से जो उनसे दोस्ती करता है वह उन्हीं में से है। (माइदा-51)

4-सारे मुसलमान भाई-भाई हैं। (सूर: हुजुरात-10)

"انماالمومنون اخوة"

प्रश्न- -(अ) मुसलमानों का मिश्रित आबादी में रहना और अपनी अलग आबादी बनाना:

लगभग तमाम लेखकों का विचार यह है कि मुसलमानों को अपनी अलग आबादी बनाना या जिन क्षेत्रों में मुसलमान बहुसंख्यक हों वहाॅ रहना बेहतर है, भिन्न-भिन्न लोगों ने इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये हैं और निम्नलिखित हदीसों को अपने उसूल व तर्क बनाये हैं

"انا برى من كل مسلم يقيم بين اظهرالمشركين، قالو:يارسول الله لِمَ قال: لا ترىٰ ناراهما "

1-मैं हर उस मुसलमान से बरी हूॅं जो अनेकश्वरवाद करने वालों के

बीच रहता है तो लोगो ने पूछा कि ऐ रसूलुल्लाह (सल्ल्०) क्यों? तो आपने फ़रमाया क्यों? तुम उन दोनों की समानता को नहीं देखते?

(अबू दाऊद, अध्याय जिहाद-95)

मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी इस हदीस की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि ख़ताबी ने इस हदीस के अन्तर्गत लिखा है:

"कुछ लोगो ने कहा है कि अल्लाह ने दारुल इस्लाम (इस्लाम शासित क्षेत्र) और दारुल कुफ़्र (ग़ैर मुस्लिमों द्वारा शासित क्षेत्र) के बीच अन्तर बता दिया है इस लिए मुसलमान के लिए वैध नहीं कि वह ग़ैर मुस्लिमों के बीच रहें।" (मआलिमुस्सुनन 437/3) और अल्लामा सुयूती ने ''अन्नेहाया'' के हवाले से लिखा है "अगर मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के बीच से हिजरत करने की योग्यता रखता है, तो इस स्थिति में रसूलुल्लाह(सल्ल०) ने अनेकश्वरवाद की धारण रखने वालों के बीच में रहने से मना किया है।

(ज़ादुल मआद 122/3)।

और लगभग यही विवरण मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी ने भी दिया है।

"من جامع المشرک وسکن معه فانه مثله"

2-जो अनेकश्वरवाद की धारणा रखने वालों के बीच घुल मिल गया वह उन्हीं जैसा है।

इस हदीस के अन्तर्गत मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी लिखते हैं कि क्षेत्र और सभ्यता का प्रभाव तो पड़ता है, इसमें कोई मतभेद नहीं है, लेकिन आम तौर से मवाफ़िक़त (तुल्यता) का अर्थ है किसी का समर्थन करना और उसके तौर तरीक़े को अपनाना तो नबी (सल्ल०) के कथन का अर्थ यह होगा कि जो व्यक्ति ग़ैर मुस्लिमों के विश्वास (अक़ीदे) का समर्थन

करे और उन्हीं की जीवन शैली अपनाये वह ग़ैर मुस्लिमों में गिना जायेगा, और वह मोमिन जो ग़ैर मुस्लिमों के बीच रहकर इस्लामी दावत व प्रचार का कार्य करे तो वह ग़ैर मुस्लिमों में नहीं गिना जायेगा।

3-ग़ैर मुस्लिमों के बीच न रहो और उनसे न घुलो मिलो।

"تساكنوا المشركين ولا تجامعوهم"

4-सन्तान को दुश्मनों के बीच न छोड़ो।

"لا تتركوا الذرية يعنى بِازاء العدو"

5-हानि से बचना लाभ प्राप्त करने से अच्छा है

"دفع المضرة اولى من جلب المنفعة"

6-उद्देश्य को प्राप्त करने से बेहतर है कि बुराई से छुटकारा हासिल किया जाये।

"درع المفاسداولى من جلب المصالح اذا تعارضت مفسدة و مصلحة قدِم دفع المفسدة غالباً"

7-जब अच्छाई और बुराई में टकराव हो तो बुराई से बचने को प्राथमिकता देनी चाहिए। (अल इश्बाह वन्नज़ायर 147)

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी ने हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह बजली की रिवायत से यह हदीस भी नक़ल की है कि रसूलुल्लाह(सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो ग़ैर मुस्लिमों का तौर तरीक़ा अपनाये तो वह अल्लाह की ज़िम्मेदारी से अलग हो जाता है। और इसी तरह वह इस हदीस को भी तर्क के रूप में प्रस्तुत करते हैं:

"عن عمرؓ قال رسول اللهؐ لا تجالسوا اهل القدر ولا تفاتحوهم" (مشكوة ٢٣)

हज़रत उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल्०) ने

फ़रमाया क़दरिया सम्प्रदाय के लोगों के बीच न बैठो और मेल जोल न रखो।

आप (सल्ल०) ने क़दरिया सम्प्रदाय के लोगों के साथ बैठने और उनसे मेल मिलाप से मना किया है तो अनेकश्वरवाद की धारणा रखने वालों से मेल जोल की मनाही और अधिक होगी।

लेकिन कुछ लोगों ने यह कारण बताया है कि मिली जुली आबादी में रहने से लाभ कम और हानि अधिक है। इसके अतिरिक्त ग़ैर मुस्लिमों की सभ्यता का प्रभाव नई पीढ़ी पर पड़ना यक़ीनी है। और इसका प्रभाव विश्वास, आदत और रीति रिवाज पर भी पड़ेगा। इस लिए जहाँ ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हों उनसे बचना और सावधानी बरतना अनिवार्य है, और अपनी आबादी बसाना और जहाँ मुस्लिम बहुसंख्यक हों वहां रहना बेहतर है। (मौलाना उबैदुल्लाह असअदी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, सैयद कुदरतुल्लाह बाक़वी, मुफ़्ती मुहम्मद सलमान खली, मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना ख़ुर्शीद अहमद आज़मी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इसहाक़ क़ासमी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अबू बक्र क़ासमी, मौलाना क़मरुज्ज़मा नदवी, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना तन्ज़ीम आलम क़ासमी)

मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी ने इम्दादुल मुफ़्तीईन के हवाले से लिखा है कि इसमें भी ऐसा करने को बुरा कहा गया है। (फ़तावा दारुल उलूम, देवबन्द, मअ इम्दादुल मुफ़्तीईन 50/1)

मौलाना कमरुज्ज़मा नदवी ने भी मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी के

हवाले से इसी तरह का विचार नक़ल किया है।

(बहस-ओ-नजर, अंक-52,पृष्ठ 38)

मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी ने इस प्रस्ताव के वाक्यों को भी हवाले में प्रस्तुत किया है, जो ग़ैर मुस्लिम देशों में मुसलमानों की समस्याओं के विषय पर कुल हिन्द तामीरे मिल्लत हैदराबाद में 16-18 जून 2000 को होने वाले सेमीनार में सर्वसम्मति से पारित किया गया था।

और मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी और मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी ने शामी के हवाले से लिखा है कि मुसलमान अगर अपनी अलग आबादियाँ बसायें तो ग़ैर मुस्लिमों के लिए भी दरवाज़ा खुला रखें, लेकिन इस सीमा तक कि वह अतिप्रभावशाली न हो जायें ताकि वह दीन की अच्छाइयों से अवगत हो सकें और फलस्वरूप वह इस्लाम में आ जायें।

और मौलाना सादिक़ मुबारकपुरी ने इसी अर्थ के वाक्यों को (आलमगीरी 252/2) के हवाले से नक़ल किया है और यही राय मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही की भी है।

हालात के अनुसार आवासीय परिसर चुननाः

कुछ दूसरे लेखकों ने ग़ैर मुस्लिमों की सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित होने के साथ-साथ, देश के हालात और आये दिन होने वाले दंगों से जानी माली नुक्सान, इसी कारण होता है, इसलिए उनका कथन है कि मुसलमान अलग अपनी बस्तियां बसायें या मुस्लिम बहुल क्षेत्र में रहें, ताकि ग़ैर मुस्लिमों के ग़लत प्रभाव से सुरक्षित रह सकें, और दंगो के समय सामूहिक शक्ति से अपनी रक्षा कर सकें। (मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना नईम

अख़्तर क़ासमी, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी)

मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी कहते हैं कि मिली जुली आबादी में रहना या अलग अपनी बस्तियाँ बसाना, यह दोनों बातें उस शहर के विशेष हालात और माहौल पर आधारित हैं, लेकिन भारत की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उचित यही है कि मुसलमान अपनी अलग कालोनियाँ बना कर रहें, यही विचार सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी का भी है।

जबकि मौलाना साबित शमीम रशादी का कहना है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में जहाँ ग़ैर मुस्लिम क़ौमों की बहुलता है और सरकार के विभिन्न पदों पर बल्कि उच्च पदों पर ग़ैर मुस्लिम बैठे हुए हैं जो दंगे के अवसर पर बिजली पानी की आपूर्ति बन्द करके कष्ट देते हैं। मिली जुली आबादी में इस कष्ट से बचा जा सकता है। इसलिए अगर हालात अनुकूल हों और उपरोक्त समस्याएं न हों तो अलग आबादी उचित होगी, अन्यथा मिली जुली आबादी ही बेहतर है, और मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही के अनुसार जहाँ ऐसी स्थिति हो कि मिली जुली आबादी में मुसलमानों के घर बहुत ही कम हों, और प्रतिकूल परिस्थिति में जान माल का ख़तरा निश्चित हो, तो इस स्थिति में मुसलमानों का वहाँ से हट जाना ही उचित है, जबकि कुछ हालात में ऐसा करना अनिवार्य होगा।

इस्लाम की दावत के लिए मिली जुली आबादी में रहनाः

कुछ उलमा यह कहते हैं कि उपरोक्त उद्देश्यों के लिए मुसलमानों

को अपनी अलग बस्तियाँ बसाना तो बेहतर है, लेकिन अगर मिली जुली आबादी में रहकर इस्लाम का प्रचार प्रसार करना, और इस्लामी आचरण से प्रभावित करना, उद्देश्य हो तो ऐसी आबादी में रहना बेहतर है। और इसके साथ-साथ यह भी, कि अपने दीन व ईमान की मज़बूती और अक़ीदे व कर्त्तव्य, सुरक्षा और इस्लामी पहचान को बचाने में कोई कष्ट न हो, तो ऐसी दशा में मिली जुली आबादी में रहने में कोई हानि नहीं है। (मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना सैयद मुहम्मद अमीर हुसैन जीलानी, डा. यूसुफ़ क़ासिम, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना कमरुज़्ज़मा नदवी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी आदि)।

मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही के कथनानुसार अगर अलग रहना सम्भव न हो और कोई सरकारी अथवा क़ानूनी रुकावट न हो तो मिली जुली आबादी में इस नीयत से रहना बेहतर है कि वह ग़ैर मुस्लिमों को इस्लामी नैतिकता और चरित्र से प्रभावित कर सकें।

मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी और मौलाना अताउल्लाह क़ासमी के अनुसार अल्लाह पर भरोसा करते हुए मिली जुली आबादी में रहना मुसलमानों के लिए महान जिहाद है, इसी को डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही मौन जिहाद का नाम देते हैं।

मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी आगे लिखते हैं कि इस्लामी विचारक मौलाना अबुल हसन अली नदवी भी इसी विचार के समर्थक थे।

(कारवान-ए- ज़िन्दगी 260/7)

मौलाना अबू बक्र क़ासमी ने मौलाना तक़ी उस्मानी के हवाले से ग़ैर

मुस्लिमों के साथ आवास बनाने की पॉच स्थितियॉं लिखी हैं, जिनमें से तीन स्थितियों में आवास बनाना वैध है और दो में अवैध है। वैधता की, स्थितियों में यह है कि मुसलमानों की आबादी में जान माल की सुरक्षा प्राप्त न हो और हर समय बिना किसी अपराध के गिरफ़्तार होने अथवा क़त्ल कर दिये जाने का बहुत अधिक ख़तरा हो, और ग़ैर मुस्लिमों की मिली जुली आबादी में रहने के अतिरिक्त बचने का कोई तरीक़ा न हो, दूसरे यह कि मुसलमानों की बस्ती में आर्थिक संसाधन न हों इसके विपरीत ग़ैर मुस्लिमों की आबादी में रहने से वैध नौकरी मिल जाये, अर्थात् किसी मुसलमान को हलाल रोज़ी प्राप्त करने के लिए, ग़ैर मुस्लिमों की आबादी में रहना पड़ जाये और तीसरे यह कि ग़ैर मुस्लिमों को इस्लाम की दावत देने और उनको मुसलमान बनाने की नीयत से, या जो मुसलमान पहले से ग़ैर मुस्लिमों के साथ रह रहे हैं उनको दीन-ए-इस्लाम पर जमें रहने के लिए उपदेश देने के लिए वहां बसा जाये।

लेकिन ये तीनों स्थितियॉं उस समय वैध हैं, जब इनमें दो शर्तें पाई जायें, एक यह कि इस्लाम के आदेशों का पूरी तरह से पालन किया जाये, और दूसरे यह कि समाज में पाई जाने वाली बुराइयों से पूरी तरह सुरक्षित रह सकें।

अवैधता की स्थितियों में से यह है कि आवश्यकतानुसार आर्थिक स्रोत होने के बावजूद खुशहाली की नीयत से ग़ैर मुस्लिम के साथ रहा जाये, और दूसरे यह कि समाज में आदर प्राप्त करने, और मुसलमानों पर अपनी बड़ाई जताने के लिए ग़ैर मुस्लिमों की जीवन शैली अपना कर उन जैसा बनने के लिए उनके बीच बसा जाये, तो इन दोनों स्थितियों में शरीअत

की ओर से अनुमति नहीं है और यह अवैध हैं।

मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही के अनुसार समस्या यह नहीं है कि मुसलमान स्वतन्त्र हैं, और जहाॅं चाहें अपना घर बना लें, बल्कि समस्या यह है कि मुसलमान इस समय मिली जुली आबादी में भी रह रहे हैं, और अलग आबादी में भी रह रहे हैं, और अब साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण कुछ मुसलमान अलग आबादी में रहने के इच्छुक हैं, लेकिन दूसरे मुसलमान आर्थिक आवश्यकताओं और दूसरी आसानियों के लिए मिली जुली आबादी में रह रहे हैं और दोनों के पक्ष में दलीलें भी हैं।

मिली जुली आबादी के पक्ष में तर्कः

1-मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों को अपने चरित्र से प्रभावित कर सकें।

2-दावती सम्बन्ध सम्पर्क आसानी से स्थापित हो सकें।

3-साम्प्रदायिक खींच-तान और भेद-भाव का एहसास कम होगा और एक दूसरे को समझने और अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का अधिक अवसर मिलेगा।

अलग बस्तियाॅं बसाने के पक्ष में तर्कः

1-ग़ैर मुस्लिम समाज की सभ्यता और उसके दुष्प्रभाव से मुसलमान सुरक्षित रहेंगे।

2-सुरक्षा का एहसास प्रबल होगा।

3-इस्लामी समाज की स्थापना के लिए पहल में आसानी होगी।

वह आगे लिखते हैं कि अधिकतर उलमा का विचार यही था कि मुसलमानों को दारुल कुफ़्र छोड़ देना अच्छा है चाहे वहाॅं धार्मिक स्वतंत्रता

प्राप्त हो। (अल-मबसूत 74/10, अल-मजमूअ 262/19)

और फ़ुक़हा ने यह उसूल बनाया है कि:

"نية الاستمرار فی دار الکفر لا تحل بلا مبرر شرعی"

दारुल कुफ़्र में रहने की नीयत बिना किसी शरअी दलील के वैध नहीं है। और यह हदीस "انا بری.........الخ" "मैं बरी हूँ हर मुसलमान से" इसी सम्बन्ध में नक़ल की जाती है। लेकिन उपरोक्त समस्या इससे बिल्कुल अलग है, यहां तो उन मुसलमानों की समस्या पर चर्चा हो रही है जो दारुल कुफ़्र के नागरिक हैं, हिजरत के दरवाजे उन पर बन्द हैं अत: मेरा विचार यह है कि अलग आबादी की ओर विवेक पूर्वक पहल की जाये, और दूसरी तरफ़ दोनों आबादी के मुसलमानों के पक्ष में दोनों स्थितियां रहमत बन सकती हैं, यदि मुसलमान अपने उद्देश्य को प्राथमिकता दें।

अत: मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी ने ग़ैर मुस्लिमों समाज में मजबूरन फॅस जाने वाले मुसलमानों पर दो बातें अनिवार्य ठहरायी हैं:

(i) एक यह है कि इस्लामी मूल्यों की व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में रक्षा करना।

(ii) दूसरे इस्लाम के प्रचार प्रसार का कर्त्तव्य पूरा करना।

अगर कोई मुसलमान मजबूरन आर्थिक, आवश्यकता इलाज, या शिक्षा प्राप्त करने के लिए ग़ैर मुस्लिमों समाज में रह रहा है तो वह भी इस्लामी मूल्यों की रक्षा करेगा और यथा सम्भव इस्लाम के प्रचार प्रसार के कर्तव्य को जारी रखेगा।

प्रश्न- (ब) ग़ैर मुस्लिमों की शोक सभा, शव यात्रा में भाग लेना और उनके लिए क़ुरआन पढ़ने के प्रति आदेश

इस प्रश्न में तीन धारायें हैं: एक यह कि किसी मुसलमान का किसी ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लेना, दूसरे यह कि अन्तिम संस्कार के समय शव के पास रहना, तीसरे ग़ैर मुस्लिम शव के लिए क़ुरआन पढ़कर पुण्य पहुॅचाना।

इन प्रश्नों के विभिन्न लेखकों ने विभिन्न उत्तर दिए हैं, लगभग सभी लेखक इस बात पर सहमत हैं कि ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग ले सकते हैं, और इसी तरह उसके घर शोक व्यक्त करने के लिए जा सकते हैं, लेकिन जब शव को आग लगाई जा रही हो तो उसमें भाग न लें और अपने हाथ से चिता में आग न लगाएं। (मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी आदि)

मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल लिखते हैं कि यदि अन्तिम संस्कार को करने वाले उसी धर्म के लोग मौजूद हों तो मुसलमान उसमें कोई सहयोग नहीं करेंगे, परन्तु यह कि ग़ैर मुस्लिम उसका निकट सम्बन्धी हो। (शामी 134/3, नसबुर्राया 281/2, एलाउस्सुनन 282/8) और शव यात्रा में उससे आगे या किनारे दूरी बनाते हुए भाग लिया जा सकता है, जिसमें मुसलमानों की पहचान और इस्लामी विशेषता का संसरण हो। (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक 36/2)

जबकि डा. यूसुफ़ क़ासिम का कहना है कि ग़ैर मुस्लिम के शव को देख कर खड़ा हो जाना वैध है और हदीस से सिद्ध है:

"اذا رأيتم الجنازة فقوموا فمن تبعها فلا يجلس حتى توضع"

जब तुम लोग शव को देखो तो खड़े हो जाओ और जो उसके साथ चले वह उस समय तक न बैठे जब तक वह रख न दिया जाये। (बुख़ारी, मुस्लिम) इस हदीस से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में चलना वैध है।

क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना सैयद कुदरतुल्लाह बाक़वी के अनुसार यदि कोई हराम या शिर्क (अनेकश्वरवाद) की बात न हो तो उसमें भाग लिया जा सकता है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने हज़रत अबू तालिब के दफ़न के समय हज़रत अली (रजि0) से फ़रमाया जाओ अपने बाप को दफ़न कर दो तो हज़रत अली (रज़ी) ने फ़रमाया ऐ अल्लाह के रसूल वह शिर्क (अनेकश्वरवाद) करने वाले और सीधे रास्ते से वंचित थे, तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया जाओ अपने बाप को दफ़न करो। (नसबुर्राया 281/2) मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी इस रिवायत को प्रस्तुत करके कहते हैं कि जब एक मुसलमान ग़ैर मुस्लिम को दफ़न कर सकता है तो वह वहाँ क्यों नहीं रह सकता। लेकिन मौलाना अबुल आस वहीदी का विचार है कि दाह संस्कार के समय शव के पास नहीं रह सकते, इमाम अहमद बिन हम्बल कहते हैं कि किसी यहूदी या ईसाई का देहान्त हो जाये तो उसकी मुसलमान सन्तान सवारी पर शव के आगे चले और दफ़न के समय वापस हो जाये उन्होंने यह बात हज़रत उमर के एक फ़तवा को सामने रखकर कही है

(अल मुग़नी 466/3)

लेकिन इसके अन्तर्गत मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी का विचार है कि शव यात्रा में भाग लेने की वैधता के लिए जिन लोगों ने हज़रत अली

और अबू तालिब के देहान्त की घटना को दलील बनाया है वह उचित नहीं हैं, इसलिए कि अबू तालिब ने हुजूर (सल्ल०) का पालन पोषण किया था, और आप ही ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) के लिए सारी कठिनाइयाँ झेली थीं। चूँकि वह आपके परिवार के थे और निरन्तर आपके आभारी थे, इसलिए आप (सल्ल०) ने नैतिक दायित्व हज़रत अली (रज़ि0) को सौंपा। विचार करने योग्य बात यह है कि आप (सल्ल०) ने स्वयं भाग नहीं लिया, बल्कि इस ज़िम्मेदारी को दूसरों को सौंप दिया। मानों आप (सल्ल०) ने भाग न लेकर अनिच्छा व्यक्त की और हज़रत अली को सौंप कर अपना नैतिक कर्त्तव्य पूरा किया।

जब कि मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही ने हज़रत अली की उक्त घटना को (अल बिदाया वन्निहाया 123/2) के हवाले से नक़ल किया है और कहा है कि शब्द "اذهب فواره" जाओ और उसको छुपाओ, से पता चलता है कि आप (सल्ल0) हज़रत अली के साथ अपने चाचा के दफ़न के लिए नहीं गए और आगे हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास से रिवायत है कि:

"انّ النبیؐ عاد من جنازة ابی طالب"

नबी (सल्ल०) हज़रत अबू तालिब को दफन करके लौटे" जिससे लगता है कि आप (सल्ल०) शव के साथ गये लेकिन आगे यह भी स्पष्ट है कि उन की क़ब्र पर खड़े नहीं हुए "ولم يقم على قبره" दोनों को मिलाकर निष्कर्ष निकलता है कि आप (सल्ल०) बाद में गये और दूर से ही वापस आ गये।

फिर आगे उन्होने एक ईसाई को बीमारी की हालत में देखना और उसकी शव यात्रा में जाने के बारे में इब्ने तैमिया का यह वाक्य नक़ल

किया है:

"उसकी शव यात्रा में नहीं जाना चाहिए लेकिन बीमार है तो उसे देखने में कोई बुराई नहीं है, इससे उसको इस्लाम की तरफ आकर्षित करने में सहायता मिलेगी और यदि वह काफ़िर की स्थिति में मर गया तो उस पर जहन्नम तय हो गई और उसकी शव यात्रा में भाग न लिया।

(फ़तावा इब्ने तैमिया 265/24)

वैधता की दलीलें:

ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लेने और अन्तिम संस्कार में उपस्थित रहने की वैधता के समथकों के तर्क निम्नलिखित हैं:

1-मशहूर ताबई मकहूल की रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने अबू तालिब की शव यात्रा में भाग लिया था, किनारे-किनारे चले उनकी नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं पढ़ी और फरमाया रिश्ते ने आपको मुझसे जोड़ दिया है, उनकी क़ब्र पर आप खड़े नहीं हुए। (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक़)।

2-इमाम शअबी कहते हैं कि हारिस इब्ने रबीआ की माँ ईसाई थीं उनका देहान्त हुआ तो कुछ सहाबियों ने उनके शव यात्रा दूरी बनाकर भाग लिया। (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक़ 36/6)

3-अता बिन रिबाह कहते हैं कि "अगर काफ़िर और मुस्लिम के बीच निकट सम्बन्ध (रिश्ता) हो तो उसके जनाज़े (शव यात्रा) में जाना चाहिए।

4-अबू अवायल कहते हैं कि मेरी माँ का देहान्त हुआ वह ईसाई थीं मैंने हज़रत उमर (रजि0) से बताया तो उन्होंने फ़रमाया जब उनका जनाज़ा (शव यात्रा) निकले तो तुम सवारी पर आगे-आगे चलो।

5-हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर से एक व्यक्ति ने पूछा मेरी माँ का

देहान्त हो गया है और वह ईसाई थीं, क्या मैं उनके कफ़न दफ़न में भाग ले सकता हूँ? उन्होनें जवाब दिया कि जनाज़े के आगे चलो इसलिए कि तुम (दीनी तौर पर) उसके साथ नहीं हो। (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक़ 37/6)

6-क़तादा कहते हैं "मुसलमान काफ़िर की शव यात्रा के पीछे चलेगा और किनारे रहेगा और उसके निकट नहीं होग" (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक़ 37/6) (लेख मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी)

7-मौलाना अख़्तर इमाम आदिल ने इस सम्बन्ध में दारक़ुतनी के हवाले से नक़ल किया है कि "साबित बिन क़ैस बिन शम्मास नबी (सल्ल०) की सेवा में प्रस्तुत हुए और अपनी ईसाई माँ की मौत की ख़बर सुनाई और पूछा कि मैं उसकी शव यात्रा में भाग लेना चाहता हूँ तो आपने फ़रमाया "अपनी ऊंटनी पर सवार हो जाओ और उसके आगे-आगे चलो इसलिए कि जब तुम उसके आगे रहोगे तो उसके साथ नहीं माने जाओगे।" आगे लिखते हैं कि इमाम अहमद का विचार इसी हदीस के अनुकूल है कि ग़ैर मुस्लिम सम्बन्धी की शव यात्रा में भाग लेना वैध नहीं है, लेकिन अल्लामा ज़ैलई ने इस हदीस को कमज़ोर बताया है। (नसबुर्राया 281/2)

8-हज़रत इब्ने अब्बास का कथन है कि "अगर शव यात्रा में भाग ले ले तो कोई बुराई नहीं है। (लेखक अब्दुर्रज़्ज़ाक़ 40/6)

9-इस समस्या का विवरण किताब 'फ़िक़्हुल अक़ल्लियात अल मुस्लिम' लेखक ख़ालिद मुहम्मद अब्दुल क़ादिर (पृ0 118-119) में मौजूद है जिसमें लिखा है कि ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लिया जा सकता है। हनफ़ी और शाफ़ई उलमा का यही विचार है लेकिन मालिकी और हम्बली उलमा का विचार इसके विपरीत है।

(अल-मुग़नी-315/2, अल बयानुत्तहसील 248/2)

10-यहूदी और ईसाई की बीमारी में उससे मिलने जाने में कोई बुराई नहीं है, इसलिए कि यह एक तरह की नेकी और भलाई है, और हमको इससे मना नहीं किया गया है, और यह सच है कि नबी (सल्ल०) के पड़ोस में एक यहूदी बीमार हो गया तो आप उसको देखने गये (हिदाया 474/4, रद्दुल मुहतार 340/5) (लेख क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी।)

11-मुसलमान ग़ैर मुस्लिम के शोक में भाग लेगा और यह शब्द कहेगा "अल्लाह तुम्हारा बदला और तुम्हारा संतोष बढ़ाये, अथवा सुधार करे" (दुर्रे मुख़तार 341/5, रद्दुल मुहतार 665/1) लेख-मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना उबैदुल्लाह, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, काज़ी मुहम्मद हारून मैंगल)

ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लेने के विरोध में दलीलें:

निम्नलिखत लेखकों के अनुसार शव यात्रा में भाग लेना किसी भी हालत में उचित नहीं है, केवल ग़ैर मुस्लिम पड़ोसी के शोक में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है। (मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना उबैदुल्लाह, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अमीर हसन जीलानी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना इब्राहीम गजिया, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी,

मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती मुहम्मद सलमान खली, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना जफ़र आलम नदवी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी)

इन उलमा की दलीलें निम्नलिखित है:

ولا تصل علی احد منهم مات ابداً ولا تقم علی قبره (سوره توبه 48)

1–उनमें से जो मर गया उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा मत पढ़िए और उसकी क़ब्र पर मत खड़े होइये। (सूर: तौबा 48) (लेख- मौलाना ज़फ़र आलम क़ासमी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना अमीर हुसैन जीलानी, मौलाना असअद क़ासिम, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अबू बक्र क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

मौलाना राशिद हुसैन नदवी बीमार को देखने और मौत पर शोक में भाग लेने के सम्बन्ध में कहते हैं कि नबी करीम (सल्ल०) का अपने चाचा अबू तालिब और एक यहूदी लड़के की बीमारी में देखने जाना सिद्ध है। (ज़ादुल मआद 494/1, बुख़ारी किताबुल जनाएज़) फ़िक़्ह (इस्लामी न्याय विधि) की किताबों में इसे वैध ठहराया गया है, (फ़तावा हिन्दीया, 248/5) इसी तरह ग़ैर मुस्लिमों के शोक में भाग लेना भी वैध है (हिन्दीया 248/5, शामी274/5) और उनकी शव यात्रा और अन्तिम संस्कार में भाग लेने के सम्बन्ध में कहते हैं, "चूँकि इसमें शिर्क वाले कर्म किये जाते हैं इसलिए साधारण स्थिति में भाग लेना घृणित (मकरूह) है।'' (मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी)

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी इस हदीस "कि आप (सल्ल०) ने एक यहूदी के जनाज़े में भाग लिया था", इसी सम्बन्ध में वह कहते हैं कि इससे ग़ैर मुस्लिमों की शव यात्रा में भाग लेने की वैधता सिद्ध होती है जिसके कुछ कारण निम्नलिखित हैं:

1-अहले किताब के साथ प्रारम्भ में समर्थन का आदेश था बाद में यह आदेश निरस्त कर दिया गया और उनके विरुद्ध कर्म का आदेश दिया गया।

2-अहले किताब और मूर्ति पूजकों के मामलों में अन्तर है जैसे मूर्ति पूजकों के विपरीत उनका ज़बीहा (हलाल जानवर काटना) और उनकी औरतों से निकाह हलाल है।

3-अहले किताब की शव यात्रा और कफ़न दफ़न में सादगी होती थी। इसके विपरीत हिन्दुओं के यहाँ रीति रिवाज के अनुसार शव को चिता में डाल कर जलाना होता है, अत: मुसलमानों का हिन्दुओं की शवयात्रा और कफ़न दफ़न में भाग लेना वैध नहीं है।

विशेष स्थितियों में भाग लेने की अनुमति:

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही कहते हैं कि शव यात्रा में और कफ़न दफ़न में भाग नहीं लिया जा सकता लेकिन विशेष स्थितियों में "الضرورات تبيح المحظورات" "आवश्यकता होने पर मना की हुई चीजों की अनुमति मिल जाती है" के अन्तर्गत सीमित रूप में इसकी अनुमति दी जाये तो यह एक अलग बात है। मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही भी आवश्यकता और उद्देश्य के अन्तर्गत ही भाग लेने की अनुमति देते हैं।

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम लाजपुरी लिखते हैं "किसी उद्देश्य और आवश्यकता के आधार पर ग़ैर मुस्लिमों से मिलना जुलना और उनका दुख दर्द बॉटना और मानवता के नाते उनकी सहायता करना, विशेष रूप से जब वह पड़ोसी हो तो शरीअत के अनुसार वैध है, नीयत अच्छी और सुधार करने की होनी चाहिए, चापलूसी करने की स्थिति न हो, हॉ उनके धार्मिक मामलों और धार्मिक रीतियों में भाग लेना वैध नहीं है इसलिए कोई ग़ैर मुस्लिम बीमार हो गया या उसका देहान्त हो गया तो उसको जाकर देखना, और उसके शोक में सम्मिलित होना तो वैध है परन्तु शव यात्रा में भाग लेना, और दूसरे धार्मिक क्रिया कर्म में भाग लेना वैध नहीं है। (फ़तावा रहीमिया 180/8, अहसनुल फ़तावा 233/4, मुन्तख़बात निज़ामुल फ़तावा 375/2) (लेख- मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी)

और लगभग यही बातें मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी इत्यादि ने (फ़तावा महमूदिया 345/15 जामिउल फ़तावा 504/1, इम्दादुल मुफ़्तीईन 1018, किफ़ायतुल मुफ़्ती 191/4, निसाबुल एहतेसाब 110) के हवाले से नक़्ल की हैं।

मरे हुए ग़ैर मुस्लिम को पुण्य पहुॅचानाः

इस प्रश्न की तीसरी धारा अर्थात ग़ैर मुस्लिम मृतकों के लिए क़ुरआन पढ़कर पुण्य पहुॅचाना या उनके लिए मुक्ति की दुआ करने के सम्बन्ध में तमाम लेखकों में इस बात पर सहमति है कि शरीअत में इसके लिए कोई जगह नहीं है और ऐसा करना हराम व अवैध है और इसके तर्क

निम्नलिखित हैं:

1-न उन पर कभी नमाज़ पढ़िए और न उनकी क़ब्र पर कभी खड़े हों, क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल का इन्कार किया और बुराई की हालत में ही मर गये। (सूर: तौबा-48) (लेख- मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना ज़फर आलम नदवी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी)

2-आप उनकी मुक्ति के लिए दुआ करें या न करें, आप यदि उनके लिए सत्तर बार भी मुक्ति की दुआ करेंगे तो भी अल्लाह उनको मुक्ति नहीं देगा। (सूर: तौबा-80) (लेख मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना अकीलुर्रहमान क़ासमी)

बुख़ारी में है:

इब्ने उमर से रिवायत है कि जब अब्दुल्लाह इब्ने उबई का देहान्त हो गया तो उनका बेटा अब्दुल्लाह रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पास हाज़िर हुआ और कफ़न के लिए आपकी क़मीज़ माँगी तो आपने (सल्ल०) उसको दे दी, तो उसने रसूलुल्लाह से नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाने के लिए निवेदन किया तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) नमाज़ पढ़ाने के लिए खड़े हो गये तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) का कपड़ा पकड़ लिया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल आप जनाज़े की नमाज़ पढ़ायेंगे, हालाँकि आपके पालनहार ने उसके ऊपर नमाज़ से मना किया है तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अल्लाह ने मुझे अधिकार दिया है और कहा आप उसकी मुक्ति की दुआ करें या न करें, यदि आप सत्तर बार भी उसके लिए लिए दुआ करें तो भी अल्लाह उसको मुक्ति नहीं देगा, और मैं सत्तर से भी

अधिक बार करूंगा, तो (हज़रत उमर) ने फ़रमाया कि वह मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) है और रसूलुल्लाह (सल्ल० ने नमाज पढ़ाई तो हज़रत उमर ने कहा कि तब यह आयत अल्लाह तआला ने उतारी:

उनमें से किसी पर कभी नमाज़ न पढ़ो और उनकी क़ब पर खड़े न हो (बुख़ारी शरीफ़ 673/2) (लेख- मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी) मौलाना अख़्तर इमाम आदिल ने इस घटना को कुछ अन्तर के साथ हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह की रिवायत से नक़ल किया है।

3-अल्लामा नववी लिखते हैं "काफ़िर की नमाज़े-ए-जनाज़ा और उसकी मुक्ति की दुआ क़ुरआन और उलमा के सर्वसम्मत विचार के अनुसार हराम है।" (अल मजमूअ शरहुल मुहज़्ज़ब 144/5) (लेख- मौलाना अबुल आस वहीदी)

4-नबी और ईमान वालों के लिए मुश्रिकों की मुक्ति की दुआ उचित नहीं है यद्यपि वह बहुत निकट सम्बन्धी ही क्यों न हों जब कि यह बात स्पष्ट है कि वे नरक में जाने वाले हैं। (सूर: तौबा-113) (लेख- मौलाना सैयद क़ुदरतुल्लाह बाक़वी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना उबैदुल्लाह, मौलाना मुहम्मद सादिक़, मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, सैयद अमीर हुसैन जीलानी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना इरशाद क़ासमी)

रूहुल मआनी में है, सही यह है कि यह आयत हज़रत अबू तालिब के सम्बन्ध में अवतरित हुई है और अहमद और इब्ने अबी शैबा और बुख़ारी, और मुस्लिम और नसाई और इब्ने जरीर और इब्ने मन्ज़र ने उसे

दलील बनाया है, और दूसरे लोगों ने मुसय्यिब से रिवायत करके दलील बनाया है, जब अबू तालिब का देहान्त हुआ। (रूहुल मआनी 47/7)

मुस्लिम, अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजा और नसाई ने अबू हुरैरा (रज़ि0) से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) अपनी माँ की क़ब्र पर गये और रोये और उन लोगों को भी रूला दिया जो आपके आस पास थे तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फरमाया कि मैंने अपने पालनहार से इनकी मुक्ति की दुआ के लिए अनुमति मांगी तो मुझे अनुमति मिली (रूहुल मआनी 49/7) (लेख मौलाना राशिद हुसैन नदवी) मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारक पूरी ने इसका उल्लेख बाबुल नुक़ूल जलालैन के हाशिये पर पृ0180 के हवाले से लिखा है और मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी ने उसको कस्तलानी अला हामिश बुख़ारी 675/2 और अल-करमानी अला हामिश-जलालैन 167/1 के हवाले से नक़ल किया है।

बुख़ारी में है: सईद बिन मुसय्यिब अपने बाप से रिवायत करते हैं कि जब मैं अबू तालिब के देहान्त पर गया तो नबी (सल्ल०) वहाँ आये और उनके पास अबू जहल, अब्दुल्लाह इब्ने उबई और उमैया थे तो आप (सल्ल०) ने कहा "ऐ चाचा लाइलाह इल्लल्लाह कहिए तो मैं इसे अल्लाह के पास सिफ़ारिश के लिए बुनियाद बनाऊँग तो अबू जहल, अब्दुल्लाह इब्ने उबई और उमैया ने कहा ऐ अबू तालिब क्या आप अबू मुत्तलिब के धर्म से फिर गये? तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया मैं अवश्य उनकी मुक्ति की दुआ करुंगा यद्यपि आप उन्हीं में से हैं तो क़ुरआन की आयत उतरी: नबी के लिए उचित नहीं कि ...." (बुख़ारी 675/2) (लेख मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"وما كان استغفار ابراهيم لابيهِ الا عن موعدة وعدها اياه فلما تبين له انه

عدو اللله تبرآ منه"

5-इब्राहीम (अलै0) की अपने बाप की मुक्ति की दुआ इसके अतिरिक्त कुछ नहीं थी कि उनसे इसके लिए एक वचन था परन्तु जब उन पर स्पष्ट हो गया कि वे अल्लाह के दुश्मन हैं, तो आप ने इस बात से तौबा कर ली। (सूर: तौबा-114) (लेख-मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

मौलाना मुहम्मद अबू बक्र क़ासमी इस आयत के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यदि किसी को यह सन्देह हो कि हज़रत इब्राहीम (अलै०) ने अपने काफ़िर बाप की मुक्ति की दुआ की थी तो उसका उत्तर स्वयं क़ुरआन की सूर: तौबा की आयत 114 में मौजूद है जिसका निचोड़ यह है कि जब तक उनपर अपने बाप का काफ़िर की हालत में मरना और अल्लाह का दुश्मन होना स्पष्ट न था उस समय तक उन्होंने अपने बाप को मुक्ति की दुआ का वचन दिया था, और देहान्त के बाद उस वचन को पूरा किया था लेकिन जब उन पर अपने बाप का नरक में जाना स्पष्ट हो गया तो उन्होनें मुक्ति की दुआ से तौबा कर ली, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मरे हुए काफ़िर के लिए मुक्ति की दुआ करना वैध नहीं है, हॉ जीवित काफ़िर के लिए इस्लाम स्वीकार करने की आशा की स्थिति में मुक्ति की दुआ की जा सकती है।

7-मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी और मौलाना अबू बक्र क़ासमी ने इस सम्बन्ध में हैदराबाद में 16-18 जून को जो सेमीनार हुआ जिसका विषय "ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की समस्याएं" था उसमें जो प्रस्ताव पारित हुआ उसका उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है:

"क़ुरआन करीम अल्लाह की किताब है जो उसपर विश्वास नहीं करते हों उनके मुर्दों पर क़ुरआन पढ़ना और पुण्य पहुँचाने की न शरीअत अनुमति देती है और न विवेक से ही स्वीकार्य लगता है" (मासिक अर्रशाद, पृ0 36 अंक 35 भाग 4 नवम्बर 2000)

कुछ उलमा ने फ़तावा हिन्दीया (384/5), किफ़ायतुल मुफ़्ती-441/9 आदि के हवाले से लिखा है कि किसी ग़ैर मुस्लिम को पुण्य पहुँचाना या उसके लिए मुक्ति की दुआ करना वैध नहीं है। (देखिए: लेख मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल)

ग़ैर मुस्लिम मुर्दे के लिए क़ुरआन पढ़ना एक बेकार काम है इसका पुण्य तो उनको पहुँच ही नहीं सकता, फिर यह एक तरह से क़ुरआन का अपमान है (देखिये: लेख मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी, मौलाना फ़ुज़ैलुर्रमान हिलाल उसमानी, मौलाना अस्अद क़ासिम सम्भली इत्यादि)

प्रश्न- (स) ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक और अधार्मिक समारोहों के उपहार लेना और खाना:

इस बात पर सभी लेखक सर्वसम्मत हैं कि मूर्तियों पर चढ़ाई हुई मिठाइयों का खाना जिसे प्रसाद कहा जाता है वैध नहीं है, इसलिए कि मूर्तियों पर चढ़ाना अल्लाह के बजाये दूसरे के निकट होना है और ऐसा करना "وما اهل به لغير الله" "अल्लाह के अलावा जिस पर दूसरों का नाम लिया गया हो" के अन्तर्गत आ जाता है। (मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहीउद्दीन

ग़ाज़ी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना सईदुर्रहमान फ़ारूक़ी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी) कुछ उलमा के अनुसार "وما ذبح على النصب" जो चढ़ावे का ज़बीहा" में सम्मिलित है (मौलाना असरारूल हक़ सबीली, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना अकीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी) हाँ, यदि लड़ाई-झगड़े का सन्देह हो तो प्रसाद को स्वीकार करले लेकिन उसे खाये नहीं उसे किसी ग़ैर मुस्लिम को दे दे या नष्ट कर दे (मौलाना उबैदुल्लाह असअदी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना क़मरुज्ज़मा नदवी, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी)

इनके तर्क निम्न लिखित हैं:

"انما حرم عليكم الميتة والدم ولحم الخنزير وما اهل به لغير الله"

1-तुम्हारे ऊपर मुर्दार, और ख़ून और सुअर का गोश्त और जिस पर अल्लाह के अलावा दूसरे का नाम लिया गया हो हराम किया गया है। (सूर: बक़र: 173) लेख मौलाना उबैदुल्लाह, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी)

"قل لا اجد فيما اوحى الى محرماً على طاعم يطعمه الا ان يكون ميتة او دماً مسفوحاً او لحم خنزيرٍ فانه، رجس او فسقا اهل لغير الله به فمن اضطر غير با غ ولا عاد فان ربک غفر الرحيم"

2-जो बात मेरी तरफ़ वहय के गई है उसमें कोई चीज़ जो खिलाने वाला खिलाता है, हराम नहीं पाता हूँ, सिवाय, मुर्दार या बहा हुआ ख़ून या सुअर का गोश्त, इस लिए कि वह अपवित्र और पाप है, और जिस पर अल्लाह के सिवाय दूसरे का नाम लिया गया हो, तो जो कोई मजबूर हो

और विद्रोह या नियम के उल्लंघन की नीयत न हो तो तेरा पालनहार मुक्तिदाता और कृपाशील है। (सूरः अनआम-146) (लेख मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी)

"ما ذبح على النصب"

3-जो जानवर 'स्थान' पर चढ़ाया गया हो' जिस तरह चढ़ावे का पशु हराम है उसी तरह चढ़ावे की अन्य खाद्य सामग्री भी हराम हैं, चूँकि किसी देव स्थान के सम्मान में यह भी सम्मिलित हैं।

4-उन्होंने कहा कि मुझे सूचना दी गई कि उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से बात करते हुए सुना, उनकी मुलाक़ात ज़ैद इब्ने अम्र बिन नफ़ील से शहर के निचले भाग में हुई, यह उस समय की बात है जब रसूलुल्लाह सल्ल0 पर 'वहय' नहीं उतरी थी तो आपके (सल्ल०) सामने खाना प्रस्तुत किया गया जिसमें गोश्त था तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मना कर दिया और कहा कि मैं वह नहीं खाऊँगा जिसे तुम अपने पूज्यों को चढ़ाने के लिए ज़बह (काटना) करते हो और मैं केवल वही खाऊँगा जो अल्लाह या उस का नाम लेकर ज़बह किया गया हो (बुख़ारी 827/2 अध्याय मा जुबेह अलन्नुसुब वल अस्नाम) (लेख मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी) कुछ उलमा ने विभिन्न फ़तवा की किताबों के हवाले से लिखा है कि पूजा और बुतों और देवी देवताओं के स्थान पर चढ़ाये हुए खाने और मिठाइयाँ खाना, अवैध और हराम है) (फ़तावा रहीमिया 232/6 आदि) (दखिये-लेख मुफ़्ती ज़मील अहमद नज़ीरी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी इत्यादि)

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी ने मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब का यह विचार नक़ल किया है, कि उचित यही है, कि ग़ैर मुस्लिम के उपहार को

स्वीकार ही न किया जाये। (अहकामुल कुरआन 35/3)

समारोहों में उपहार स्वीकार करने की वैधता:

इस बात पर भी सर्वसम्मति है कि अधार्मिक समारोहों में खाना, उपहार स्वीकार करना उचित है शर्त यह है कि वह पवित्र हो और उनमें कोई हराम चीज न मिली हो और मूर्तियों और स्थानों पर चढ़ाये हुए न हों। (देखिये: लेख-मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, सैयद अमीर हुसेन जीलानी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल इत्यादि) और मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह के कथनानुसार यह उपहार दीन के मामले में चापलूसी का माध्यम न बने और मौलाना नियाज़ अहमद मदनी का कथन है कि अगर यह उपहार स्थानों पर चढ़ाये हुए हों तो उनका स्वीकार करना भी वैध नहीं है।

कुछ उलमा धार्मिक और अधार्मिक समारोहों में अन्तर करते हैं और कहते हैं, कि धार्मिक समारोहों की मिठाइयां और खानों के प्रयोग से बचना ही बेहतर है, और अधार्मिक समारोहों के उपहार और मिठाइयॉं, स्वीकार करना और खाना दोनों वैध हैं, और इन उलमा ने साधारण रूप से उन रिवायतों को तर्क बनाया है जिनमें ग़ैर मुस्लिमों की तरफ़ से उपहार देने और लेने का उल्लेख है।

1-इसहाक़ बिन अब्दुल्लाह बिन हारिस से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक जोड़ा बीस से कुछ अधिक कुलूस (मुद्रा) में ख़रीदा और उसे ज़ी यज़्न को उपहार में दे दिया। (अबू दाऊद) (लेख मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी)

2-अबू हमीद ने कहा कि ईला के राजा ने नबी (सल्ल०) को सफ़ेद

खच्चर उपहार भेजा तो आप (सल्ल०) ने उसको चादर भेंट किया।

3-कैदर दूमा ने नबी (सल्ल०) को उपहार दिया। (बुख़ारी356) (लेख-मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र)

4-अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि इब्राहीम अलै0 ने हज़रत सारा के साथ हिजरत की तो एक गॉव में पहुॅचे जिसमें बादशाह या कोई बड़ा आदमी था तो उसने कहा: उसको उपहार दे दो। (फ़त्हुल बारी 230/5) (लेख मौलाना नियाज़ अहमद मदनी)

5-कबीसा बिन वहलब अपने बाप से रिवायत करते हैं: उन्होंने नबी (सल्ल०) से ईसाइयों के खाने के सम्बन्ध में पूछा (और एक रिवायत के अनुसार) उनसे एक आदमी ने पूछा कि उस खाने में कोई बुराई है? तो आपने फ़रमाया तुम्हारे दिल में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। (मिश्कात 358, किताबुल सैद वज़्ज़वाएह) (लेख मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

6-अब्दुल्लाह इब्ने उमर से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) को पनीर का एक टुकड़ा प्रस्तुत किया गया तो आपने एक छुरी मंगाई और अल्लाह का नाम लेकर उसको काटा तो आपने खा लिया (अबू दाऊद) नीलुल अवतार में है कि पनीर हिजाज़ में बनती नहीं थी बल्कि यह शाम (सीरिया) आदि से आती थी। (नीलुल अवतार-26/1) (लेख मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी)

7-हज़रत अनस (रज़ि०) की रिवायत है कि बादशाह ने रसूले करीम (सल्ल०) को एक जोड़ा उपहार भेजा जो उसने तीस ऊॅट के बदले ख़रीदा था, आप (सल्ल०) ने यह जोड़ा स्वीकार कर लिया। (अबू दाऊद मअल औन 79/4) (लेख मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी)

8-याहया बिन याहया तमीमी से रिवायत है, उन्होंने कहा कि हमको जरीर ने काबूस के हवाले से सूचना दी उन्होंने कहा मेरे पिता ने एक औरत को हज़रत आयशा (रज़ि०) के पास भेजा और उस औरत से कहा कि हज़रत आयशा से मेरा सलाम कहो, तो उस औरत ने ऐसा किया और कहा ऐ मुसलमानों की माँ हमारे पास अजम के लोगों ने अज़्ज़ार भेजा है (अरब से बाहर से) और वह हमेशा हमें अपने त्यौहार के अवसर पर उपहार देते हैं तो हज़रत आयशा (रज़ि०) ने फ़रमाया जो विशेष रूप से उसी दिन के लिए ज़बह किया जाये तो उसे न खाओ। (लेखक इब्ने अबी शैबा) (लेख मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

9-हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (रज़ि०) से रिवायत है कि किसी ग़ैर मुस्लिम ने उन्हें नौरोज़ का उपहार भेजा तो आपने उसे स्वीकार कर लिया।

10-हज़रत अबू बरज़ा अस्लमी से रिवायत है कि मजूसियों (आग पूजने वालों) से उनके कुछ सम्बन्ध थे, उनके पड़ोस में वे लोग रहते थे, नौरोज़ और महरजान के अवसर पर वे लोग उपहार भेजा करते थे, तो वह फ़रमाते कि फल आदि तो खा लो और दूसरी चीजें वापस कर दो, (इक़्तिज़ाउस्सिरातिल मुस्तक़ीम, इब्ने तैमिया, 120) (लेख मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

फ़तावा अब्दुल हई (पृष्ठ 403,486), फ़तावा रशीदिया (पृ0 575), अहसनुल फ़तावा (162/8) और किफ़ायतुल मुफ़्ती (328/9) में ग़ैर मुस्लिमों के समारोहों की मिठाइयाँ और खाने स्वीकार करना, और खाना उचित है (देखिये- लेख- मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी,

मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी इत्यादि)।

कुछ उपहार नबी (सल्ल०) ने वापस तो नहीं किया लेकिन स्वयं इस्तेमाल भी नहीं किया बल्कि उसे लोगों में बँटवा दिया उदाहरण के लिए:

1-हजरत अबू सईद ख़ुदरी की रिवायत है कि रूम के राजा ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) को सोंठ का घड़ा उपहार में भेजा, तो उसे आप (सल्ल०) ने सहाबा में बंटवा दिया। (उम्दतुल क़ारी 74/11) (लेख मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी)

2-हरकुल ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सेवा में कुछ दीनार उपहार में भेजे थे और अपने आपको मुसलमान होने का आभास कराया उस समय आप (सल्ल०) तबूक में ठहरे हुए थे, तो आप (सल्ल०) ने उसको झूठा ठहराया और दीनार लोगों में बंटवा दिया। (मुसनद अहमद इब्ने हम्बल 441/3, 74/4, तारीख़ दमिश्क़, इब्ने असाकिर 420) (लेख मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)।

और कुछ उपहार आप (सल्ल०) ने वापस कर दिये जैसे अबू बराअ आमिर बिन मालिक बिन जाफ़र मलाइबुल अलसिना ने हुजूर (सल्ल०) को एक घोड़ा उपहार में भेजा तो आप (सल्ल०) ने घोड़ा यह कहकर वापस कर दिया "मुझे मुश्रिकों के उपहार स्वीकार करने से मना किया गया" (रौजुल अन्फ़ 321/2) (लेख मौलाना अख़्तर इमाम आदिल और मौलाना ज़फ़र अहमद)

इस घटना को मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम साहब ने फ़तहुल बारी (144/5) के हवाले से इन शब्दों में उल्लेख किया है:

अब्दुर्रहमान बिन काअ़ब बिन मालिक और दूसरे ज्ञान वालों से रिवायत है कि काअ़ब बिन मालिक रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पास आये और उस

समय तक वह मुसलमान नहीं थे, उन्होंने आप (सल्ल०) को उपहार भेंट किया तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया "मैं शिर्क करने वालों का उपहार स्वीकार नहीं करता"।

और मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी ने इस रिवायत को मुफ़्ती शफ़ी के अहकामुल क़ुरआन (35/3) के हवाले से तीन विभिन्न शब्दों में उल्लेख किया है।

कुछ उलमा ने ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक त्यौहारों के अवसर पर दिये गये उपहार को हलाल, लेकिन उससे बचने को बेहतर बताया है, इसको ध्यान में रखते हुए मौलाना अब्दुल हई फ़िरंगी महली का वह वाक्य है, जो अज्ज़ख़ीरा के हवाले से नक़ल किया है, लिखते हैं: वास्तव में उन चीज़ों का खाना जो हिन्दू लोग अपने त्यौहारों के अवसर पर ख़ुशी-ख़ुशी प्रस्तुत करते हैं, हलाल है लेकिन अच्छा यही है कि त्यौहार के दिनों में उपहार स्वीकार न करें, ताकि उनके जैसा दिखाई देने का सन्देह न हो, ज़ख़ीरा में है, 'किसी मोमिन के लिए यह उचित नहीं है कि वह काफ़िर का उपहार स्वीकार करे जो उनके त्यौहारों के समय प्रस्तुत किया जाता है, और अगर उसे स्वीकार कर ले तो न उनको दे और न उनको भेजे। (फ़तावा मौलाना अब्दुल हई 403) (लेख मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल साहब ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है और कहा है कि "इन वाक्यों से ऐसा लगता है कि त्यौहार के अवसर पर ऐसे उपहार स्वीकार करने की मनाही मालूम होती है, लेकिन ज़ख़ीरा का दृष्टिकोण स्पष्ट होने के बाद इस प्रकार के उपहार स्वीकार करने की

गुंजाइश निकलती है।

मौलाना आमिर ज़फ़र साहब लिखते हैं कि उपरोक्त घटनाओं और रिवायतों में जो विरोधाभास महसूस होता है उसे कई तरह से दूर करने का प्रयास किया गया है:

1-एक बात यह कही गई है कि जिन हदीसों से ग़ैर मुस्लिमों से उनके उपहार स्वीकार करने का सबूत मिलता है उन्हें वह हदीस निरस्त कर देती है जिनसे उसकी मनाही सिद्ध होती है और जिनसे हराम होना साबित होता है वह निरस्त की गई है। यह दोनों बातें मात्र दावा की हैसियत रखती हैं, किसी आदेश को निरस्त करने वाला मानने के लिए यह सिद्ध करना होगा कि निरस्त करने के लिए आदेश बाद में दिया गया है। और यहाँ पर उसका सबूत नहीं है।

2-कुछ उलमा ने कहा है कि ग़ैर मुस्लिमों का उपहार स्वीकार करने की अनुमति केवल रसूलुल्लाह (सल्ल०) को थी, और दूसरों को इसकी अनुमति नहीं है, यह विशेषता केवल आप (सल्ल०) को दी गई थी, लेकिन इस विशेषाधिकार का कोई उचित कारण नहीं है जब तक किसी मामले में विशेषाधिकार सिद्ध न हो तो, आप (सल्ल०) का आदर्श सब के लिए है।

3-इमाम ख़ताबी कहते हैं कि हदीस में शिर्क करने वालों के उपहार स्वीकार करने की मनाही है और यह सिद्ध है कि नबी (सल्ल०) ने नज्जाशी का उपहार स्वीकार किया। इन दोनों में विरोधाभास नहीं क्योंकि वह ईसाई था और शरीअत ने कुछ मामलों में किताब वालों और शिर्क वालों में भेद किया है, यह उन्हीं में से है। (ख़ताबी: मुअल्लिमुस्सुनन 41/3)

4-लेकिन आम तौर से उलमा (जमहूर) का विचार यह है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के सामने मुसलमान और इस्लाम का हित रहा है, रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने जिन लोगों को देखा कि उनका उपहार स्वीकार करने से उनके दिलों में लगाव बढ़ेगा और उनका झुकाव इस्लाम की तरफ़ होगा, इस विचार से उनके उपहार आप (सल्ल०) ने स्वीकार किये, और जहाँ इस तरह के हित नहीं थे वहाँ आप (सल्ल०) ने ये उपहार अस्वीकार कर दिये ।

प्रश्न - (द) मस्जिदों और मदरसों के निर्माण में ग़ैर मुस्लिमों से मदद लेना और उनके धर्म स्थलों के निर्माण में चंदा देना:

इस प्रश्न के दो भाग हैं एक तो मस्जिदों और मदरसों और धार्मिक समारोहों के लिए ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग राशि स्वीकार करना और दूसरे ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक स्थलों के निर्माण के लिए मुसलमानों द्वारा सहयोग देना है, इस पर तमाम लेखक सहमत हैं कि ग़ैर मुस्लिमों के धर्म स्थलों के निर्माण और धार्मिक समारोहों में सहायता देना और धन देना उचित नहीं है और ऐसा करना "गुनाह और अवज्ञा को सहायता देना है" मात्र कुछ उलमा इसके अतिरिक्त यह भी कहते हैं कि यदि दंगे या किसी और हानि का भय हो और जान-माल-इज़्ज़त आबरू या नौकरी छूट जाने का सन्देह हो, तो न चाहते हुए भी मजबूरी में सहयोग देना उचित होगा, और अच्छा यह है कि मालिक बनाने की नीयत से उसे सहयोग राशि दे दी जाये और कह दिया जाये कि तुम इसे जहाँ चाहो खर्च करो। (देखिये: लेख मौलाना वलीउल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़

पालनपुरी, मुफ़्ती मुहम्मद सलमान खली आदि)

इस विचार के समर्थकों ने निम्न लिखित तर्क दिये हैं:

"ولا تعاونو علی الاثم والعدوان سورہ مائدہ"

1-गुनाह और दीन की सीमाओं को लाँघने में सहयोग न दो सूरा: माइदा: 2 (लेख मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना सईदुर्रहमान फ़ारूक़ी, मौलाना कमरुज्ज़मां नदवी इत्यादि।

2-हज़रत जरीर से रिवायत है अज्ञान काल में एक घर था जिसे जुल खलसा, अल-काबतुल यमानिया, और अल काबतुल शामिया कहा जाता था तो मुझसे नबी (सल्ल०) ने कहा क्या तुम मुझे जुल खलसा से मुक्ति नहीं दोगे तो मैंने सौ सवारों का एक गिरोह तैय्यार किया और हमने उसे तोड़ दिया और वहाँ जिसे पाया कत्ल कर दिया और हम नबी (सल्ल०) के पास उपस्थित हुए और उन्हें सूचना दी तो आप (सल्ल०) ने हमारे लिए दुआ की और हमारा उत्साह बढ़ाया। (बुख़ारी: 624/2) (लेख: मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी)

मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी ने इस सिलसिले में निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं:

3-हज़रत उमर (रज़ि०) की एक साधारण रिवायत है: अल्लाह के दुश्मनों की ईद (ख़ुशी) से बचो।

4-मुहम्मद बिन सीरीन (रह0) फ़रमाते हैं कि हज़रत अली (रज़ि०) नौरोज़ के अवसर पर अपनी ज़बान से यह शब्द कहना भी उचित नहीं समझते थे। (इक्तिज़ाउस्सेरातिल मुस्तकीम पृ0 178)

उक्त मौलाना फ़रमाते हैं कि दोनों उपर्युक्त रिवायत से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग़ैर मुस्लिमों के समारोहों में सहयोग उचित नहीं है, और मौलाना ने निम्न लिखित रिवायत को इसके लिए तर्क बनाया है।

5-अबू वाक़िद लैसी कहते हैं कि हम हुनैन की लड़ाई में रसूले करीम (सल्ल०) के साथ हुनैन की ओर जा रहे थे और हमारा इस्लाम से पहले का ज़माना अभी नया-नया गुज़रा था, रास्ते में एक जगह बेरी का एक पेड़ मिला जिसको "ज़ात-ए-अनवात" ग़ैर मुस्लिम पूजा करते थे और उपने हथियार भी बरकत के लिए लटकाया करते थे, हमने रसूलुल्लाह(सल्ल०) से कहा कि जैसे इन शिर्क वालों के लिए "ज़ात-ए-अनवात" है आप हमारे लिए एक "ज़ात-ए-अनवात" भी निर्धारित कर दीजिये तो आपने कहा अल्लाहु अकबर यह तो पिछली क़ौमों के रास्ते हैं, उस हस्ती की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है तुम बिल्कुल वही कह रहे हो जो बनी इसराइल ने हज़रत मूसा से कहा था:

"اجعل لنا الهاً كما كان آلهة قال انكم قوم تجهلون"

हमारे लिए भी ऐसे पूज्य बना दीजिए जैसे उनके पूज्य थे, तो कहा तुम लोग एक जाहिल गिरोह हो (सूर: आराफ़ 138) अल्लाह की क़सम तुम लोग पिछली क़ौमों के पद चिन्हों पर चलोगे। (तिर्मिज़ी)

6-मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, और मौलाना क़मरुज्ज़मां नदवी, फ़तावा रहीमिया (13/4) फ़तावा महमूदिया (371/12;501/17), जामेउल फ़तावा (511/1) और फ़िक़्ही मक़ालात (261/1) के हवाले से लिखते हैं कि किसी मुसलमान के लिए ग़ैर

मुस्लिम के पूजा स्थलों के निर्माण में सहयोग देना किसी तरह वैध नहीं है, हॉ, मौलाना अतीक़ अहमद क़ासमी, और मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी का कथन है कि यदि सहयोग न देने की स्थिति में कोई, भयंकर ख़तरा हो जाये तो न चाहते हुए चन्दा देने की गुंजाइश है। (जदीद फ़िक़्ही मसायल पृ0 443, मजल्ला बहस-व-नज़र 40)

मस्जिदों और मदरसों के निर्माण में ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग लेना वैध है:

अधिकतर लेखकों का विचार है कि मस्जिदों और मदरसों के निर्माण में, और धार्मिक समारोहों के लिए ग़ैर मुस्लिमों की ओर से सहायता राशि लेना वैध है, परन्तु शर्त यह है कि वह पुण्य समझ कर दे रहे हों और उनका सहयोग मस्जिदों और मदरसों के हितों के विरुद्ध न हो, इसके साथ-साथ उनकी ओर से सहयोग के बाद आभार जताने का सन्देह न हो और न उन्हें इस बात की आशा हो कि वे इसके बदले में उनके धर्म स्थलों के निर्माण में मुसलमानों से सहयोग चाहेंगे। उनके तर्क यह हैं:

1-अबी वायल से रिवायत है कि मै काबा में शैब के साथ कुर्सी पर बैठा था और वह भी इस बैठक में मौजूद था तो उमर ने फ़रमाया कि मैने तय किया है कि मै इसमें कुछ न छोडूं तो मैने उनसे कहा कि आपके दोनों साथियों ने तो ऐसा नहीं किया, काअ़ब ने फ़रमाया, उन दोनों ने अपनी ही इच्छा का अनुसरण किया। (बुख़ारी, किताबुलहज अध्याय- किस्वतुल काबी 217/1)

काफ़िरों का माल मस्जिदे हराम में दफ़न रहा उसको निकाल कर बांटा नहीं गया, अगर काफ़िर का माल मस्जिद में लगाना हराम होता तो दफ़न किये हुए माल को निकाल कर फेंक दिया जाता।

2-मौलाना मुहम्मद सादिक मुबारकपुरी ने ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग स्वीकार करने की वैधता के कुछ तर्क दिये हैं जो निम्नलिखत हैं।

1-मक्का विजय के बाद नबी (सल्ल०) ने काबा के निर्माण में शिर्क करने वालों को साथ रखा, इससे ज्ञात हुआ कि काफ़िर का माल मस्जिद में लगाना वैध है। (लेख-मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी,)

2-कितने ही हिन्दू राज्य हैं जहाँ हिन्दू राजाओं ने मस्जिदें बनवा रखी हैं जिसमें बिना किसी मनाही के शताब्दियों से नमाज़ होती आ रही है। (फ़तावा महमूदिया 189/10) (लेख मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

इसी तरह दुर्रे मुख़्तार, रद्दुल मुहतार, (280/3) अल-बहरुर्रायक़ (189/5) और फ़तावा आलमगीरी (352/2 किताबुल वक़्फ़) इत्यादि में मस्जिदों के निर्माण में सहयोग राशि लेने में मुसलमान होने की कोई शर्त नहीं लगाई गई है, बल्कि उसमें गैर मुस्लिमों की तरफ़ से भी सहयोग राशि स्वीकार किया जा सकता है। (देखिये- लेख मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन)

इसी तरह इम्दादुल फ़तावा (464/3) फ़तावा महमूदिया (356/17), फ़तावा रशीदिया (538) फ़तावा रहीमिया (198/9) आदि में भी मस्जिद के लिए ग़ैर मुस्लिमों की तरफ़ से दी गई सहयोग राशि स्वीकार करने को वैध कहा गया है। (लेख- मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना मुहम्मद इक़ाबल क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी)

मौलाना शमसुद्दीन साहब ने इस सिलसिले में पॉच दशाएं बयान की हैं:

1-कोई हिन्दू किसी मुसलमान को धन भेंट कर दे और मुसलमान उस धन का स्वामी बनकर अपनी तरफ़ से मस्जिद में लगा दे, जैसे पक्की

ईंट उसने मुसलमान को दीं और उसे मालिक बना दिया, और मुसलमानों ने ये ईंट मस्जिद में लगा दीं।

2-किसी हिन्दू ने कुछ धन मुसलमानों को दिया और उन्हें मालिक बना दे और मुसलमान उसे मस्जिद के निर्माण में ख़र्च कर दें।

3- यह कि हिन्दू ने कुछ सामान जैसे ईंट इत्यादि मुसलमानों को यह कहकर दिया कि तुम इन्हें अपनी मस्जिद में लगाओ अर्थात उसने मुसलमानों को स्वामी (मालिक) नहीं बनाया बल्कि सामग्री को मस्जिद में लगाने के लिए अधिकृत किया।

4- यह कि उसने इस तरह धन मुसलमानों को दिया कि उसे मस्जिद के निर्माण में ख़र्च करो।

5- यह कि किसी टूटी हुई मस्जिद की किसी हिन्दू ने स्वयं मरम्मत कराई और अपना सामान, धन, उसकी मरम्मत या निर्माण में ख़र्च किया और स्वयं ही इस काम की देख भाल की।

मौलाना इन दशाओं का विवरण बताते हुए कहते हैं कि दूसरी स्थिति में किसी को कोई मतभेद नहीं होना चाहिए, क्योंकि जब हिन्दू ने सामग्री या धन का स्वामी मुसलमान को बना दिया तो अब वह हिन्दू का धन नहीं रहा, स्वामित्व में परिवर्तन के साथ मुसलमान उस धन का स्वामी हो गया, अब उसकी वैधता में कोई मतभेद नहीं है।

तीसरी और चौथी दशा का आदेश यह है कि वह भी वैध है क्योंकि काफ़िर का धन जबकि वह अपनी ख़ुशी से मस्जिद में लगाने के लिए दें, मात्र इसलिए कि वह काफ़िरों का माल है, लेने और मस्जिदों में लगाने में कोई शरअी कारण बाधक नहीं है।

और पांचवी दशा में आदेश यह है कि काफ़िरों को यह अवसर देना कि वे मस्जिद का निर्माण करायें, अवैध है लेकिन अवैधता का कारण यह नहीं कि यह काफिरों का धन है बल्कि कारण यह है कि जो इबादत गाहें इस्लाम के लिए विशेष हैं उनपर काफ़िरों का दख़ल देना मना है। चूँकि काफ़िर, काफ़िर होने की स्थिति में इस्लाम की पहचान (शेआर) और अल्लाह के घर में, हस्तक्षेप के योग्य नहीं, जैसा कि आयत "शिर्क करने वालों के लिए नहीं"......ماكان للمشركين" के अनुसार निर्माण से तात्पर्य भलाई की नीयत से निर्माण है अर्थात काफ़िर को मस्जिद निर्माण का अधिकार नहीं है, जिसमें वह अपना हस्तक्षेप चाहता हो। (लगभग यही विवरण मौलाना अबू बक्र क़ासमी ने किफ़ायतुल मुफ़्ती 77-80/7 के हवाले से नक़ल किया है।

अवैधता के समर्थक:

कुछ लेखकों ने आयत:

"ما كان للمشركين ان يعمر وا مساجد الله شاهدين على انفسهم بالكفر"

"शिर्क करने वालों को यह अधिकार नहीं कि वे मस्जिद का निर्माण करें जब कि वह स्वयं अपने काफ़िर होने की गवाही दे रहे हैं" (सूर: तौबा 17) का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस आयत से मस्जिद के निर्माण में ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग लेने की अवैधता सिद्ध होती है, और तफ़्सीर ख़ाज़िन के अनुसार धार्मिक कामों में विशेष रूप से मस्जिद के निर्माण या मरम्मत में ग़ैर मुस्लिमों का सहयोग लेना ठीक नहीं है, उन्होंने उपरोक्त आयत के अनुसार लिखा है "लोगों ने निर्माण के भावार्थ में मतभेद किया है जिसमें दो कथन हैं एक यह कि निर्माण का अर्थ भलाई की नीयत से

निर्माण है, जैसे मस्जिद को बनाना और टूट फूट की दशा में मरम्मत करना, तो काफ़िर को इसकी अनुमति नहीं है यहाँ तक कि यदि मस्जिद को बनाने की वसीयत करे तो उसे स्वीकार न किया जाये'' (तफ़सीर माजिदी 397/1) (लेख-मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना साबित शमीम रशादी)।

मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी साहब ने निम्नलिखित तर्कों का उल्लेख किया है:

1-इमाम इब्नुल जौज़ी उपरोक्त आयत की तफ़्सीर में लिखते हैं कि मस्जिदों को आबाद करने के दो अर्थ हैं, एक मस्जिद में प्रवेश करना और उसमें बैठना, और दूसरा अर्थ यह है कि उसका निर्माण और मरम्मत करना, ये दोनों चीजें काफ़िरों पर हराम हैं और क़ुरआन करीम की आयत ''ما كان للمشركين'' से स्पष्ट होता है कि मुसलमानों पर अनिवार्य है कि वह इन चीजों से काफ़िरों और शिर्क करने वालों को रोक दें। (ज़ादुल मसीर 408/3)

2-अल्लामा जस्सास फ़रमाते हैं कि मस्जिदों को आबाद करने के दो अर्थ हैं, एक, मस्जिदों की ज़ियारत करना, उनमें ठहरना, और दूसरा अर्थ है उसका निर्माण करना और टूट-फूट की मरम्मत करना, और आयत से यह स्पष्ट होता है कि मस्जिद में जाना, उसका निर्माण व मरम्मत करना, उसकी देख भाल करना, इत्यादि काफ़िरों के लिए उचित नहीं है। (फ़तहुल क़दीर-शौकानी 427/2, अहकामुल क़ुरआन 87/3) (लेख-मौलाना साबित शमीम रशादी)

इसके अतिरिक्त मौलाना कहते हैं कि हम्बली उलमा के मतानुसार मस्जिदों के निर्माण के लिए मरम्मत इत्यादि में ग़ैर मुस्लिमों की सहायता को स्वीकार किया जा सकता है जैसा कि अल-आदाबुल शरईया 416/3 में

है: मस्जिद का निर्माण और उसको वस्त्र पहनाना और उसमें प्रकाश करना ग़ैर मुस्लिमों के धन से वैध है और उसका स्वयं हाथ से बनाना भी वैध है।"

लेकिन हम्बली उलमा का यह मत नहीं है।

जब कि मौलाना साबित शमीम रशादी का यह कथन है कि आदरणीय फ़क़ीहों ने इसकी अनुमति दी है कि यदि ग़ैर मुस्लिम मस्जिदों में सहयोग करें तो कुछ शर्तें लगा कर उनको स्वीकार करना वैध है:

1-वह व्यक्ति अपने विश्वास के अनुसार मस्जिद से निकटता रखता हो।

2-उसको स्वीकार करने में ग़ैर मुस्लिमों द्वारा अधिकार जमाने का सन्देह न हो।

3-मुसलमान अपने दीनी मामले में चापलूसी से काम नहीं लेंगे।

4-वे ग़ैर मुस्लिम इस सहयोग को आभार जताने का माध्यम न बनायें।

5-इसके बदले में अपने धर्म स्थलों और धार्मिक समारोहों में सहयोग के इच्छुक न हों। मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी और मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी ने भी इसका उल्लेख अहसनुल फ़तावा (439/6) और मआ़रिफ़ुल क़ुरआन (330/4) के हवाले से किया है।

और मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी मुफ़्ती रशीद अहमद के हवाले से लिखते हैं कि: आयत के प्रसंग और संदर्भ और अवतरण की परिस्थितियों पर निगाह डालने से स्पष्ट होता है कि इसमें मस्जिदे हराम का निर्माण और हाजियों को पानी पिलाने के स्वाभिमान का निरस्त होना सिद्ध होता है, इस प्रकार शिर्क करने वालों में उनके आमाल के स्वीकार्य न होने

की शर्त (ईमान) के कारण उनका कर्म अल्लाह के यहाँ अस्वीकार्य है, और जो अमल अस्वीकार्य हो उसपर अभिमान करना व्यर्थ है। इस आयत में वैधता और अवैधता में कोई टकराव नहीं, संदर्भ और अवतरण की परिस्थितियों के अनुकूल होने के अतिरिक्त फ़क़ीहों के स्पष्टीकरण के विपरीत है और टकराव की स्थिति में क़ुरआन के टीकाकारों का कथन स्वीकार्य नहीं होगा।

प्रत्येक परिस्थिति में ग़ैर मुस्लिम से मदरसों और मस्जिदों के लिए सहयोग स्वीकार करने से हर सम्भव बचना ही बेहतर है। (लेख-मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना मुहम्मद इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम साहब आदि)

इस लिए कि ग़ैर मुस्लिमों से आर्थिक सहयोग लेना इस्लामी शान और स्वाभिमान के विरुद्ध है। (मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अबू बक्र क़ासमी, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली)।

इसलिए मस्जिदों के अरिरिक्त दूसरे मदों में सहयोग लिया जा सकता है लेकिन मस्जिदों में नहीं (मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी)

यदि इनका सहयोग लिया भी जाये तो उसे मस्जिद के शौचालय और स्नान गृह में प्रयोग किया जाये। मस्जिद में नहीं (सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, और डा. सैयद कुद्रतुल्लाह बाक़वी) लेकिन मुफ़्ती महबूब अली वजीही कहते हैं कि उसका प्रयोग शौचालय इत्यादि में भी उचित नहीं है इसलिए कि उसका सम्बन्ध भी मस्जिद से ही है, यदि वह हमको स्वामी बनाकर दें तो हम उसे अपनी तरफ़ से लगा सकते हैं।

लेकिन मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी और मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही का कथन है कि इस तरह का सहयोग कुछ शर्तों के साथ उचित है, जबकि मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना अबुल आस वहीदी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, इत्यादि कहते हैं कि मुसलमानों का ग़ैर मुस्लिमों से सहयोग लेना और देना दोनों उचित नहीं है।

प्रश्न- (इ) ग़ैर मुस्लिमों के समारोहों में भाग लेना और बधाई देनाः

(क) इस प्रश्न की दोनों धाराओं पर उलमा में मतभेद है, इसमें अधिकतर लोगों का विचार यह है कि ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक समारोहों में शिर्क वाले कर्म होते हैं, इनमें मुसलमानों का भाग लेना अवैध और हराम है, इन सज्जनों ने निम्न लिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं:

"وَلَا تَعَاوَنوا علی الاثم والعدوان"

1-गुनाह व अल्लाह से विद्रोह में सहयोग न दो। (मौ० शमसुद्दीन, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

"وقد نزل علیکم فی الکتاب ان اذا سمعتم آیات الله ان یکفر یستهزء بها فلا تقعدوا معهم"

2-तुम्हारे ऊपर किताब में उतारा गया है कि आयतों का इन्कार करते, और मज़ाक़ उड़ाते सुनो तो उन लोगों के साथ न बैठो। (सूरः निसा 140) (मुफ़्ती हबीबुल्लाह कासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक मुबारकपुरी)

"ولا ترکنوا الی الذین ظلموا فتمسکم النار"

3-उन लोगों की तरफ़ मत झुको जिन लोगों ने अत्याचार किया, कि तुम को आग छू ले। (सूरः हूद 113) (मौलाना तंज़ीम आलम कासमी)

"فلا تقعد بعد الذكرى مع القوم الظالمين"

4-अपनी ग़लती का एहसास हो जाने के बाद अत्याचारी क़ौम के साथ न बैठो। (मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी)

5-जिसके अन्दर दूसरी क़ौमों की आदत प्रभावकारी हो गई वह उन्हीं में से है। (मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना उबैदुल्लाह पालनपूरी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

6-जिसने किसी क़ौम की समानता (तौर तरीक़ा) अपनाई वह उन्हीं में से है। (अबू दाऊद 375/2) (मौ० याक़ूब क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी)

7-अल्लाह की अवज्ञा में किसी व्यक्ति का अनुसरण नहीं। (मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी)

8-हज़रत अम्र बिन मर्रह "لا يشهدون الزور" (वह झूठी गवाही नहीं देते) की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि वह अनेकश्वरवाद करने वालों के कर्म में सहयोग नहीं करते और न उनके साथ घुलते मिलते हैं। (अल इक़्तिज़ा 81) (लेख मौ० अख़्तर इमाम आदिल)

9-हजरत अता बिन यसार फ़रमाते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया: "अनेकश्वरवाद करने वालों की इबादतगाहों में उनके त्यौहार के अवसर पर जाने से बचो (अल- इक़्तिज़ा पृ0 86) (लेख मौ० अख़्तर इमाम आदिल)

10-हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर फ़रमाते हैं: जिस किसी ने अजमी (ग़ैर अरब) शहरों में काफ़िरों के नौरोज़ और उनके समारोंहों में भाग लिया

और उनके रहन सहन को अपनाया और उसी दशा में उसका देहान्त हो गया तो क़यामत में उसको काफ़िरों के साथ ही रखा जायेगा। (अल- इक़्तिज़ा-95) (मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना अरशद मदनी, और मौ० मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

11-हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद को एक वलीमा की दावत मिली, वह वहां गये और वहाँ बुराइयों (ख़ुराफ़ात) को देखकर वापस आ गये, लोगों ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना है, जिसने किसी क़ौम के रहन सहन को अपनाया और उसके आमाल (कर्मों) को उसने पसन्द किया तो मानों वह कर्म में सम्मिलित हुआ। (कन्जुल उम्माल 22/9)

12- हज़रत आइशा से मरवी है कि रसूलुल्लाह सल्ल0 ने फ़रमाया:

"يعزو جيش الكعبة فإذا كانوا ببيداء من الارض يخسف بأولهم وآخرهم قالت: قلت يا رسول الله كيف يخسف بأول وآخرهم وفيهم أسواقهم ومن ليس منهم قال: يخسف بأولهم وآخرهم ثم يبعثون على نياتهم" (بخاری مع الفتح ۱۵۰/۲، ترمذی ۲۴/۲، فتح الملہم ۳۶۲/۲)۔

13-हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि जब नबी (सल्ल०) मदीने पहुँचे तो वर्ष में दो दिन अज्ञानता काल में त्यौहार का रिवाज था, पूछने के बाद आपने फ़रमाया कि अल्लाह ने तुम लोगों के लिए उससे बेहतर दो त्यौहार निर्धारित किए हैं। (अबू दाऊद)

अल्लामा इब्ने तैमिया लिखते हैं कि इस हदीस में परिवर्तन का शब्द बताता है कि जब ये दो नये त्यौहार अज्ञानता काल के त्यौहारों के स्थान पर निर्धारित किये गये तो वह स्वयं निरस्त हो गये, तो निरस्त होने के बाद उसमें भाग लेने का अर्थ अल्लाह की अवज्ञा होगी।

(इक़्तिज़ाउस्सिरात अल- मुस्तक़ीम 165)

14-साबित बिन ज़ुहाक से रिवायत है, वह कहते है: एक आदमी ने बवाना में एक ऊंट ज़बह (क़ुर्बानी) करने की मन्नत मानी, इसके बारे में उसने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से पूछा तो आप (सल्ल०) ने पूछा कि वहाँ अज्ञानता की मूर्तियों में से कोई है, जिसकी पूजा की जाती हो? लोगों ने कहा नहीं आपने पूछा मुश्रिकों के मेलों में से कोई मेला लगता है लोगों ने उत्तर दिया नहीं, तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अपनी मन्नत पूरी करो। इसलिए कि अल्लाह की अवज्ञा करने वाली किसी मन्नत को पूरा करना उचित नहीं है। और न किसी ऐसी मन्नत को पूरा करना है जो व्यक्ति की ताक़त से बाहर हो।

(अबू दाऊद)

15- मयमुना बिन्ते कुरूम से रिवायत है कि मैं हज के समय रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ थी और मैंने आप (सल्ल०) को ऊँट पर सवार देखा और आप (सल्ल०) हाथ में मुअल्लिमीन (हज का तरीक़ा सिखाने वालों) की तरह कोड़ा लिए हुए थे, मेरे बाप ने निकट जाकर आपका पवित्र पैर पकड़ लिया और कहा ऐ अल्लाह के रसूल मैने मन्नत मानी थी कि अगर मेरे यहाँ कोई नर सन्तान पैदा हो गई तो बवाना में कुछ ऊँट ज़बह करूंगा, तो आप (सल्ल०) ने यह पूछ कर कि वहाँ कोई मूर्ति तो नहीं, मन्नत को पूरा करने का आदेश दिया। (अबू दाऊद)

16-अम्र बिन शुऐब की रिवायत है कि एक औरत ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर कहा: ऐ अल्लाह के रसूल मैंने आपके पास द्फ़्फ़ (ढोल) बजाने की मन्नत मानी थी, आपने फ़रमाया मन्नत पूरी कर लो, उसने कहा

मैं अमुक स्थान पर क़ुरबानी करना चाहती हूँ, आपने सन्तुष्ट होने के बाद उसकी भी अनुमति देदी। (अबू दाऊद)

अल्लामा इब्ने तैमिया इन रिवायतों को नक़ल करने के बाद फ़रमाते हैं, कि जब अज्ञानता काल के मेलों और धर्म स्थलों पर भावुक उपस्थिति को रोक दिया गया तो स्वयं अज्ञानता के मेलों में भाग लेना सबसे पहले मना होगा। (इक़्तिज़ाउस्सिरात अल मुस्तक़ीम 116)

कुछ उलमा ने फ़तावा महमूदिया (404/14), मजमूअतुल फ़तावा (119/2), फ़तावा रशीदिया (556) और किफ़ायतुल मुफ़्ती (336/9) के हवाले से लिखा है कि ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक समारोंहों में भाग लेना निषिद्ध और हराम है। (लेख मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौ० मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौ० मुहम्मद शमसुद्दीन, मौ० अकीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ० अबू बक्र क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

मौलाना अब्दुर्रहीम क़ासमी ने ग़ैर मुस्लिम समारोहों की चार क़िस्में बतायी हैं, और सबका आदेश भी बताया है, वह लिखते हैं:

1-शादी ब्याह के समारोह में भाग लेने की गुंजाइश निकल सकती है, क्योंकि इसमें भाग लेने का उद्देश्य प्रसन्नता प्रकट करना और बधाई देना होता है।

2-देहान्त के बाद जो समारोह होता है उसमें भाग लेने की गुंजाइश नहीं है "मत नमाज पढ़िये उनमें से किसी पर जो मर गया और न उसकी कब्र पर खड़े हों" (क़ुरआन) अब क़ब्र पर खड़े होने से मना किया गया तो उनके समारोह में भाग लेने की अनुमति कैसे दी जा सकती है?

3-देहान्त के कुछ दिनों बाद एक समारोह होता है, जिसमें निकट

सम्बन्धी और मित्र एकत्र होते हैं, और शोक संवेदना प्रकट करते हैं, तो उसमें भाग लेने और संवेदना प्रकट करने की अनुमति है "जब कोई काफ़िर मर जाये तो उसके माता-पिता से या उसके निकट सम्बन्धी से शोक संवेदना प्रकट करते हुए कहें, अल्लाह तुम्हें इससे बेहतर सन्तान दे, और तुम्हें इस्लाम के पथ पर चलने का सौभाग्य दे और तुम्हें मुस्लिम सन्तान दे, इसलिए कि इस माध्यम से भलाई का प्रकटीकरण हो"।

4-पूजा-पाठ आदि का समारोह होता है, जिसमें शिर्क और कुफ़्र (इस्लाम से इन्कार) का प्रदर्शन होता है, और शिर्क और कुफ़्र अल्लाह को अत्यन्त नापसन्द हैं:

"ان اللہ لا یغفر ان یشرک بہ و یغفر دون ذالک"

अल्लाह के साथ भागीदार बनाने वालों को अल्लाह बिल्कुल क्षमा नहीं करेगा इसके अतिरिक्त अन्य (पापों) को क्षमा कर देगा। (सूर: निसा 148)

और आगे लिखते हैं कि फ़तावा आलमगीरी के निम्न लिखित अंशों से ग़ैर मुस्लिमों के दूसरे, तीसरे और चौथे समारोहों में भाग न लेने पर दलील बनाया जा सकता है: "जिसे वलीमें में दावत दी गई, और वहाँ उसने खेल और गाने का प्रदर्शन देखा तो वहाँ बैठने और खाने में कोई बुराई नहीं है, और अगर उसके अन्दर रोकने की क्षमता हो तो रोके और यदि क्षमता नहीं है तो धैर्य रखे, यदि वह उसकी बात मानने वाले न हों और यह सब दशाएं वहाँ पहुँचने के बाद हैं, और यदि उसे पहुँचने से पहले पता चल जाये तो वहाँ न जाये। (आलमगीरी 343/5)

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम साहब ने हिन्दुओं के धार्मिक मेलों में भाग लेने की कई क़िस्में बतायी हैं और सबका आदेश भी बताया है:

1-मुसलमान इन मेलों में यदि इस तरह भाग ले कि उनके कामों को पवित्र समझें तो इस दशा में भाग लेने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता है।

2-इस तरह भाग लेना कि जिसमें मुसलमानों का हिन्दुओं से अन्तर न सिद्ध हो, तो वैध है लेकिन शर्त यह है कि किसी धार्मिक कर्म का पक्ष न ले और उसको सम्मान न दें।

3-कुछ दशाओं में अगर भाग लेने का उद्देश्य कोई बड़ा हो तो वैध हो सकता है।

4-किसी प्रदर्शन के रास्ते में आपसी मेल जोल के लिए पानी उपलब्ध कराना या पिलाना वैध है।

5-अगर पानी पिलाने का कार्य काफ़िरों की पहचान का सम्मान हो तो यह कुफ़्र (इस्लाम का इन्कार) है।

निचोड़ यह है कि मुसलमानों का हिन्दुओं के धार्मिक समारोहों में प्याऊ लगाना और पानी आदि बॉटना, अगर उनके त्यौहार के सम्मान के लिए है तो कुफ़्र है, और शान्ति स्थापित करने, भाई चारा स्थापित करने की नीयत हो और उनके धार्मिक कामों की प्रशंसा करना उद्देश्य न हो, और यह कार्य उन विशेष अवसर से अलग हो तो वैध है, कुफ़्र तो उसी दशा में हो सकता है जब उसे अच्छा समझें और उनके अमल से उनके कर्मों का सत्यापन व प्रसंशा होती हो (किफ़ायतुल मुफ़्ती 279, 280/9) लेख- मौ० राशिद हुसैन नदवी: उन्होंने इस फ़तवा को ग़ैर मुस्लिमों को उनके त्यौहारों पर बधाई देने के सिलसिले में अपना तर्क बनाया है।)

मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही ने दूसरे तर्कों के साथ यह तर्क भी

दिया है कि इमाम बुख़ारी ने हज़रत उमर का यह कथन नकल किया है: अल्लाह के दुश्मनों से उनके त्यौहारों से (अवसर पर) बचो।

शर्तों को ध्यान में रखते हुए भाग लेने के समर्थक:

अब कुछ उन लोगों के निम्नलिखत विचारों का उल्लेख किया जा रहा है जो किसी न किसी दशा में और किसी न किसी शर्त के साथ ग़ैर मुस्लिमों के समारोहों में मुसलमानों के भाग लेने को वैध ठहराते हैं:

1-मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी साहब, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी साहब का विचार है कि ग़ैर मुस्लिमों के शादी ब्याह के समारोहों में भाग लेना वैध है, इसी तरह ग़ैर मुस्लिम सभाओं में व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के लिए मुस्लिम स्वयंसेवकों (volunters) का भाग लेना वैध है, शर्त यह है कि किसी शिर्क वाले कर्म में भाग न लिया जाये। (किफ़ायतुल मुफ़्ती 277/9)

2-जो समारोह केवल उत्साह और प्रसन्नता प्रकट करने के लिए हो और जो मुसलमानों से किसी दुश्मनी के आधार पर न हों तो उसमें भाग लिया जा सकता है। (मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी)

3-इस आयत:

”اذا رایت الذین یخوضون فی آیا تنا اعرض عنهم حتی یخوضوا فی حدیثٍ غیرہ“

‘‘ऐ नबी जब तुम देखो कि लोग हमारी आयातों की आलोचना कर रहे हैं। तो वहाँ से हट जाओं यहाँ तक कि वे दूसरी बातों में लग जायें” से उनके समारोहों में भाग लेने की वैधता सिद्ध होती है। (सैयद अमीर हसन

गीलानी)

4-अगर किसी धार्मिक या मिल्ली हितों के आधार पर मजबूरी हो या किसी विशेष आवश्यकता के आधार पर भाग लेना पड़े, लेकिन शर्त यह है कि उनके किसी धार्मिक कार्य का समर्थन या आदर न किया जाये तो वैध है। (मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, और मुफ़्ती मुहम्मद सलमान खली)

5-डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही साहब कहते हैं कि ग़ैर मुस्लिमों को इस्लाम से क़रीब लाने और उनको आकर्षित करने के उद्देश्य से हो तो उसमें कोई बुराई नहीं है लेकिन उनकी धार्मिक रीतियों से दूर रहें, इसलिए कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) उकाज़, ज़ुल मज़ना और ज़ुल मजाज़ के मेलों में प्रचार प्रसार के लिए उपस्थित होते थे (लगभग यही विचार मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, डा. यूसुफ़ क़ासिम और मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी का है।

6-ग़ैर मुस्लिमों के उन त्यौहारों में जिनमें शिर्क (अनेकश्वरवाद) और कुफ़्र का प्रदर्शन न हो जैसे नववर्ष, या मौसमी त्यौहारों में भाग लिया जा सकता है। (सैयद शकील अहमद, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना आमिर ज़फ़र, सैय्यद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी)

7-मौलाना उबैदुल्लाह साहब का विचार है कि धार्मिक समारोहों के अवसर पर खाने पीने में तो भाग लेना उचित है परन्तु, उनके धार्मिक कामों में भाग लेना किसी प्रकार वैध नहीं है, और हराम खाने से बचें, और आज़ादी की लड़ाई में हमारे बड़े-बड़े उलमा हिन्दू भाइयों के साथ सारे मामलों में भागीदार होते थे।

इफ़्तार पार्टी में भाग लेना:

इफ़्तार पार्टी या ईद मिलन, होली मिलन जैसे मिले-जुले समारोहों में भाग लेने के सिलसिले में उलमा के विचार भिन्न हैं, जिनमें कभी-कभी यह होता है कि ग़ैर मुस्लिम इफ़्तार पार्टी की व्यवस्था करते हैं और मुसलमानों को उनमें आमंत्रित करते हैं और कभी ऐसा होता है कि स्वयं मुसलमान ही पार्टी या ईद मिलन की व्यवस्था करते हैं और उनमें ग़ैर मुस्लिमों को आमंत्रित करते हैं, लेखकों के विचार निम्न में लिखे जा रहे हैं:

मौलाना राशिद हुसैन नदवी के अनुसार ग़ैर मुस्लिम का निमंत्रण स्वीकार करना वैध है "ज़िम्मियों की दावत में जाने में कोई बुराई नहीं है, ऐसा ही उल्लेख मुहम्मद (रह0) ने किया है। कभी-कभी उनके साथ बैठकर खाने में कोई बुराई नहीं है लेकिन स्थाई तौर पर आदत न डाले।" "मुहम्मद (रह0) ने आग पूजने वालों और शिर्क करने वालों के साथ खाने का उल्लेख नहीं किया है क्या समस्या इससे हल हो जायेगी? नहीं! और अब्दुर्रहमान कातिब ने हाकिम के हवाले से एक कहानी कही है कि अगर मुसलमान उनके साथ एक बार या दो बार मिल ले या खा ले तो कोई बुराई नहीं है लेकिन स्थाई रूप से घृणित है" यहाँ तक कि स्वयं ग़ैर मुस्लिमों को भी आमंत्रित करना वैध है "ज़िम्मी को दावत देने में कोई बुराई नहीं अगर दोनों में अच्छी पहचान हो और इसी तरह अल-मुल्तक़ित में है। (फ़तावा हिन्दीया 357/5)

इसके बाद वह लिखते हैं कि इफ़्तार की दावत भी एक दावत है इसलिए इसकी गुंजाइश मालूम होती है।

लेकिन इसकी वैधता के बावजूद बेहतर है कि:

1-इस तरह की दावतों से बचा जाये, इसलिए कि इसमें रोज़ा रखने वाले और रोज़ा न रखने वालों को कुछ परेशानियाँ होती हैं।

2-साधारण रूप से इस तरह की दावतों में मग़रिब की नमाज़ की जमाअत छूट जाती है।

3-इफ़्तार का समय दुआ स्वीकृत होने का समय है और इस तरह की सभाओं में यह अवसर शोर-गुल में नष्ट हो जाता है। अगर यह ख़राबियाँ न हों तो हितों को देखते हुए भाग लेने की गुंजाइश है।

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल लिखते हैं कि इमाम ग़ज़ाली ने हज़रत हसन का विचार नक़ल किया है कि वह पड़ौसी यहूदी या ईसाई को क़ुरबानी का गोश्त खिलाने की अनुमति देते थे (अहयाउल उलूमुद्दीन 233/2, बहस हुक़ूकुल जवार) इस को आधार बनाते हुए यदि ग़ैर मुस्लिमों के लिए इफ़्तार या ईद के खान-पान की अलग व्यवस्था कर दी जाये और मुसलमानों के साथ न मिलें तो इसकी गुंजाइश मालूम होती है।

फिर वह आगे लिखते हैं, कि इफ़्तार आदि के अवसर शरीअत में पवित्र हैं और उनको इबादत का दर्जा प्राप्त है ऐसे पवित्र अवसर पर काफ़िरों की उपस्थिति अशुभ है, जिससे हानि की संभावना है, इससे भी समझा जा सकता है कि ग़ैर मुस्लिमों की तरफ़ से जो इफ़्तार पार्टियां दी जाती हैं उनमें भाग लेना भी हराम नहीं लगता। लेकिन इफ़्तार का उद्देश्य जाता रहता है इसलिए यह घृणा करने योग्य है, और इसको लगातार करना गुनाह है।

मौलाना इक़बाल क़ासमी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौ०

अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी का कथन है कि यदि इफ़्तार में ग़ैर मुस्लिम सज्जनों को निमंत्रण दिया जाये और इसका उद्‌देश्य इस्लामी सन्देश से अवगत कराना हो या मुसलमानों को धार्मिक या सामाजिक लाभ पहुॅंचाना हो तो इफ़्तार पर अमंत्रित करना सराहनीय है।

मौलाना शमसुद्दीन साहब कहते हैं कि ग़ैर मुस्लिम जो मुसलमानों की इफ़्तार में भाग लेते हैं, ईद की बधाई देते हैं और मुसलमानों से आशा करते हैं कि वह भी उनके धार्मिक समारोहों और त्यौहारों में भाग लें तो स्पष्ट है कि यह वैध नहीं होगा। (लेख मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, और मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी लिखते हैं कि ग़ैर मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों की तरफ़ से जो इफ़्तार पार्टियां दी जाती हैं उनसे बचना चाहिए, क्योंकि रमज़ानुल मुबारक की उस विशेष घड़ी में जिसमें दुआएं स्वीकार होती हैं दिखावा और बेकार कामों में नष्ट हो जायेगा, जबकि मौलाना याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना अस्अद क़ासिम सम्भली, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी और मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी की राय है कि उसमें भाग लेना ही उचित नहीं है।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही का विचार है कि विभिन्न त्यौहारों के अवसर पर सौहार्द बनाये रखने के लिए कोई मिलन पार्टी होती है, तो इसमें वृहत्तर (Exteriue) हितों के लिए भाग लिया जा सकता है, शर्त यह है कि यह समारोह त्यौहार की रीतियों से हटकर हों और इसमें भाग लेना, इस त्यौहार में भाग लेना न समझा जाये।

मुफ़्ती महबूब अली वजीही कहते हैं कि यदि ग़ैर मुस्लिम मुसलमानों के घर इफ़्तार के समय आ जायें तो मुसलमान भाई चारा के तौर पर उनको साथ बैठा लें तो कोई बुराई नहीं है।

प्रश्न- (ई) (ख) ग़ैर मुस्लिम भाइयों को उनके त्यौहारों पर बधाई देना:

ग़ैर मुस्लिम भाइयों को उनके त्यौहारों पर बधाई देना वैध है या नहीं? तो अधिकतर लेखक उलमा का विचार है कि ग़ैर मुस्लिमों को उनके त्यौहारों पर बधाई देना उचित नहीं है इसलिए कि इसमें इनके शिर्क में लिप्त रीतियों और त्यौहारों के आदर का प्रदर्शन होता है।

मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी का कथन है कि यह इसलिए है कि, ऐसा करना कुफ़्र पर सहमत होना है, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी कहते हैं कि बधाई देना उनकी इच्छा का समर्थन है, जब कि मौलाना अबू बक्र क़ासमी का विचार है कि बधाई देने के बजाय चुपचाप रहें।

कुछ उलमा ने इस सम्बन्ध में कुछ दलीलें प्रस्तुत की हैं जो निम्नलिखित हैं:

"ان تکفروا فان اللہ غنی عنکم ولا یرضی لعبادہِ الکفروان تشکروا یرضہ لکم"

1-अगर तुम अवज्ञा करोगे तो अल्लाह तुम से बे परवाह है और अगर तुम शुक्र (आज्ञापालन) करोगे तो वह तुम से सन्तुष्ट हो जायेगा। (सूर: जुमर 7) (मौलाना मोहम्मद अरशद मदनी)

"الیوم اکملت لکم دینکم و اتممت علیکم نعمتی رضیت لکم الاسلام دیناً"

2-आज के दिन मैने तुम्हारे दीन को पूरा कर दिया, और तुम्हारे ऊपर

अपनी नेमतों को पूरा कर दिया, और दीन के रूप में इस्लाम को तुम्हारे लिए पसन्द कर लिया। (सूर: माइदा-3) मौ० मोहम्मद अरशद मदनी)

"ولا ترکنوا الی الذین ظلموا فتمسکم النار"

3-उन लोगों की ओर न झुको जिन्होंने अत्याचार किया कि तुमको आग छू ले। (सूर: हूद-113) (मौ० अबू बक्र क़ासमी, तंज़ीम आलम क़ासमी)

"ولئن اتبعت اهواء هم بعد الذی جاء ک من العلم ما لک من الله من ولی ولا نصیر"

4-अगर तुमने ज्ञान (वहय) आने के बाद उनकी इच्छाओं की पैरवी की तो अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई अभिभावक और सहायक न होगा। (सूर: माइदा-120)(मौ० अब्दुर्रहीम क़ासमी)

5-हजरत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि, रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक यहूदी से पीने की कोई चीज माँगी तो उसने प्रस्तुत की, तो आप (सल्ल०) ने उसको दुआ दी कि अल्लाह तुम्हें सुन्दर रखे अत: देहान्त के उसके उसके बाल काले थे (लेखक: इब्ने अब्दुर्रज़्ज़ाक़ 392/10) (मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी)

6-हाशिया सावी में आयत के सम्बन्ध में लिखा है कि नि: संदेह यदि तुम पाप में उन्हीं जैसे हो और कुफ़्र में या इसके अतिरिक्त भी उन्हीं जैसे हो तो कुफ़्र (अवज्ञा) पर सहमत होना कुफ़्र है और हराम की हुई चीज़ों से सहमत होना विद्रोह है। (हाशिया सावी- जलालैन 237/1) (मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी)

7-हाफ़िज़ इब्ने क़य्यिम ने ज़िम्मियों के सिलसिले में आदेश (205/1) में लिखा है, 'कुफ़्र से सम्बन्ध रखने वाले धार्मिक चिन्ह जो उसकी

विशेषता हों' पर बधाई देना सर्वसम्मति से हराम है। (मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौ० मुहम्मद उबैदुल्लाह क़ाज़ी, और क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल)

8-फ़तावा रशीदिया (पृ0 488) और मिन फ़िक़्हिल अक़ल्लियात मुस्लिमा (पृ0 153) में भी है कि ग़ैर मुस्लिम को त्यौहार के अवसर पर बधाई देना या किसी प्रकार का सहयोग देना या त्यौहार की प्रशंसा में कविता बना कर देना बिल्कुल उचित नहीं है। (मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

बधाई देने में कोई बुराई नहीं:

कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि ग़ैर मुस्लिमों के त्यौहारों के अवसर पर बधाई देने में कोई बुराई नहीं है, बल्कि साम्प्रदायिक सद्भाव और भाईचारे की नीयत से ऐसा करना बेहतर है (लेख मौ० मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, सैयद अमीर हुसैन जीलानी, मौ० बुरहानुद्दीन सम्भली, डा. यूसुफ़ क़ासिम, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना उबैदुल्लाह अस्‌अदी, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही इत्यादि)

जब कि क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी साहब ने एक दूसरी बात कही है, और वह यह है कि, बधाई देना दुआ नहीं है, दुआ के लिए शब्द आशीर्वाद आता है और मुबारक बाद की जगह बधाई का शब्द प्रयोग करना अधिक उचित है। अगर हानि अथवा सम्बन्धों के बिगड़ने का संदेह हो तो शब्द बधाई प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ लेखक कुछ शर्तों और प्रतिबन्धों के साथ बधाई देने को उचित

मानते हैं:

1-डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही लिखते हैं, सामाजिक नैतिकता के अनुसार यदि वह हमारे त्यौहारों पर हमें बधाई देते हैं तो, हमको भी उनके त्यौहारों पर मुबारकबाद देना चाहिए परन्तु आदमी स्वयं उनपर कोई विश्वास न रखता हो, इसके अतिरिक्त वह लिखते हैं "जब तुम्हें कोई मुबारकबाद दे तो तुम उसको उससे अच्छे ढंग से मुबारक बाद दो" के साधारण अर्थ में यह आ सकता है।

2-मौलाना मुहम्मद इब्राहीम गजिया और मौलाना आमिर ज़फ़र साहब कहते हैं कि यदि इस्लाम के आदर्शों से टकराव न हो और ऐसा करने से ग़ैर मुस्लिमों जैसा न लगे तो वैध है।

3-आवश्यकता और मजबूरी के अन्तर्गत "لكم دينكم ولى دين" तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन और मेरे लिए मेरा दीन, के अन्दाज़ में बधाई देने में कोई हानि नहीं है। (मौ० राशिद हुसैन नदवी, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मुफ़्ती मुहम्मद सलमान खली)

4-मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी का कहना है कि:

(क) ग़ैर मुस्लिमों को उनके त्यौहारों की बधाई देना, यदि इस नीयत से हो कि धर्म के आधार पर नफ़रत का वातावरण समाप्त होगा और ग़ैर मुस्लिम समाज में मुसलमानों के लिए प्रेम और सहानुभूति के भाव पैदा होंगे तो वैध है।

(ब) इसी प्रकार बुराई को रोकने के लिए अथवा ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक हित में अर्थात हिदायत की आशा में यदि बधाई दी जाये तो वैध है।

प्रश्न-३ (अ) झण्डे को सलामी देने के सिलसिले में आदेश:

इस सिलसिले में अधिकतर उलमा का विचार है कि झण्डे को सलामी देना और उसके आदर में सर झुकाना वैध नहीं है, ऐसा आदर इबादत में सम्मिलित है, और अल्लाह को छोड़कर दूसरे की इबादत करना शिर्क (अनेकश्वरवाद) है, इसलिए ऐसा करना शिर्क होगा और इससे बचना आवश्यक है। (लेख- मौ० अबू सुफ़ियान मिफ़ताही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौ० बुरहानुद्दीन सम्भली, मौ० अताऊल्लाह क़ासमी, मौ० नियाज़ अहमद मदनी, मौ० नईम अख़्तर क़ासमी, मौ० आमिर ज़फ़र नदवी, मौ० असअद क़ासिम सम्भली, मौ० अबुल आस वहीदी, मौ० ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौ० मुहम्मद अरशद मदनी)

"ياايها الذين آمنوا انما الخمر والميسر والانصاب والازلام رجس من عمل الشيطان فاجتنبوه لعلكم تفلحون"

ऐ लोगो जो ईमान लाये हो ये शराब, जुआ, आस्ताने (स्थान) और पांसे, यह सब गंदे शैतानी काम हैं इनसे बचो आशा है तुम कामयाब हो जाओ। (सूरःमाइदा-89)

कुछ उलमा ने इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की है और विभिन्न तर्क प्रस्तुत करने के प्रयास किए हैं, उनके तर्क और दशाएं निम्नलिखित हैं:

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल साहब ने इस सिलसिले में दो दृष्टिकोण बताये हैं,और दूसरे दृष्टिकोण को विस्तार से बयान किया है जिसमें वैध न होने का संकेत मिलता है, वह कहते हैं कि मौलाना अशरफ़ अली थानवी का विस्तृत फ़तवा इम्दादुल फ़तावा में मौजूद है जिसमें उन्होंने इस काम को अवैध और इस्लाम के विरुद्ध बताया है, और यदि विचार किया जाये तो तर्क के अनुसार यह दृष्टिकोण अधिक प्रबल है।

यह कि झण्डे के चारों तरफ़ खड़े होने की क्या हैसियत है, चाहे सिर झुकाया जाये या नहीं? हाथ जोड़ा जाये या नहीं? इसका उन्होंने विस्तार से उल्लेख किया है लेकिन नीचे उन्होंने संकेत दिया है कि खड़े होने की चार दशाएं हैं और परिभाषा बतायी है। 1-क़याम लहू(उसके आदर में खड़े होना) 2-क़याम इलैह (उसकी तरफ़ खड़े होना) 3-क़याम अलैह (ऊपर खड़े होना) 4-क़याम बैन यदैह (सामने खड़े होना)। शरअी आदेश के अनुसार उसकी क़िस्में बतायी हैं, और उनकी परिभाषा लिखी है। 1-क़याम नाजायज़ (अवैध) 2-क़याम मकरूह (घृणित) 3-क़याम जायज़ (वैध) 4-क़याम मुस्तहब्ब (पसन्दीदा)

वह आगे लिखते हैं कि आदर में खड़े होने की अनुमति फ़क़ीहों (न्याय विधियों) ने केवल इसी दशा में दी है जब कि जिसके लिए खड़ा हुआ जाये वह आदर योग्य हो, और विद्वान और उच्च पद पर आसीन हो (दुर्रे मुख़तार, रद्दुल मुख़्तार के साथ, 551/9) और झण्डे का आदर योग्य होना सिद्ध नहीं इसलिए कि "देव स्थान" और "ग़ैर इस्लामी" दोनों होने के कारण वह आदर योग्य नहीं, इसलिए इसके लिए खड़ा होना वैध नहीं होगा।

मौलाना राशिद हुसैन नदवी और मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी ने इम्दादुल फ़तावा और इमाम नववी के हवाले से लिखा है कि किसी मख़लूक़ (स्रष्टि) के लिए झुकना और झण्डे का आदर सम्मान शरीअत में हलाल नहीं है। (रद्दुल मुहतार 271/5, इम्दादुल फ़तावा 647/4)

कुछ लेखकों ने झण्डे को आदर योग्य ठहराया है, और दलील में मौता की लड़ाई में हज़रत जाफ़र तय्यार का झण्डे को ऊँचा रखने का प्रयास करते रहना और एक लड़ाई में मुसअ़ब बिन उमैर के शहीद हो जाने के

बाद तुरन्त ही दूसरे सहाबी का झण्डे को थाम लेना, और गिरने न देना, और इसी प्रकार ख़ैबर की लड़ाई में हुज़ूर (सल्ल०) का झण्डा देने के लिए एक दिन पहले घोषणा करना, जैसी घटनाओं को प्रस्तुत किया है, और कहा है कि इससे बात समझ में आती है कि पहले दौर में भी झण्डे को क़ौम की पहचान के रूप में देखा जाता था। (लेख- मौ० सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौ० सैयद अमीर हुसैन सैलानी)

जबकि मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही का कथन है कि झण्डे को सलामी देने का रिवाज होना और उसे झण्डे का आदर समझना शरीअत के दृष्टिकोण से उचित नहीं है, मुफ़्ती शफ़ी साहब लिखते हैं: अतः किसी विशेष दशा, ढांचा और प्रकार का निर्धारण, फिर उसकी विशेषताओं का और उसमें विशेष पवित्रता का दावा बिल्कुल अनुचित और निराधार है।

(जवाहिरुल फ़िक़्ह 145/1)

झण्डे की सलामी की वैधता के समर्थक:

कुछ उलमा ने कहा है कि झण्डे को सलामी देने में कोई बुराई नहीं, यदि झुककर और हाथ जोड़कर न दिया जाये। (मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, डा. यूसुफ़ क़ासिम, मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौ० उबैदुल्लाह अस्अदी, सैयद अमीर हुसैन जीलानी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल इत्यादि)

कुछ दूसरे उलमा यह शर्त लगाते हैं कि सलामी न देने की दशा में देश–द्रोह के आरोप का सन्देह हो और घृणित होने की स्थिति आ जाये या नौकरी आदि चले जाने का सन्देह हो, तो, दिल से न चाहते हुए इसकी गुंजाइश है और इंशाअल्लाह इसपर कोई पूछ–ताछ नहीं होगी। (मौलाना जमील

अहमद नज़ीरी, मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौ० सईदुर्रहमान फ़ारूक़ी, मौ० मुहम्मद उबैदुल्लाह, मौ० अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौ० राशिद हुसैन नदवी, मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी आदि)

इन उलमा की दलीलें निम्नलिखित हैं:

1-आवश्यकताएं वर्जित चीजों को वैध कर देती हैं। (लेख- मौलाना साबित शमीम रशादी, मौ० शम्सुद्दीन, मौ० अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौ० इरशाद क़ासमी)

2-हाजत ज़रूरत के स्थान पर उतर आती है। (लेख-मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी)

3-मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह साहब इस सम्बन्ध में लिखते हैं: झण्डे की सलामी मुस्लिम लीग भी करती है, और इस्लामी देशों में भी होती है, यह एक सैनिक कार्य है, इसमें सुधार हो सकता है परन्तु पूर्ण रूप से इसको शिर्क ठहराना उचित नहीं है। (नक़ीब पटना, 9 जुलाई 1939 ई0) (लेख मौ० अख़्तर इमाम आदिल, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना सईदुर्रहमान फ़ारूक़ी, मौ० इब्राहीम गजिया, मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौ० मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौ० राशिद हुसैन नदवी, मौ० मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ० मुहम्मद सादिक़, मौ० तन्ज़ीम आलम क़ासमी आदि)

4-फ़तावा रहीमिया (288/6) में है: यह मात्र राजनीतिक चीज है, और सरकार का एक तरीक़ा है, इस्लामी सरकार में भी होता है, बचना अच्छा है, अगर लड़ाई झगड़े का डर हो तो अनिच्छा के साथ करने में पकड़ नहीं होगी (इन्शा अल्लाह) (मौ० राशिद हुसैन नदवी, मौ० मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ० मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौ० असअद क़ासिम सम्भली, मौ० अबू बक्र क़ासमी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी)

5-कुल हिन्द मजलिसे तामीर-ए-मिल्लत हैदराबाद के एक सेमीनार में झण्डे को सलामी देने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित हुआ: "राष्ट्र ध्वज को सलामी देना, और राष्ट्र गान के दौरान खड़ा होना, इबादत व बन्दगी नहीं बल्कि देश से प्रेम और लगाव प्रकट करने का एक लक्षण समझा जाता है, इस पहलू से इसमें गुंजाइश है, परन्तु यह इस्लामी भावना से मेल नहीं खाता है। (माहनामा अर्रशाद पृ0 35, भाग40, नवम्बर 2000) (मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौ० मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौ० अबू बक्र क़ासमी)

प्रश्न- (ब) वन्दे मातरम या इस तरह के दूसरे गानों का आदेशः

इस सम्बन्ध में लगभग सभी उलमा का विचार है कि वन्दे मातरम जैसा गाना मुसलमानों के लिए पढ़ना हराम है क्योंकि इसमें देश की धरती को पूज्य का स्थान दिये जाने जैसे शिर्क पूर्ण विश्वासों का प्रदर्शन होता है अत: इससे बचना चाहिए। (लेख मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौ० वलीउल्लाह मजीदी क़ासमी, मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली, डा. यूसुफ़ क़ासिम, मौ० फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी आदि)

कुछ उलमा ने निम्नलिखित वाक्यों को अपनी दलील बनाया है:

"انه‘ من يشرک باالله فقد حرم الله عليه الجنة وماواه النار وما للظالمين من انصار"

1-जिसने अल्लाह के साथ साझी ठहराया तो अल्लाह ने उसपर जन्नत हराम कर दी है, उसका ठिकाना आग है, और अत्याचारियों का कोई मददगार नहीं है। (सूर: माइदा-72) (लेख मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन)

"قل افغير الله تأ مرونی اعبد ايهاالجاهلون "

2-कह दीजिए ऐ अज्ञानियों! क्या मुझे अल्लाह के अलावा दूसरों की पूजा का आदेश देते हो? (सूरः जुमर–64) (मौलाना अकीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन)

"ان الشرک لظلم عظیم "

3-निस्सन्देह शिर्क (अनेकश्वरवाद) महान अत्याचार है (सूरः लुक़मान-13) (मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

4-किसी मख़लूक (Greatur) का आज्ञापालन, पैदा करने वाले (अल्लाह) की अवज्ञा करके नहीं किया जा सकता। (मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना आमिर ज़फ़र, मौ० मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी)

5-इस विषय पर कुल हिन्द मजलिस तामीर मिल्लत हैदराबाद ने एक सेमीनार किया था, जिसमें उलमा और बुद्धिजीवियों ने भाग लिया, और निम्नलिखित फ़ैसला किया: इस सेमीनार का सर्वसम्मत विचार है कि वन्दे मातरम को राष्ट्रगीत मानना न केवल मुसलमानों बल्कि देश के दूसरे धार्मिक अल्पसंख्यकों पर ऐसी चीज़ थोपना है जो उनके विचार और विश्वास के विरुद्ध है मुसलमानों के लिए यह गीत पढ़ना बिल्कुल हलाल नहीं है। (लेख मौलाना इक़बाल क़ासमी, मौ० मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी)

इसके अतिरिक्त मौलाना अख़्तर इमाम आदिल का कथन है कि इस गीत में कई शब्द ऐसे अनजाने हैं जिनका अर्थ ही पता नहीं है, और ऐसे शब्द ज़बान पर लाना वैध नहीं जिसका अर्थ मालूम न हो, संभव है इसमें शिर्क और कुफ़्र के अर्थ हों। (व्याख्या मुस्लिम नववी-219/2)

मजबूरी में पढ़ने की वैधता:

जबकि कुछ उलमा ने ऐसे व्यक्ति के लिए मजबूरी की अवस्था में अनुमति दी है जिसे गीत न गाने से भारी हानि पहुँचने का संदेह हो, तो दिल से बुरा समझते हुए पढ़ने की अनुमति होगी। यह विचार मौलाना ख़ुरशीद अनवर आज़मी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, सैयद अमीर हुसैन जीलानी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, सैयद शकील अहमद अनवर, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी आदि की है।

ये उलमा निम्नलिखित आयतों और वाक्यों को तर्क में प्रस्तुत करते हैं:

"من کفر باالله من بعد ایمانه الا من اکره وقلبه مطمئن بالایمان ولکن من شرح بالکفر صدراً فعلیه غضب من الله ولهم عذاب عظیم"

1-जिसने अल्लाह पर ईमान लाने के बाद कुफ़्र किया, मगर वह जिसको मजबूर कर दिया गया और उसका दिल ईमान पर संतुष्ट है, लेकिन वह व्यक्ति जिसने अपने सीने को कुफ़्र के लिए खोल दिया तो उसपर अल्लाह का क्रोध पड़ेगा और उसके लिए बहुत बड़ी कष्ट दायक सज़ा है।

(सूर: नहल 106)

"الا ما اضطررتم"

2-सिवाय यह कि तुम मजबूर हो जाओ। (सूर: अनआम 119)

मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी का कथन है कि ऐसा गीत पढ़ने पर कुफ़्र का फ़तवा बिल्कुल नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि वन्दे मातरम का अर्थ यहाँ देश की पूजा करने के हैं तो वहीं दूसरे अर्थ भी हैं।

और डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही का विचार है कि ऐसा गीत गाने

वालों के साथ यदि चुप रहकर भाग लेता है तो उसके दीन व ईमान में कोई कमी नहीं आयेगी, इसलिए कि ईमान का अर्थ ज़बान से स्वीकार करना और दिल से सत्यापन करना है, और ये दोनों चीजें नहीं पाई जाती हैं।

लेकिन मौलाना शम्सुद्दीन साहब ने घृणा के दो प्रकार बताते हुए कहा है कि "जिसने अल्लाह पर ईमान लाने के बाद कुफ्र किया और उसका दिल ईमान पर सन्तुष्ट है। (सूर: नहल 106) जिसमें घृणा का उल्लेख है और यह घृणा मजबूरी की अवस्था में है जिसके अन्दर जान जाने का ख़तरा होता है इसलिए यहॉं अनुमति दे दी जायेगी, और वन्दे मातरम के अन्दर (सुनने में) जो घृणा है वह मजबूरी की नहीं है इसलिए यहॅा छूट देने का प्रश्न ही नहीं है।

प्रश्न- (स) अदालती फ़ैसलों की शरआी हैसियत:

कुछ लेखकों का कहना है कि लोकतांत्रिक देशों में रहने वाले मुसलमानों को यह प्रयास करना चाहिए कि सबसे पहले सरकार से अपने लिए किसी मुसलमान अमीर (नेता) नियुक्त करने की मांग करें, यदि ऐसा संभव न हो तो अपना अमीर स्वयं चुन लें और वह मुसलमानों के लिए क़ाज़ी नियुक्त कर दे, जो शरीअत के अनुसार फ़ैसले करें (मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी आदि) यह इसलिए कि काफ़िर को मुसलमानों पर शासन चलाने का साधारणत: अधिकार नहीं है, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना कासानी के हवाले से लिखते हैं:

"इस्लाम में न्याय प्रभुत्व (Savereign Power) के अध्याय में है बल्कि यह उच्चतम प्रभु (Super Power) है और इनके अन्दर छोटी-से

छोटी प्रभुत्व की भी योग्यता नहीं है, यह इस बात के लिए साक्षी है कि वह पूर्ण रूप से उच्च पद के योग्य नहीं है" (बदाइउस्सनाएअ)

कुछ उलमा यह कहते हैं कि सबसे पहले मुसलमान अपनी समस्याएं ऐसी अदालतों में न ले जायें जो ग़ैर शरअी हों बल्कि दोनों पक्ष यदि मुसलमान हैं तो अपनी समस्याएं दारुल क़ज़ा, उलमा और मुफ़्तियों के समक्ष प्रस्तुत करें। (मौलाना खुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना उबैदुल्लाह, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली, मौलाना शमसुद्दीन इत्यादि)

इन उलमा ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं:

"قل اطیعوا اللہ والرسول فان تولوا فان اللہ لا یحب الکافرین"

1-कह दीजिए कि अल्लाह और रसूल का आज्ञापालन करो तो यदि वह इससे मुंह फेरें तो अल्लाह काफ़िरों को पसन्द नहीं करता (सूर: आले इमरान: 32) (मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

"الم ترا الی الذین یز عمون انھم آمنوا بما انزل الیک وما انزل من قبلک یریدون ان یتحاکموا الی الطاغوت وقد امروا ان یکفروا بہ و یرید الشیطان ان یضلھم ضلالاً مبینا"

2-क्या आपने उन लोगों को नहीं देखा जो यह समझते हैं कि वह उस चीज़ पर ईमान लाये, जो आप पर उतारी गयी है और जो आप से पहले उतारी गयी है, लेकिन वे चाहते हैं कि अपना फ़ैसला तागूत (विद्रोहियों) से

करायें हालाँकि उन्हें तागूत से इन्कार करने का आदेश दिया गया है, और शैतान उनको स्पष्ट रूप से भटका देना चाहता है। (सूर: निसा 60)

"فلا و ربک لا یومنون حتی یحکموا ک فی ما شجر بیهم ثم لا یجدوا فی انفسهم حرجاً مما قضیت و یسلموا تسلیما"

3-नहीं ऐ मुहम्मद (सल्ल०)! तुम्हारे पालनहार की क़सम वे कभी ईमान वाले नहीं हो सकते, जब तक कि वे आपसी झगड़ों में आपको फ़ैसला करने वाला न मान लें और उससे पूर्णत: सन्तुष्ट न हो जायें।

"ومن لم یحکم بما انزل الله فاولا ئک هم الکافرون/ فاسقون/ ظالمون"

4-और जिन लोगों ने अल्लाह के उतारे हुए (क़ानून) के अनुसार फ़ैसला नहीं किया वही लोग काफिर हैं/पापी हैं/अत्याचारी हैं।

(सूर: माइदा 45-66)

"یا ایھا الذین آمنوا اطیعوا الله واطیعوا الرسول واولی الامر منکم فان تنازعتم فی شیی فردوہ الی الله والرسول ان کنتم تومنون بالله والیوم الآخر"

5-ऐ ईमान वालों अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की पैरवी करो और उसकी भी पैरवी करो, जिसे तुममें से अमीर (शासक) बना दिया गया हो, यदि तुम्हारे बीच विवाद हो तो अल्लाह और उसके रसूल की तरफ लौटा दो, यदि तुम अल्लाह और आख़िरत (मरने के बाद उठाए जाने पर) पर विश्वास रखते हो। (सूर: निसा 59)

"وما آتاکم الرسول فخذوہ وما نھاکم عنه فانتھوا"

6-और रसूल (सल्ल०) जो आदेश दें उसका पालन करो, और जिससे रोक दें उससे रुक जाओ। (सूर: हश्र-7)

"لا یتخذو المؤمنون الکافرون اولیاء من دون المؤمنین ومن یفعل ذلک

فليس من الله فی شیی الا ان تتقوا منهم تقاة"

7-ईमान वाले, ईमान वालों को छोड़कर काफ़िरों को मित्र न बनायें, जो ऐसा करेगा तो अल्लाह से उसका किसी चीज़ में सम्बन्ध नहीं रहेगा हाँ इसकी छूट है कि तुम उनके डर से ऐसा तरीक़ा अपनाओ। (सूर:आले इमरान -28)

"افحکم الجاهلية يبغون ومن احسن من الله حكما لقومٍ يوقنون"

8-तो क्या वह अज्ञानता के फ़ैसले चाहते हैं हालाँकि जो लोग अल्लाह पर विश्वास रखते हैं उनके लिए अल्लाह के फ़ैसले से बेहतर कोई फ़ैसला नहीं। (सूर: माइदा-50)

"ومن يشاقق الرسول من بعد ما تبين له الهدى ويتبع غير سبيل المومنون نوله ما تولى ونصله جهنم و ساء ت مصيرا"

9-जो व्यक्ति रसूल का विरोध करेगा जबकि उसके सामने हिदायत स्पष्ट हो और मोमिनों का रास्ता छोड़कर दूसरों का रास्ता अपनायेगा और हम उसी तरफ़ मोड़ देंगे जहां वह मुड़ेगा और हम उसको नरक में डाल देंगे जो बदतरीन ठिकाना है। (सूर: निसा- 115)

10-अल्लामां इब्ने क़य्यिम जौज़ी लिखते हैं कि जिसने अपना फ़ैसला अल्लाह के आदेश से हटकर कराया तो उसने तागूत से फ़ैसला कराया, तो हर क़ौम के तागूत वे हैं जो अल्लाह और उसके रसूल के फ़ैसले के विरुद्ध करते हैं और अल्लाह को छोड़कर दूसरों की इबादत करते हैं या दीन की तत्वदर्शिता के बिना दीन पर अमल करते हैं या उस चीज़ की पैरवी करते हैं जिसे वे नहीं जानते कि यह अल्लाह की आज्ञापालन है, यही दुनिया के तागूत हैं, जब आप इसको सोचेंगे और लोगों की दशाओं पर विचार करेंगे तो अधिकतर लोगों को ऐसा पायेंगे कि वे अल्लाह के आज्ञापालन से हटकर

तागूत का आज्ञापालन करते हैं, और अल्लाह के फ़ैसलों को छोड़कर तागूत के फैसलों पर राज़ी होते हैं, और अल्लाह और उसके रसूल के आज्ञापालन को छोड़कर तागूत का आज्ञापालन करते हैं (आलामुल मौक़ेईन अन रब्बिल आलमीन 50/1) (मौलाना नियाज़ अहमद मदनी)

इन तमाम चेतावनियों के बावजूद यदि कोई पक्ष ग़ैर मुस्लिम न्यायालय या न्यायाधीश के पास अपना मामला ले जाता है और वह शरीअत के विरुद्ध फ़ैसला करता है तो वह स्वीकार्य नहीं होगा, यहां तक कि यदि मुस्लिम क़ाज़ी (न्यायाधीश) भी शरीअत के विरुद्ध फ़ैसला करेगा तो उसका फ़ैसला भी प्रत्यक्षतः लागू होगा, लेकिन आत्मिक और दीनी तौर पर लागू नहीं होगा। (मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी)

दीनी तौर पर लागू होने का अर्थ है कि जिसके विरुद्ध फ़ैसला हुआ है वह तो मजबूर है, लेकिन जिसके पक्ष में फ़ैसला हुआ है उस पक्ष के लिए इससे लाभान्वित होना उचित नहीं होगा, यही विचार अधिक तर लेखकों का है। (मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना शमसुद्दीन, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मौलाना डा. ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौ० ख़ुरशीद अहमद आज़मी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी इत्यादि)।

इन उलमा के तर्क निम्न लिखित हैं:

1-मैं भी एक इन्सान हूँ और तुम लोग अपने झगड़े मेरे पास फ़ैसले के लिए लाते हो, और तुममें से किसी एक की दलील शायद दूसरे से अधिक मज़बूत हो और मैं फ़ैसला उसी आधार पर करूँगा, जैसा मैं सुनूँगा तो मैनें यदि अनजाने में किसी हक़दार का हक़ दूसरे को दे दिया तो वह उसे न ले, इसलिए कि वह नरक के टुकड़ों में से सबसे बुरा टुकड़ा होगा।

(मुत्तफ़िक़ अलैह)

2-किसी स्रष्टि (Greation) का आज्ञापालन स्रष्टा (Greatr) की आज्ञा का उल्लंघन करके नहीं।

3-मुसलमान के लिए उसी की आज्ञा का पालन अनिवार्य है जिसमें अल्लाह की आज्ञा का उल्लंघन न हो चाहे इसका पालन ख़ुशी से करे या ना ख़ुशी से करे, और यदि अल्लाह की आज्ञा का उल्लंघन का आदेश हो तो उसे न तो सुना जाये और न आज्ञापालन किया जाये। (बुख़ारी1059/2, अध्याय समअ वत्ताअत मालम तकुन मआसिय:)

4-यदि किसी फ़ैसले में ग़लती से उसके भाई का अधिकार उसको मिल गया तो उसे न ले, इसलिए कि न्यायाधीश का फ़ैसला हराम को हलाल नहीं कर सकता और हलाल को हराम नहीं कर सकता।

(बुख़ारी 1064/2)

लेकिन ख़ुरशीद अहमद आज़मी का कथन है, कि कुछ मामलों में खुले और छिपे तौर पर और कुछ में मात्र खुले तौर पर लागू होगा, और मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी ने मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी का यह विचार लिखा है कि यदि शासक ने ऐसे साक्ष्य पर भरोसा किया जो शरीअत में भरोसे योग्य नहीं तो दीनी तौर पर वह लागू नहीं होगा, जिन

फ़ैसलों का आधार ऐसे साक्ष्य पर हो जो शरीअत की दृष्टि में पर्याप्त हों तो ऐसे मामले दो प्रकार के होते हैं, एक वह जिनमें मात्र शरअी कारण का पाया जाना पर्याप्त है, क़ाज़ी का आदेश अनिवार्य नहीं है, ऐसे मामलों में तो ग़ैर मुस्लिम अधिकारी भी फ़ैसला कर सकता है लेकिन जिन मामलों में शरअी कारण का पाया जाना पर्याप्त नहीं, बल्कि क़ाज़ी का आदेश भी अनिवार्य है, इनमें ग़ैर मुस्लिम न्यायाधीश का फ़ैसला भरोसे योग्य नहीं होगा। (बहस-व-नज़र पृ0 45 अंक 51) यही विचार मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी और मौलाना असरारुल हक़ सबीली का भी है।

मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी ने पहले मामले का उदाहरण यह दिया है कि: विरासत देने वाले की मौत के बाद पैतृक धन पाने वाले को पैतृक धन का अधिकार और क्रय विक्रय के कारण बेची हुई वस्तु पर ख़रीदार (विक्रेता) का स्वामित्व आदि। और दूसरे मामले के उदाहरण में निकाह के निरस्त होने का मामला है, इसमें केवल निरस्तीकरण का कारण होना पर्याप्त नहीं बल्कि न्यायधीश का फ़ैसला भी अनिवार्य है, जबकि मौलाना अख़्तर इमाम आदिल समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि ऐसी समस्यायें जिनमें स्वामित्व का कारण स्पष्ट न हो, कि किस माध्यम से दावेदार को स्वामित्व प्राप्त हुआ है, उन मामलों में अदालत वास्तविकता के विरुद्ध फ़ैसला कर दे तो फ़ैसला से वह जिसमें स्वामित्व के कारण को स्पष्ट किया गया हो, तो ऐसे मामलों में अदालत का फ़ैसला लागू होगा।

जिसके पक्ष में फ़ैसला हुआ हो उससे लाभान्वित होने की वैधता:

अगर फ़ैसला शरअी गवाही के अनुसार हुआ हो और न्यायधीश का

मुस्लिम होना शर्त न हो, तो इस फ़ैसले से लाभान्वित होने की गुंजाइश है, जैसे विरासत का मामला। (मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी)।

और लगभग यही विचार मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना अमीर हुसैन जीलानी, और डा. मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी का है, कि वह फ़ैसला शरीअत से टकराने वाला न हो और शरीअत के अनुसार उसका लागू करना वैध हो।

मौलाना राशिद हुसैन नदवी लिखते हैं कि न्यायधीश का फ़ैसला यदि क़ुरआन व सुन्नत के आदेश के विरुद्ध है तो उस फ़ैसले से लाभान्वित होना वैध नहीं और यदि आदेश क़ुरआन व सुन्नत के विरुद्ध न हो लेकिन फ़ैसला जिन आधारों पर किया गया उनके विरुद्ध हो तब भी उचित यही है कि उससे लाभान्वित न हुआ जाये, लेकिन इस दशा में लाभान्वित होने की गुन्जाइश मौलाना राशिद हुसैन नदवी के अनुसार हो सकती है, जैसे कि फ़तावा हिन्दीया (312/3) के इस वाक्य से ज्ञात होता है: "फिर जब उसने अपने इज्तिहाद से फ़ैसला किया है तो उसका फ़ैसला वैध नहीं है लेकिन यदि उसने क़ुरआन व सुन्नत के विरुद्ध नहीं किया और उसके सामने कोई दूसरी राय आ गई तो जो गुज़र गया वह निरस्त नहीं होगा और जो उसके सामने बाद में मामला आये उसपर नये सिरे से विचार करे"।

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल कहते हैं कि न्यायधीश के फ़ैसले को लागू करने के मामले में पुराने ज़माने से फ़ुक़्हा के बीच मतभेद रहा है, हज़रत इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई, और इमाम अहमद इब्ने हम्बल के अनुसार किसी मामले में अदालती फ़ैसला वास्तविकता के विरुद्ध है, और दोनों पक्षों को मालूम है, तो यह फ़ैसला प्रत्यक्ष रूप से लागू होगा परन्तु

वास्तव में उससे लाभान्वित होना वैध नहीं होगा, लेकिन हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा के सिद्धान्त पर ऐसे मामले जिनको वजूद में लाने का क़ाज़ी को अधिकार है उनमें अदालती फ़ैसले से लाभ उठाना जायज़ है, और जो मामले क़ाज़ी के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं उनमें अदालती फ़ैसले से लाभ उठाना आयज़ नहीं, अल्लामां कासानी लिखते हैं:

यदि क़ाज़ी का फ़ैसला झूठी गवाही के आधार पर ऐसे मामले में हो जिसे वजूद में लाने का उसे अधिकार हो तो उससे फ़ायदा उठाना वैध होगा और अगर वजूद में लाने का क़ाज़ी को अधिकार नहीं,तो लाभ उठाना जायज़ नहीं, और यही राय इमाम यूसुफ़, इमाम मुहम्मद और इमाम शाफ़ई की भी है । इमाम अबू हनीफ़ा के विचार का आधार दो निम्नलिखित रिवायतें हैं

1-"तुम लोग अपना विवाद मेरे सामने प्रस्तुत करते हो और उनमें से एक दलील अधिक प्रबल है, और मैं इन्सान हूँ तो जिसके लिए मैं उसके भाई के माल में से ऐसा फ़ैसला कर दूँ जिसका वह अधिकारी नहीं तो वह आग का एक सबसे बुरा टुकड़ा होगा" (बुख़ारी, किताबुल मज़ालिम पृ0 2458)।

2-दूसरी रिवायत हज़रत अली (रजि0) से है कहा गया है कि यूसुफ़ ने अम्र बिन इब्ने मिक्दाम से रिवायत की है, वह अपने पिता से रिवायत करते हैं कि एक आदमी ने एक औरत को सन्देश भेजा (विवाह का) जो उसकी नस्ल से नहीं थी तो उसने विवाह से इन्कार कर दिया, तो उस आदमी ने दावा किया कि उससे उसका निकाह हो चुका है और दो गवाह हाज़िर किए तो औरत ने इन्कार किया तो मर्द ने कहा कि तुम से निकाह तो गवाहों के सामने हुआ है तो उसपर निकाह लागू हो गया।

(अहकामुल कुरआन जस्सास, 253/1)

इन दोनों रिवायतों को देखते हुए इमाम साहब ने उपरोक्त दृष्टिकोण

अपनाया है, हज़रत अली (रज़ि0) की हदीस निकाह व तलाक़ और तलाक़ की ऐसी समस्या से सम्बन्धित किया है कि जिनमें स्वामित्व का कारण स्पष्ट रूप में मौजूद हो और हुज़ूर सल्ल0 के उपरोक्त आदेश को साधारण मामलों से सम्बन्धित ठहराया है, इस तरह दोनों रिवायतों में समन्वय स्थापित हो जाता है।

मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी की राय है कि जिसके पक्ष में फ़ैसला हुआ है उसके लिए हनफ़ी उलमा के दृष्टिकोण के अन्तर्गत गुंजाइश हो सकती है कि क़ाज़ी का फ़ैसला प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लागू है।

प्रश्न- (अ) सभ्यता और सांस्कृतिक विलय और धार्मिक एकता की धारणाः

सभी लेखक इस बात पर सहमत हैं कि धार्मिक एकता का विचार क़ुरआन व सुन्नत के अनुसार एक ग़लत और अमली तौर पर लाभदायक नहीं है, बल्कि इस्लाम और कुफ़्र को एक करना, और इस्लाम की पहचान को मिटाने का षड्यन्त्र है, उदाहरण स्वरूप। (देखिये लेख-मौलाना अमीर हुसैन गीलानी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना मुहम्मद सुलेमान साहब, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना खुरशीद अहमद आज़मी इत्यादि।

प्रश्न- (ब) मानवीय आधार पर पीड़ित वर्ग की सहायताः

इस प्रश्न के उत्तर में लगभग सभी लेखकों ने यह विचार स्पष्ट किया है कि मुसलमानों को हर सम्भव मानवीय आधार पर पिछड़े वर्ग के ग़ैर मुस्लिम भाईयों की सहायता करनी चाहिए, अधिकतर लेखकों के अनुसार

पीड़ित ग़ैर मुस्लिम का सहयोग मुसलमानों का नैतिक मानवीय और धार्मिक कर्त्तव्य है, और मुसलमान इस सिलसिले में अल्लाह के यहाॅं उत्तर दायी हैं चाहे वह सत्ता में हों या न हों उनको सहयोग के माध्यम से इस्लाम की तरफ बुलाने की आवश्यकता है। (देखिए लेख: मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना उबैदुल्लाह असअदी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना याक़ूब क़ासमी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, सैयद शकील अहमद अनवर इत्यादि)

मौलाना उबैदुल्लाह साहब ने यह विचार व्यक्त किया है कि ग़ैर मुस्लिमों को इस्लाम से निकट लाने के लिए सद्क़ा-ए-नाफ़िला (दान) से उनकी सहायता करनी चाहिए।

सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी लिखते हैं कि ग़रीबों और पीड़ित ग़ैर मुस्लिम वर्गों की सहायता करना उसी समय लाभदायक होगा, जब वह स्वयं अपने अन्दर जागरुकता पैदा करने और अपने आपको बहुसंख्यकों के धोखे से बचाने में सफल हों। क्योंकि यदि मात्र मुसलमान उन की सहायता करेंगे तो उसे हिन्दू बहुसंख्यकों को मुसलमानों के विरुद्ध झगड़ा फ़ैलाने का अवसर मिलेगा और इस तरह से बहुसंख्यक पीड़ित वर्ग को मुसलमानों के विरुद्ध भड़काने और प्रयोग करने में सफल हो जायेंगे। और मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी के कथन के अनुसार जिहाद की अनिवार्यता पीड़ित व बे सहारा इन्सानों की सुरक्षा के लिए ही होती है।

प्रश्न- (स) जन सेवा के लिए संस्थाएं स्थापित करना:

अधिकतर लेखकों का विचार यह है कि मुसलमानों की तरफ़ से चलाई जाने वाली जन सेवा संस्थाओं को मुसलमानों के लिए विशेष करना मोमिनों की शान के विरुद्ध है। उचित यही है कि ऐसी संस्थाओं को सेवा के लिए बिना किसी जाति धर्म के भेद-भाव के सभी लोगों के लिए दरवाज़े खुला रखना चाहिए, यह और बात है कि साधारण लोगों से मुसलमानों का सम्बन्ध केवल मानवीय आधार पर बनता है, जब कि मुसलमानों का आपसी मानव सम्बन्धों के साथ-साथ इस्लामी भाईचारे पर भी आधारित होता है, इसलिए मुसलमानों को वरीयता देने में कोई बुराई नहीं है, विशेष रूप से जब मुसलमानों को अधिक आवश्यकता हो, लेकिन भेद भाव प्रत्येक स्थिति में उचित नहीं है। (देखिये- लेख मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना सैय्यद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना सैयद असरारुल हक़ सबीली इत्यादि)

मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, सैयद खुरशीद अहमद रिज़वी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी ने यह विचार व्यक्त किया है कि यदि इन संस्थाओं के संसाधन सीमित हों तो उनको मुसलमानों के लिए विशेष करना बेहतर है और इसी में भलाई है। क्योंकि मुसलमान पहले ही से भेद-भाव और पक्षपात के शिकार हैं, अब ऐसी दशा में उनमें अपनी विशेष संस्थाओं की सेवायें साधारण जनता के लिए खोल दी गईं, तो इनको और अधिक पिछड़ा हो जाने का सन्देह है, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही ने ऐसी संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया है,

जिनमें मिल्ली पहचान के बजाये मानवीय पहचान हो, और मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही के अनुसार इस प्रकार की संस्थाओं के नाम ऐसे रखना चाहिए जो धर्म निरपेक्ष हों और ऐसा करना लाभदायक होगा जैसे बक़रा, रूम, अन्कबूत आदि। मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम, मौलाना मुहम्मद सलमान खली और मौलाना क़मरुज़्ज़मा नदवी, इस्लाम के कट्टर दुश्मनों और विरोधियों को मुस्लिम संस्थाओं द्वारा सहायता का अधिकारी नहीं मानते हैं, लेखकों की दलीलें निम्नलिखित हैं:

"ليس عليكم هداهم ولكن الله يهدى من يشاء ' وما تنفقوا من خير فلا نفسكم وما تنفقون الا ابتغاء وجه الله وما تنفقوا من خير يوف اليكم وانتم لا تظلمون"

आप पर उनकी हिदायत की जिम्मेदारी नहीं है लेकिन, अल्लाह जिसे चाहता है हिदायत देता है, और जो तुम भलाई समझकर खर्च करोगे और जो कुछ तुम ख़र्च करोगे अल्लाह की खुशी के लिए ख़र्च करोगे और जो तुम नेकी समझकर करोगे तो तुमको पूरा-पूरा बदला दिया जायेगा और तुम्हारे साथ अन्याय नहीं होगा। (सूर: बकर: 272)

इब्ने जरीर की तफ़्सीर 587/5 में हज़रत अब्बास का यह कथन है कि आप (सल्ल०) और सहाबा शिर्क करने वालों पर ख़र्च नहीं करते थे तो यह आयत उतरी। (मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

इस आयत की तफ़्सीर (टीका) में मौलाना अबू बक्र जस्सास राज़ी का कथन है: इसका तात्पर्य उनपर सदक़ा का वैध होना है, यद्यपि वह इस्लाम पर न हों, और सल्फ़ (बुज़ुर्गों) की एक जमाअत की भी यही रिवायत है (मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी) क़ुर्तबी ने आयत "**وما تنفقوامن**

"خیــر" के सम्बन्ध में लिखा है कि आयत का यह टुकड़ा सदक़ात (दान) से सम्बन्धित है मानो इसमें शिर्क वालों पर सद्क़े की वैधता का बयान है।

(मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम क़ासमी)

"و یطیـمـون الطعام علی حبه مسکینا و یتیماً و اسیراً انما نطعمکم لوجه الله لا نرید منکم جزاء ولا شکورا" (سورہ دھر ۹/۸)

2-वे अल्लाह की मुहब्बत में खाना खिलाते हैं ग़रीबों को अनाथों को और क़ैदी को (और कहते हैं) हम तुमको अल्लाह की ख़ुशी के लिए खिलाते हैं, हम तुमसे कोई बदला और शुक्रिया नहीं चाहते। (सूर: दहर-8'9)

इस आयत की टीका में अल्लामां जस्सास का यह कथन है कि लड़ाई के क़ैदियों से तात्पर्य ग़ैर मुस्लिम और अनेकश्वरवाद करने वाले हैं अत: इस आयत से सिद्ध हुआ कि ज़कात के अतिरिक्त हर तरह की रक़म उन्हें दी जा सकती है। (अहकामुल क़ुरआन 548/1)

मौलाना सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने इन संस्थाओं की सेवाओं को साधारण जनता के लिए खोलने पर यह शर्त लगाई है कि इससे टकराव का सन्देह न हो। मौलाना सियालवी ने "ویـمـنعون الماعون"' की रोशनी में जन सेवा में धर्म और विश्वास के आधार पर भेद बरतने को कपटाचारियों (मुनाफ़िक़ों) की आदत बताई है।

मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने जनसेवा के लिए स्थापित मुसलमानों की संस्थाओं को सभी धर्म वालों के लिए खुला रखने के सिलसिले में दो बातों का ध्यान रखने पर बल दिया है, एक यह कि ग़ैर मुस्लिमों को ज़कात की रक़म न दी जाये। (हिदाया 205/1) दूसरे यह कि ज़कात के मामले में विशेष रूप से मुसलमानों से ली गई सहयोग राशि में सहयोग देने वालों की

विचारधारा को ध्यान में रखा जाये (शामी 395/3) इसी विचार को मौलाना उबैदुल्लाह, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना इरशाद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली ने भी प्रकट किया है, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली ने "उनके अमीरों से लिया जाये और उनके ग़रीबों में बांट दिया जाये" को तर्क बनाया है।

"واعبدواالله ولا تشركوا به شيئاً وبالوالدين احساناً وبذى القرباء واليتامى والمساكين والجارذى القرباء والجارالجنب والصاحب بالجنب وابن السبيل"

3-अल्लाह की इबादत करो, और उसके साथ किसी को भागीदार न बनाओ, माता पिता के साथ, रिश्तेदारों के साथ, अनाथों के साथ, ग़रीबों के साथ पड़ौसियों के साथ, अजनबी पड़ौसियों के साथ और जिससे किसी अवसर पर साथ हो जाये, और मुसाफ़िरों के साथ अच्छा व्यवहार करो। (सूर: निसा-36) (लेख मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

मौलाना ज़फ़रुल इस्लाम साहब ने "الجارالجنب" की तफ़सीर (टीका) में यह वाक्य नक़ल किया है: पड़ौसी से तात्पर्य जिसे उसकी तरफ़ प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया हो चाहे वह मुस्लिम हो या ग़ैर मुस्लिम (अल जामेअ लिल-अहकामुल क़ुरआन 184/5) इसके बाद इब्ने जरीर की तफ़सीर (51/5) में यह वाक्य नक़ल किया है: दोनों बातों में बेहतर यह है कि जुन्ब का अर्थ यहाँ क़रीबी या दूर का मुस्लिम, ग़ैर मुस्लिम, यहूदी और ईसाई कोई भी हो सकता है।

"لا ينهى كم الله عن الذين لم يقاتلوكم فى الدين ولم يخرجواكم من

دیارکم عن تبروهم و تقسطوا الیهم ان الله یحب المقسطین"

4-अल्लाह तुम्हें उन लोगों के साथ नेकी करने और न्याय करने से नहीं रोकता है जिन्होंने तुमसे दीन के मामले में लड़ाई नहीं की और तुमको तुम्हारे घरों से नहीं निकाला, बेशक अल्लाह न्याय करने वालों को पसन्द करता है। (सूरः मुम्तहिना-8)

"تعاونوا علی البر والتقوی"

5-नेकी और अल्लाह से डर के मामले में सहयोग करो। (सूरःमाइदा 2)

6-अच्छा वह है जो लोगों को लाभ पहुँचाये।(अल-जामेउस्सग़ीर लिस्सुयूती 9/2)

7-अल्लाह उस समय तक उस बन्दे की सहायता करता है जब तक बन्दा अपने भाई की सहायता करता है।

8-मैं उच्च नैतिकता को पूर्ण करने के लिए भेजा गया हूँ।

9-जो अपने भाई की आवश्यकता पूरी करता है अल्लाह उसकी अवश्यकता पूरी करता है।

10-मौलाना आमिर ज़फ़र और मौलाना अरशद मदनी ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की ओर से हज़रत अस्मा बिन्ते अबू बक्र को अपनी काफ़िर माँ के साथ अच्छा व्यवहार करने की अनुमति दिये जाने को तर्क बनाया है। मौलाना आमिर ज़फ़र ने इस घटना को इमाम नववी के हवाले से नक़ल किया है।

11-भूखे को खाना खिलाओ, बीमार को देखने जाओ और दूरी मिटाओ। (बुख़ारी 843/2)

12-मख़लूक (स्रष्टि) अल्लाह का परिवार है।

13-हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत है कि आपने फ़रमाया

रिश्तों को जोड़ने वाला वह नहीं है जो चाहने वालों से अपना समबन्ध जोड़ता है बल्कि जोड़ने वाला उसको कहा जायेगा जो जब रिश्ता टूट जाये तो उसे जोड़ दे। (तिर्मिज़ी 13-2)

14-हजरत उसमान ग़नी (रज़ि०) के ख़रीदे हुए कूएं से रसूलुल्लाह सल्ल0 ने मदीने वालों को पानी लेने की अनुमति दी, उस समय मदीने में केवल मुसलमान ही आबाद नहीं थे बल्कि यहूदी और ईसाई भी रह रहे थे और सब उसमान के कुएं से पानी पीते थे।

मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी ने इन्सानों से सम्बन्ध की तीन क़िस्में बताई हैं: एक सहयोग, दूसरी मदारात, तीसरी मवासात (इनका हिन्दी अर्थ आगे आ रहा है)। इनके कथनानुसार दिल से दोस्ती मवालात है, यह मना है। मुफ़्ती रफ़ी उसमानी और मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी ने भी इस प्रकार के सम्बन्ध बनाने को मना किया है। मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उस्मानी ने "لا يتخذ.....الخ" को तर्क बनाते हुए इस सम्बन्ध में टीकाकार अबू सऊद का हवाला दिया है। (तफ़्सीर इब्ने सऊद 226/1)

मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी के कथनानुसार ग़ैर मुस्लिम यदि किसी के घर आ जाये तो उसका आतिथ्य सत्कार करना, और मवासात अर्थात दुख दर्द में भाग लेना वैध है।

मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली और मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी ने ग़ैर मुस्लिमों की सहायता करने के सम्बन्ध में "क़रीबी लोग क़रीबी हैं और ज़रूरत मन्द ज़रूरत मन्द ही हैं" के उसूलों का ज़िक्र किया है ।

प्रश्न- (द) प्राकृतिक आपदाओं में मुस्लिम संगठनों का रवैयाः

अधिकतर लेखकों के अनुसार ऐसी परिस्थितियों में मुस्लिम संगठनों

को अच्छे व्यवहार और अच्छी नैतिकता का प्रदर्शन करना चाहिए और इनका रवैया, देश के ग़ैर मुस्लिम भाईयों के साथ सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए, उनके साम्प्रदायिक तत्वों की संकुचित सोच का उत्तर हमें संकुचित सोच से नहीं देना चाहिए, बल्कि हमें इस सिलसिले में नबी (सल्ल०) और नबी के महान साथी सहाबा के आदर्शों को अपनाना चाहिए (देखिये: लेख-मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना क़मरुज़्ज़ामां नदवी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, सैयद शकील अहमद अनवर इत्यादि।

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी के अनुसार साम्प्रदायिक तत्वों की ओर से किये गये भेद-भाव की स्थिति में मुसलमानों से प्राप्त की हुई रक़म उन ग़रीब मुसलमानों ही पर खर्च करना अनिवार्य है जिनको अन्यायपूर्ण ढंग से वंचित रखा गया हो मौलाना ने निम्न लिखित हदीस को तर्क बनाया है:

तमाम मुसलमान एक शरीर की तरह हैं यदि उसकी आँख में कष्ट हो तो पूरा शरीर कष्ट महसूस करता है और यदि सिर में कष्ट हो तो पूरा शरीर कष्ट महसूस करता है। (मुस्लिम मिश्कात 422/2)

डाक्टर अब्दुल अज़ीम इस्लाही ने यह विचार प्रकट किया है कि आपात स्थिति में मुसलमानों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। लेखकों ने निम्नलिखित तर्क दिये हैं:

1-जिसने किसी परेशान हाल की सहायता की तो अल्लाह संसार और परलोक में उसकी सहायता करेगा। (मिश्कात)

2-अहवस अपने बाप से रिवायत करते हैं, उन्होंने कहा कि मैने

कहा: ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मैं अमुक व्यक्ति के पास से गुज़रता हूँ तो वह मुझसे निकट नहीं आता और न मेरा आतिथ्य सत्कार करता है, तो जब वह मेरे पास से गुज़रता है तो क्या मैं भी उसके साथ ऐसा ही करूँ? आपने फरमाया नहीं उसका आदर करो। (तिर्मिजी 21/2)

3-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) से रिवायत है, उन्होंने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया स्वार्थी न बनो, जैसा कि लोग कहते हैं कि वे लोग बहुत अच्छे हैं, यदि उनके साथ अत्याचार होता है तो अत्याचार करते हैं, लेकिन यह बात अपने मन में बैठा लो अधिक अच्छा वह है जो नेकी करे, और यदि उसके साथ बुराई की जाये तो बदले में अत्याचार न करे।

(तिर्मिजी 21/2)

4-इस्लाम शासन करता है शासित नहीं होता।

" فاذالذی بینک و بینه عداوة کأنه ولی حمیم"

5-तो वह व्यक्ति कि आपके और उसके बीच शत्रुता है तो ऐसा लगता है कि वह निकट मित्र है। (सूरह: हा मीम-सज्दा-34)

6-मक्का विजय के अवसर पर उन लोगों के साथ रसूलुल्लाह (सल्ल०) के अच्छे व्यवहार का सबसे अच्छा उदाहरण है।

7-बलाज़री के अनुसार हज़रत उमर (रज़ि0) ने शाम की यात्रा में ज़कात की राशि से ग़रीब और जरूरत मंद ईसाईयों की सहायता करने का आदेश दिया।

8-अबू उबैदा की किताब किताबुल अमवाल धारा 196-197 के अनुसार सदक़तुल फ़ित्र भी ईसाई राहिबों को दिया जाता था। (खुत्बात-ए-भावलपुर 380/ डा0 हमीदुल्लाह)

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में रहने वाले मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याएं

मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी

प्रश्न संख्या- (अ,ब,स,द,इ):

ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की समस्याओं के पहले प्रश्न की भूमिका इस तरह है:

(अ) इस समय विश्व के अधिकतर देश प्रजातान्त्रिक देश हैं, जिनमें चुनाव के माध्यम से सरकारें बनती हैं, इन चुनावों में तमाम वयस्क महिलाओं और पुरुषों को वोट देने का अधिकार होता है। जो लोग चुनाव लड़ते हैं उन्हें अपने आपको प्रत्याशी के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। फिर जब आम चुनाव के माध्यम से असेम्बली और पार्लियामेंट (संसद) बनती हैं तो संसद के सभी सदस्यों को संविधान से वफादारी की शपथ लेनी होती है, और स्पष्ट है कि संसद बहुत से ऐसे नियम बनाती हैं जो इस्लामी शरीअत के प्रतिकूल होते हैं बल्कि उनसे टकराते हैं।

धारा (अ)

इस भूमिका के बाद प्रश्न को (अ,ब) इत्यादि के अन्तर्गत कई भागों में बॉटा गया है उत्तर पर आधारित प्राप्त लेखों की संख्या पचास है, लेखकों के नाम निम्न लिखित हैं:

मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाजी फ़लाही, मौ० ज़फ़र आलम नदवी, मौ० बुरहानुद्दीन सम्भली, मौ० असअद क़ासिम सम्भली, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौ० अबुल आस वहीदी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौ० क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौ० नईम अख़्तर क़ासमी, मौ० आमिर ज़फ़र, मौ० ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौ० अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौ० मुहम्मद सादिक़ मुबारकपूरी, डा0 अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना मुहम्मद इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी, मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली, सैयद शकील अहमद अनवर, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौ० मुहम्मद शमसुद्दीन, मौलाना मु० उबैदुल्लाह (लाहौर), मौलाना क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल (पाकिस्तान), मौ० सैयद मु० ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी (पाकिस्तान), मौलाना मुहम्मद रफ़ी उस्मानी (पाकिस्तान), मौलाना सैयद अमीर हसन गीलानी (पाकिस्तान), मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी (पाकिस्तान), मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी जौनपूरी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, डा0 सैयद क़ुदरतुल्लाह बाक़वी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौ० मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, एम.ए. अब्दुल क़ादिर मसलियार, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना तंज़ीम आज़म क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम

आदिल, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी।

पहले प्रश्न के भाग 'अ' में पूछा गया था कि क्या इन देशों में मुसलमानों का चुनाव में भाग लेना, चुनाव में प्रत्याशी बनना, मतदान करना, किसी प्रत्याशी के लिए अभियान चलाना शरीअत के अनुसार वैध होगा?

लेखकों की बड़ी संख्या ने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को ग़ैर शरअी मानने के बावजूद, फ़िक्ह के नियम (न्यायशास्त्र) "बड़ी हानि की क्षति पूर्ति छोटी हानि से की जाती है, दोनों में जिसमें हानि कम हो उसको अपनाया जाता है, 'आवश्यकताएं' मना की हुई चीज़ों को वैध कर देती हैं" इत्यादि के अन्तर्गत ग़ैर मुस्लिमों की धार्मिक या तानाशाही सरकार की तुलना में इसे अहवनुल बलीय्यतैन (छोटी बुराई) मानकर उपरोक्त समस्त प्रक्रियाओं में भाग लेने की अनुमति दी। कई लेखकों ने इस सहभागिता को कुछ शर्तों के साथ वैध ठहराया है, कुछ ने संक्षेप से काम लिया है। मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, का कथन है कि वर्तमान प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में इस नीयत से भाग लें कि यह समय की अवश्यकता है। इसी पर सन्तुष्ट हो जाने की मानसिकता न हो, शरीअत के अनुसार शासन व्यवस्था, विधान निर्माण के लिए प्रयास, अथवा कम से कम नीयत अवश्य होनी चाहिए।

कुछ लेखकों ने इसमें भाग लेने के सिलसिले में विशेष दलीलें प्रस्तुत की हैं, जैसे मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली लिखते हैं; अधिकतर क़ानून साधारण रूप से इस्लाम के विरुद्ध बनते हों या बनने की अधिक सम्भावना हो, तो अवैध है।

इन पंक्तियों के लेखक ने लिखा है: मौजूदा चुनाव प्रणाली में ग़ैर

शरअी क़ानून के संशोधन और निरस्तीकरण के प्रयास की नीयत रखते हुए भाग लिया जाये, चाहे उसपर अमल की बारी आये अथवा न आये।

इस सिलसिले में हज़रत थानवी के निम्नलिखित वाक्यों को तर्क बनाया गया है जो उन्होंने कम्पनी में शेयर और ब्याज के सम्बन्ध में लिखा है:

"और जिनको इसकी जानकारी हो वह साफ़-साफ़ इसे अवैध ठहरा दें, यद्यपि इस मनाही पर अमल नहीं होगा परन्तु इस इन्कार से उस अमल से उनका सम्बन्ध तो नहीं रहेगा? (इम्दादुल फ़तावा 491/3)

मौलाना अबू बक्र क़ासमी लिखते हैं: फिर भी इस प्रकार की सरकार में सहयोग इस नीयत और इच्छा से हो, कि हम शरीअत के विरुद्ध क़ानूनों की स्वीकृति और प्रस्ताव से इन्कार करेंगे और दिल से उससे घृणा करेंगे।

मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी लिखते हैं कि राष्ट्रीय विधानों में संविधान के साथ वफ़ादारी का जहाँ तक सम्बन्ध है तो शरीअत के विरुद्ध कुछ ही क़ानून होते हैं और यह वैधता मौलिक उद्देश्यों और हितों पर आधारित है।

संविधान से वफ़ादारी से सम्बन्धित कुछ विचार निम्नलिखित हैं:

संसद के सदस्य देश के संविधान से वफ़ादारी की शपथ लेते हैं, न कि क़ानून से वफ़ादारी की, क्योंकि क़ानून की पकड़ से कोई नहीं बच सकता। चाहे वह संसद का सदस्य हो या साधारण नागरिक, तो यदि देश का संविधान धर्म निरपेक्ष हो, अर्थात हर व्यक्ति को उसके धार्मिक मामलों में स्वतंत्रता प्राप्त होगी अर्थात धार्मिक मामले में हस्तक्षेप नहीं होगा, जैसा कि विश्व के अधिकतर देशों के संविधान में निहित है, तो यह स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में देश के संविधान में निहित कोई चीज़ इस्लामी शरीअत

से नहीं टकरायेगी, इसलिए इस देश के संविधान से वफ़ादारी की शपथ लेना वैध होगा। (मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी)

भारत जैसे देशों के संविधान की शपथ लेने में कोई बुराई नहीं है, इसका आधार नास्तिकता (Etheism) पर नहीं है बल्कि विश्वास और धर्म पर अमल करने की स्वतंत्रता है, धार्मिक स्वतंत्रता इसके मौलिक अधिकारों में है। मुसलमान इसी नीयत से शपथ लेगा "अमल का दारो मदार नीयत पर है" (सुलतान अहमद इस्लाही)

मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही लिखते हैं जहाँ तक हमारे देश भारत का प्रश्न है तो इसको ग़ैर मुस्लिम देशों में नहीं गिनना चाहिए क्योंकि यह लोकतांत्रिक देश है और लोकतांत्रिक देशों में तमाम लोगों को समान रूप से पूर्ण रूप से बसने का अधिकार है।

क़ाज़ी मुहम्मद हारून साहब ग़ैर मुस्लिम देशों में आयोजित चुनाव को दीनी हैसियत नहीं देते, वह इसको सांसारिक और सामाजिक हैसियत देते हैं। मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली लिखिते हैं "शरअी भाषा में इस प्रक्रिया को वैध कहते हुए दिल काँपता है"। इसके विपरीत निम्न लिखित लेखकों ने चुनाव की उपरोक्त प्रक्रिया में भाग लेना अनिवार्य बताया है:

मुफ़्ती मुहम्मद ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौ० सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल।

वहीं मौलाना उबैदुल्लाह साहब संचालक (जामिया अशरफ़ीया लाहौर पाकिस्तान) चुनाव की उपरोक्त सारी प्रक्रिया में भाग लेने को हराम ठहराते हुए लिखते हैं "भारत का संविधान एक काफ़िर संविधान है वहाँ मुसलमानों

(चुने हुए प्रतिनिधियों) को काफ़िर संविधान से वफ़ादारी की शपथ लेना होती है जिसका अर्थ कुफ्र से सहमति के कारण हराम और कुफ़्र है। फिर मुसलमानों को अपने उद्देश्यों और अधिकारों के लिए प्रयास का उपदेश देते हुए लिखते हैं: यदि ऐसा संभव नहीं है कि वह इस्लाम के सिद्धान्तों और कर्त्तव्यों और पहचान को स्वतंत्रता के साथ अपना सकें तो उन पर हिजरत (प्रवास) करना अनिवार्य है और हिजरत ऐसे क्षेत्र में करें जहॉं मुसलमान बहुसंख्यक हों और अपने दीन व ईमान की रक्षा कर सकें, चाहे वह क्षेत्र इसी देश में हो अथवा किसी और देश में।"

लेकिन यदि कोई मुसलमान किसी दूसरे देश में हिजरत करना भी चाहे जहॉं मुस्लिम बहुसंख्यक हों तो इस सिलसिले में यह देखना होगा कि वहॉं मुसलमानों की स्थिति क्या है? इसे मौलाना शमसुद्दीन साहब इस तरह बता रहे हैं:

"किसी भी राष्ट्र का अनुमान लोकतन्त्र में उसकी जनगणना से लगाया जाता है, अगर जनगणना में कोई क़ौम दूसरे से बढ़त हासिल कर लेती है तो लोकतान्त्रिक देश उसकी शक्ति को स्वीकार कर लेते हैं और फिर जनगणना का आधार उसमें मत पर है और इसी पर नागरिकता का आधार भी है, अगर वोटर लिस्ट में नाम दर्ज है तो नागरिकता प्राप्त होगी अन्यथा नागरिक नहीं स्वीकार किया जायेगा, और नागरिकता के अधिकार से उसे वंचित माना जायेगा, इसकी बहुत ज़िन्दा मिसाल है, कुछ वर्ष पहले की घटना है कि जिसमें हजारों बेगुनाह मुसलमानों को विदेशी, पाकिस्तानी और बांगला देशी मानकर उनके पैतृक देश भारत से निकाल कर सीमा पर ले जाकर छोड़ दिया गया जिसे दूसरी सरकार ने भी स्वीकार नहीं किया और

बाद में उन्हें मौत की नींद सुला दिया गया।

जिन लेखकों ने चुनाव और उसकी प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी है, और उसे अनिवार्य कहा है, उन्होंने प्रत्याशी के गुणों, प्रत्याशी बनने के उपाय, और चुनाव अभियान चलाने के नियमों पर भी लम्बी बहस की है जैसे अमानत, धर्म पालन, नैतिक बड़ाई और विरोधियों पर आरोप लगाने से बचना झूठे वायदे न करना। विधान सभा या लोक सभा सदस्य हो जाने की स्थिति में सदस्यता के कर्त्तव्य को भली भाँति पूरा करने की योग्यता और विधान सभा और लोक सभा में मुसलमानों के हितों की रक्षा का संकल्प आदि, और अपनी बातों को पवित्र कुरआन की आयतों और हदीसों के अनुसार करना।

इस सम्बन्ध में पद प्राप्त करने पर भी विस्तार से चर्चा मौजूद है। ग़ैर मुस्लिमों का दिया हुआ पद स्वीकार किया जा सकता है या नहीं यह चर्चा भी की गई है। अधिकतर लेखकों ने सूर: यूसुफ़ की आयत 55, 56 का उल्लेख करते हुए दोनों की वैधता सिद्ध की है, और बताया है कि इस समय किसी पद के लिए स्वयं को प्रस्तुत करना वैध है, अगर उसे विश्वास हो कि इन कर्त्तव्यों को वह भली भाँति पूरा कर ले जायेगा और यदि स्वयं वह अपने आपको प्रस्तुत नहीं करेगा तो यह पद अयोग्य व्यक्तियों को मिल जायेगा, जिससे मुसलमानों को हानि होगी। हज़रत आयशा ने फ़रमाया "सुब्हानल्लाह! अगर तुममें से अच्छे लोग काम में न लगेंगे तो बुरे लोगों को यह काम दिलाया जायेगा। (तलख़ीसुल हबीर ले इब्ने हजर (402/2) (लेख मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

कई शोध लेखकों ने प्रत्याशियों के लिए यह स्थिति बताई है कि

मुसलमानों का एक गिरोह योग्य व्यक्ति को नामित करे। (मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मुहम्मद सलमान खली, मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उसमानी)

यहाँ मौलाना साबित शमीम रशादी के लेख का यह भाग सामने रहे तो बेहतर है। "लोकतन्त्र में कोई स्वयं को नामांकन नहीं करता बल्कि कुछ लोग किसी का नामांकन करते हैं और वह व्यक्ति निर्वाचन अधिकारी के समक्ष अपने नामांकन का कागज़ प्रस्तुत करके अपनी सहमति प्रकट करता है, और फिर जनता अपने वोट के माध्यम से उस व्यक्ति के प्रतिनिधि होने और न होने की घोषणा करती है।

धारा (ब)

यह प्रश्न इस तरह था "चूँकि इन चुनावों से मुसलमानों के धार्मिक और मिल्ली हितों का भी सम्बन्ध हो सकता है तो क्या इस आधार पर मुसलमानों के लिए शरीअत को देखते हुए मतदान को अनिवार्य ठहराया जा सकता है?" इस के उत्तर में अधिकतर उलमा ने अनिवार्य ही कहा है। कुछ उलमा ने वैध और कुछ ने बेहतर। मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी ने सांसारिक रूप से अनिवार्य कहा है, और यह हदीस नक़ल की है "तुम अपनी सांसारिक मामलों की जानकारी सबसे अधिक रखते हो।" इन पंक्तियों के लेखक के अनुसार शरीअत के अनुसार अनिवार्य ठहराना दीन में कुछ जोड़ना होगा जब कि दीन पूरा हो चुका है।

मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली लिखते हैं, अनिवार्य ठहराना तो कठिन है क्योंकि अनिवार्य होने के लिए प्रबल तर्क की आवश्यकता होती है, लेकिन, वैध या उचित कहा जा सकता है। मौलाना लिखते हैं कि मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब ने वोट के प्रयोग की एक शरई हैसियत, गवाही भी बताया है

लेकिन यह विचार पाकिस्तान जैसे मुस्लिम बहुल देश को सामने रखकर दिया गया लगता है, परन्तु भारत जैसे हिन्दू बहुल देश की मुस्लिम बहुल देशों से तुलना या हर तरह से समानता आवश्यक नहीं। इस प्रकार की बात मुफ्ती अस्अद क़ासिम सम्भली ने भी लिखी है।

क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल लिखते हैं कि "इस काल्पनिक आशा पर मतदान को शरअी हैसियत से अनिवार्य नहीं कहा जा सकता और न ही ग़ैर मुस्लिम देशों में मतदान को गवाही ठहराया जा सकता है जो अनिवार्य हो और उसके छिपाने को पाप कहा जायेगा।"

सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी (पाकिस्तान) ने मत के प्रयोग की चार दशाएं बयान करके दो को अनिवार्य, तीसरी को वैध और चौथी को हराम ठहराया है (अर्थात जब भेद भाव करने वाले ग़ैर मुस्लिम को वोट देने का प्रश्न हो)

वोट की शरअी हैसियत निर्धारित करने के लिए लेखकों ने शहादत (गवाही) वकालत (प्रतिनिधित्व), शफ़ाअत (अनुमोदन) वाले क़ुरआन सुन्नत व सहाबा के अमल को दलील बनाया है। कुछ उलमा ने विस्तार से लिखा है और कुछ ने संक्षेप में लिखा है और मौलाना अख्तर इमाम आदिल ने इसमें एक चौथी हैसियत "विचार विमर्श" को भी जोड़ा है।

धारा (स)

इस भाग में पूछा गया था कि यदि कुछ ऐसे राजनीतिक गिरोह चुनाव में भाग लेते हों जिन्होंने खुलकर इस्लाम और मुसलमानों के विरोध को अपने गिरोह का उद्देश्य बना लिया हो लेकिन इसमें कुछ प्रत्याशी स्वयं अच्छे गुणों वाले हों और मुसलमानों के साथ उनका व्यवहार अच्छा हो तो

क्या मुसलमानों को उनके गिरोह के विचार पर न ध्यान देते हुए व्यक्तिगत स्थिति के आधार पर उनको वोट देना वैध होगा? और क्या स्वयं मुसलमानों के लिए ऐसे गिरोहों में सम्मिलित होना उचित होगा?

इस सम्बन्ध में लेखकों का एक साधारण विचार यह है कि ऐसी पार्टी का सदस्य बनना उचित नहीं और न ऐसी पार्टी के प्रत्याशी को मतदान करना ही उचित है चाहे वह व्यक्तिगत रूप से मुसलमानों का शुभ चिन्तक और उनसे सहानुभूति रखने वाला हो।

मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली लिखते हैं: कुरआन की शब्दावली में वह शैतान की पार्टी है, प्रबल ईमान के साथ इस गिरोह से संघर्ष करने के लिए ही उम्मत को भेजा गया है तो इसके सदस्य बनने का क्या सवाल है?

दोनों बातों को वैध कहने वाले बताते हैं कि वर्तमान दलगत राजनीति और दल-बदल क़ानून की मौजूदगी में पार्टी से बाहर अकेला व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता, यह व्यक्ति न चाहते हुए भी, पार्टी यदि कोई मुस्लिम विरोधी बिल लाये तो समर्थन पर मजबूर होगा। दूसरे यह कि इससे उसकी पार्टी को बहुमत मिल सकता है।

इसके विपरीत कुछ उलमा ने दोनों की अनुमति दी है, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही लिखते हैं "इस्लाम और मुसलमानों के हितों की रक्षा की नीयत से मुसलमानों का एक गिरोह यदि भाजपा की सदस्यता ग्रहण करता है तो कोई हानि नहीं" मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी लिखते हैं, "दीन व ईमान की रक्षा के साथ ऐसी पार्टियों में मुसलमानों की भागी दारी संभव हो तो उसका सदस्य बन सकते हैं।

यहाँ मौलाना इरशाद अहमद क़ासमी भागलपुरी का यह वाक्य सामने

रहे तो अच्छा है: ध्यान रहे कि उस व्यक्ति से लाभ काल्पनिक और उसके घोषणा पत्र का इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध होना निश्चित है, इसलिए निश्चित को काल्पनिक के अधीन करके न वोट देना वैध होगा, न ऐसी पार्टी का सदस्य बनना वैध होगा।

जो उलमा मात्र प्रत्याशी को वोट देने की अनुमति देते हैं उनके विचार निम्नलिखित हैं: "अगर उससे अच्छा कोई प्रत्याशी मुसलमानों के पक्ष में न हो तो ऐसी मजबूरी की दशा में मुसलमान उस प्रत्याशी को वोट दे सकते हैं शर्त यह है कि वह मुसलमानों का अधिकार दिलाने का वचन दें। (मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र पुत्र मुहम्मद साहब)।

यदि कोई ऐसा प्रभाव वाला हो कि अपनी पार्टी में नीति निर्धारकों में से हो और यह वचन दे कि अपनी पार्टी की विचारधारा और मानसिकता को बदलने का प्रयास करेगा तो उसको वोट देने पर विचार किया जा सकता है। (जमील अहमद नज़ीरी)

राजनीतिक उपाय की आवश्यकता के रूप में अपवाद स्वरूप इनमें किसी अच्छी आदत वाले प्रत्याशी को विजयी बनाने के लिए परोक्ष प्रयास किया जा सकता है और इस प्रकार उच्च आचरण और शुद्ध ईमान वाले किसी उचित मुसलमान प्रत्याशी को उनके टिकट पर विजयी बनाने में भाग लिया जा सकता है, यह पालिसी किसी उचित विकल्प के न होने की स्थिति में विचार योग्य है अन्यथा नहीं। (सैयद शकील अहमद अनवर, हैदराबाद)

अगर वह विधान सभा तक ही सीमित है तो उसे वोट देना बिल्कुल वैध नहीं है, दूसरी स्थिति यह है कि वह अपने क्षेत्र के अधिकारियों से सम्बन्ध रखता है और उसका क्षेत्र पर प्रभाव है, और निश्चित है, कि वह

मुसलमानों की रक्षा करेगा, तो उसे वोट देना वैध होगा। (सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी पाक0)

यह वे उलमा थे जिन्होंने विशेष शर्तों के साथ ऐसे प्रत्याशी को मतदान की अनुमति दी थी, लेकिन मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, सैयद अमीर हुसैन गीलानी (पाकिस्तान) ने प्रत्याशी की अच्छी आदत और मुसलमाानों के साथ उचित व्यवहार को ही वोट देने के लिए पर्याप्त बताया है, और सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़्वी हैदराबाद लिखते हैं कि यह कोई शरअी समस्या नहीं है, हालात की गम्भीर और सूक्ष्म पड़ताल करके जो उचित दिखाई दे, उस पर अमल किया जा सकता है।

धारा (द)

प्रश्न इस तरह है "और क्या चुनाव के अवसर पर ग़ैर मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों से मिल्ली हितों के अन्तर्गत समझौते, उनकी सदस्यता और उनका समर्थन किया जा सकता है या नहीं? और शरीअत में इसकी क्या हैसियत होगी?"

इस प्रश्न का उत्तर लगभग सभी लेखकों ने सकारात्मक दिया है। किसी ने मात्र वैध कहा है, किसी ने अनिवार्य, किसी ने अच्छा, लेकिन कुछ उलमा ने कुछ शर्ते लगाई हैं। मिल्ली हितों के अन्तर्गत समझौते किए जा सकते हैं, लेकिन इस अभियान को शरअी रंग देना या नेतृत्व के स्तर के लोगों का इसमें भाग लेना उचित नहीं है। (मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली)

शर्त यह है कि उनसे इस्लाम और मुसलमानों को हानि का कोई सन्देह न हों। (मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उस्मानी)

शर्त यह है कि इस्लाम दुश्मन और मुसलमानों के विरुद्ध न हों।

(मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी)

शर्त यह है कि इस्लाम और मुसलमानों के सम्मान को ठेस न पहुॅंचे

(मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

शोधपत्र लेखकों ने समझौते की वैधता पर रसूलुल्लाह सल्ल0 के उन समझौतों को दलील बनाया है जो आप (सल्ल०) ने मदीना आगमन के बाद विभिन्न अवसरों पर कभी यहूदियों से, कभी क़ुरैश से, और कभी दूसरे क़बीलों से किये थे।

धारा (ई)

इसका प्रश्न इस तरह था "नेकी को फैलाना, बुराई से रोकना, मानवता के हितों के लिए काम करना, और समाज में न्याय सुरक्षा और शान्ति का वातावरण तैयार करना, मुस्लिम उम्मत का शरआी कर्त्तव्य है, इन उद्देश्यों के लिए कभी-कभी समाज के विभिन्न वर्गों से सहयोग लेना पड़ता है, ऐसा भी संभव है कि कभी-कभी ग़ैर मुस्लिम भाइयों के साथ मिलकर काम करना पड़ता है तो क्या समाज के सामूहिक दायित्वों और अच्छी बातों को फैलाने और बुराई से रोकने के लिए, ग़ैर मुस्लिम भाइयों से मिलकर काम किया जा सकता है ? और ऐसी संस्थाएं और सगंठन स्थापित किये जा सकते हैं, जिनमें मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करें?

इसका उत्तर भी सभी लेखकों ने सकारात्मक दिया है, और इसकी दलील प्रसिद्ध घटना 'हिल्फ़ुल फ़ुज़ूल' से दी है। कुछ उलमा ने मात्र इसे वैध कहा है, कुछ उलमा ने शर्तें लगाई हैं कि इस्लाम के उद्देश्यों को हानि न पहुॅंचे और मुसलमानों के सम्मान को ठेस न लगे और वह हमें

बुराइयों में सम्मिलित न करें तो वैध है

मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र, मुफ़्ती अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह(लाहौर), मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उस्मानी (पाकिस्तान), मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी, मौलाना मुहम्मद इक़्बाल क़ासमी ने लिखा है कि इस तरह के संगठन मुसलमान स्वयं बनायें या फिर उसमें मुसलमानों का अधिपत्य हो और अन्तिम निर्णय उनके हाथ में हो, मुस्लिम पहचान के साथ हो, ताकि उसकी साख मुसलमानों को मिले।

मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली ने इस प्रश्न को ही हैरतनाक बताया है वह लिखते हैं "मारूफ़ व मुनकर (अच्छाई और बुराई) शुद्ध शरअी शब्दावलियाँ हैं जिनके आदेश और मनाही का दायित्व कुरआन करीम ने हर जगह ईमान वालों पर डाला है, वह दो पंक्तियों के बाद लिखते हैं कि, यह प्रश्न कुछ अनोखा सा लगता है, एक तो मारूफ़ व मुनकर का निर्धारण ही हमारे और उनके बीच बड़े मतभेद का कारण होगा और शायद कुछ ही बातों में सर्व सम्मति हो पायेगी। अब अगर हम ग़ैर मुस्लिम से बात करते हैं तो यह सही नहीं है, क्योंकि वह पहले ईमान लायें, और यदि मुसलमान से बात करें तो उनपर सबसे अधिक नैतिक दबाव उलमा-ए-उम्मत का ही पड़ता है, और दूसरों की भागीदारी से बदगुमानी पैदा होगी और सच और झूठ की धारणा समाप्त हो जायेगी, इसलिए ऐसी संस्थाएं स्थापित करना और उनमें भाग लेना उचित नहीं है। हमें ये सारे काम पहले की तरह ही करना चाहिए।"

मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उस्मानी साहब को भी प्रश्न के एक शब्द पर

आपत्ति है! वह लिखते हैं: "नोट: प्रश्न (इ) में दो स्थानों पर ग़ैर मुस्लिमों के लिए ग़ैर मुस्लिम भाइयों का शब्द प्रयोग किया गया है, क़ुरआन करीम ने कई जगह ग़ैर मुस्लिमों को दोस्त बनाने को मना किया है, और भाई बनाना तो दूर की बात है, भाईचारगी का सम्बन्ध तो मात्र मुसलमानों के बीच ही हो सकता है।

फिर सूर: मुम्तहिना-1,सूर: माइदा 51,57, सूर: हुजुरात 10 की आयतें नक़ल की हैं।

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की कुछ समस्याएं

मुफ़्ती अनवर अली आज़मी

दारुल उलूम मऊ

प्रश्न- (अ,ब,स,द,इ)

प्रश्न- (अ) में यह पूछा गया है कि क्या मुसलमानों के लिए मिली जुली आबादी में बसना उचित है? ताकि वह ग़ैर मुस्लिमों को इस्लामी नैतिकता व चरित्र के द्वारा प्रभावित कर सकें, अथवा अपनी अलग आबादियाँ बसाना बेहतर है ताकि वह ग़ैर मुस्लिमों की सभ्यता से प्रभावित होने से बच सकें।

इस प्रश्न के उत्तर में अधिकतर लेखकों ने अलग आबादी बसाने को बेहतर बताया है ताकि ग़ैर मुस्लिमों की धार्मिक और सांस्कृतिक छाप से सुरक्षित रहें, इस विचार से सहमत लोगों में मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी,

मौलाना आमिर ज़फ़र आज़मी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालन पुरी, मौलाना सलमान खली, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना शकील अहमद अनवर, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन नौगांव, मौलाना उबैदुल्लाह लाहौर, क़ाज़ी मुहम्मद हारून (पाकिस्तान), मुफ़्ती ज़ाकिर हुसैन पेशावर, मौलाना इरशाद अहमद गूरैनी, मौलाना अरशद मदनी जामिया इब्ने तैमिया, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी भोपाल, मौलाना इक़बाल क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी दरभंगा, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल इत्यादि।

मतभेद रखने वालों में डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी जौनपुरी, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना अमीर हुसैन गीलानी (अध्यक्ष जमीयत उलमाए-पाकिस्तान) लिखते हैं कि पक्के विश्वास वाले मुसलमानों को मिली जुली आबादी में रहना चाहिए और कमज़ोर मुसलमानों को अलग आबादी में । यही विचार मौलाना ज़ाकिर हुसैन सदस्य इस्लामी विचार परिषद (Council of islamic Thoaght) का भी है।

मौलाना साबित शमीम रशादी लिखते हैं बसने का मामला स्थानीय स्थितियों पर छोड़ दिया जाये तो बेहतर है, मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उसमानी का विचार है कि दोनों तरह की आबादी में रहना उचित है।

मेरे अपने विचार में भारत जैसे देश में जान माल इज़्ज़त आबरू की सुरक्षा और साथ-साथ दीन व ईमान की सुरक्षा के लिए भी अलग आबादियों में रहना उचित तो है लेकिन सभी मुसलमानों के लिए अमली

तौर पर बहुत कठिन है। सबसे बड़ी समस्या देहात के दलित मुसलमानों के लिए आर्थिक दशाओं की है, दूसरी समस्या यह है कि छोटे-छोटे देहातों में मस्जिदें मौजूद हैं अगर सारे मुसलमान ऐसी बस्तियां छोड़कर अपनी अलग बस्तियाँ बसाने का प्रयास करेंगे तो हज़ारों मस्जिदें वीरान हो जायेंगी, हज़ारों क़ब्रों का अपमान होगा, अभी हम एक ही बाबरी मस्जिद की समस्या में उलझे हुए हैं, हमारे सामने ऐसी सैकड़ों समस्यायें खड़ी होंगी। कुछ उलमा ने ग़ैर मुस्लिम आबादियों से अलग होने के लिए इस हदीस को दलील बनाया है, "मैं हर उस मुसलमान से बरी हूँ जो अनेकश्वरवाद करने वालों के बीच में रहता है," (सुबुलुस्सलाम 97/4) लेकिन इस हदीस का सम्बन्ध दारुल हर्ब में बसे मुसलमानों के बारे में है। कुछ उलमा ने अबू दाऊद शरीफ़ की इस हदीस को भी दलील बनाया है "जो अनेकश्वरवाद करने वालों में घुल मिल गया और उनके साथ रहने लगा वह उन्हीं जैसा है, (बज़्लुल मजहूद 72/4)" लेकिन इस हदीस की व्याख्या में मौलाना ख़लील अहमद सहारनपुरी लिखते हैं, "उचित यह है कि कहा जाये: इसका अर्थ यह है कि आदमी उसके साथ इस तरह घुल मिल जाये कि उसके रीति रिवाज और आदत, पहनावा और समाज में विलीन हो जाये, और इस बात का सन्देह हो जाये कि वह उनसे मिल गया"

इस युग में कुछ विकासशील मुसलमान मुस्लिम बस्तियाँ छोड़कर ग़ैर मुस्लिम बस्तियों में बसने को वरीयता देते हैं और इसको अपना विकास समझते हैं, इसकी कुछ मिसालें अहमदाबाद, गुजरात में देखी जा सकती हैं, कुछ मुसलमानों का यह तरीक़ा दीन से दूरी की पहचान है। कुछ मुसलमान इक्का दुक्का ग़ैर मुस्लिम मुहल्लों में आबाद दिखाई देते हैं, वहाँ मस्जिद भी

नहीं होतीं तो ऐसे मुहल्लों में इस्लामी पहचान के साथ रहना कठिन है। ऐसे मुसलमानों को निश्चित रूप से मुस्लिम बस्तियों में स्थानान्तरित (प्रवास) हो जाना चाहिए, जहाँ मुसलमानों की बड़ी आबादियाँ मौजूद हैं, मस्जिदें और क़ब्रिस्तान हैं,। यदि इन आबादियों में ग़ैर मुस्लिम भी रहते हैं तो वहाँ भी उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक छाप से मुसलामानों को सुरक्षित रखने के लिए इस्लाम की प्रचार प्रसार व्यवस्था को प्रबल बनाया जाये । दीनी केन्द्र स्थापित किए जाऐं मुसलमानों के दीनी एहसास को जागृत किया जाये, आबादियाँ छोड़कर भागना हमारी समस्या का स्थायी समाधान नहीं है बल्कि हमारी समस्याओं का स्थायी समाधान खोजना अनिवार्य है। यदि हम अपनी लापरवाही दूर करने का प्रयास नहीं करेंगे तो कहीं भी धार्मिक पहचान के साथ रहना कठिन होगा। इसका उदाहरण बहुत से मुस्लिम बहुल शहरों और मुस्लिम बहुल देशों में देखा जा सकता है।

प्रश्न- (ब) इस धारा में दो बातों का उल्लेख है, प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिए इनको अलग-अलग करना उचित होगा। पहला प्रश्न किसी ग़ैर मुस्लिम मुर्दे के लिए क़ुरआन पढ़कर पुण्य पहुँचाने का है। इसके उत्तर में लगभग सारे लेखकों में सहमति है कि किसी ग़ैर मुस्लिम मुर्दे को पुण्य (सवाब) पहुँचाना और मुक्ति की दुआ मांगना हराम है। स्पष्ट तर्क क़ुरआन व सुन्नत में मौजूद हैं:

"ماكان للنبیؐ والذين آمنوا ان يستغفر وللمشركين ولو كانوا اولی قرباء من بعد ما تبين لهم انهم اصحاب الجحيم"

नबी (सल्ल०) और मोमिनों के लिए उचित नहीं कि वह अनेकश्वरवाद करने वालों की मुक्ति के लिए दुआ करें यद्यपि वे कितने ही

निकट क्यों न हों जब कि यह स्पष्ट हो चुका हो कि वे नरक में जाने वाले हैं।

(सूर: तौबा-113)

दूसरी स्पष्ट दलील सही मुस्लिम किताबुल जनायज़ में मौजूद है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अपनी माँ के लिए मुक्ति की दुआ के लिए अनुमति माँगी, तो अल्लाह तआला ने इसकी अनुमति नहीं दी, मात्र आप (सल्ल०) को क़ब्र पर जाने की अनुमति मिली, आप (सल्ल०) गये, स्वयं रोये, और साथ वालों को भी रुलाया। (सही मुस्लिम किताबुल जनाइज़ भाग-1)

इस भाग में दूसरा प्रश्न है कि किसी अनेकश्वरवाद करने वाले मुर्दे के जनाज़े में भाग लेना और अन्तिम संस्कार में मुर्दे के पास रहने का।

अधिकतर लेखकों ने शव यात्रा और अन्तिम संस्कार में भाग लेने को अवैध बताया है जिनके नाम ये हैं; मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी, मौलाना सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, मौलाना ख़ुरशीद हसन रिज़वी, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन (आसाम), मौलाना उबैदुल्लाह (लाहौर), क़ाज़ी मुहम्मद हारून (पाकिस्तान), मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी।

सैयद अमीर हुसैन गीलानी (पाकिस्तान), मुफ़्ती ज़ाकिर हुसैन नोमानी

(पेशावर), मौलाना इरशाद अहमद (गूरैनी), मौलाना अब्दुर्रहीम (भोपाल), मौलाना अबू बक्र क़ासमी (दरभंगा), मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, लिखते हैं कि शव यात्रा से आगे या किनारे दूरी बना कर भाग लिया जा सकता है। मौलाना अरशद मदनी (जामिया इब्ने तैमिया) का यही विचार है। मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी और डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही ने शव यात्रा में भाग लेने की गुंजाइश का उल्लेख किया है। डाक्टर क़ुदरतुल्लाह ब़ाकवी भी इस विचार से सहमत हैं।

शवयात्रा में भाग लेने की अनुमति देने वालों ने मुसन्नफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक़ की किताब का हवाला दिया है। अनुमति न देने वालों ने पवित्र क़ुरआन की आयत "उन पर कभी आप (सल्ल०) जनाज़े की नमाज़ न पढ़िए और उसकी क़ब्र पर न खड़े होइये जो उनमें से (मुश्रिक़) मर गया" (सूरः तौबा), को दलील बनाया है। "हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने चाचा अबू तालिब के देहान्त पर हज़रत अली (रज़ि०) से कहा जाओ शव को छुपा दो" इन शब्दों से पता चलता है कि आप (सल्ल०) स्वयं नहीं गये इस लिए साधारण स्थितियों में मुसलमानों को यही आदेश है कि वे ग़ैर मुस्लिमों के जनाज़े और धार्मिक संस्कारों में भाग न लें, कुछ हालात अपवाद होते हैं, शरीअत भी घोर आवश्यकता के समय कुछ गुंजाइश देती है।

मुसन्नफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक़ की रिवायतों को इसी प्रकार की घोर मजबूरियों पर लागू किया जा सकता है। साधारण स्थितियों में मुसलमानों का तरीक़ा वही होना चाहिए जो पवित्र क़ुरआन में सैयदना इब्राहीम (अलै०) के आदर्श में उल्लेख किया गया है "जब उन पर स्पष्ट हो गया कि वह अल्लाह के

दुश्मन हैं तो वह उनसे बरी हो गये। हज़रत इब्राहीम (अलै०) अपने बाप के लिए दुआ करते रहे लेकिन जब उनको मालूम हो गया कि उनका बाप अल्लाह का दुश्मन है, अर्थात कुफ्र की स्थिति में मर चुका है तो इब्राहीम (अलै0) बिल्कुल अलग हो गये। इसके बाद उनकी सहानुभूति में कोई काम नहीं किया। इस युग के प्रसिद्ध मुफ़्ती मौलाना महमूदुल हसन, मुफ़्ती निज़ामुद्दीन, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम लाजपुरी, इत्यादि का भी यही विचार है। इन पंक्तियों के लेखक का विचार है कि यह बुराई और चापलूसी का दौर है, यदि इसकी साधारण अनुमति दे दी जाये तो मुसलमानों में एक स्वार्थी वर्ग है वह इसका ग़लत अर्थ लेगा और खुले तौर पर ग़ैर मुस्लिमों की शव यात्रा में भाग लेने लगेगा। उनके धार्मिक नारों से प्रभावित होगा। इस लिए इस प्रश्न में साधारण अनुमति का दरवाज़ा बन्द कर देना चाहिए। और यदि कहीं घोर मजबूरी हो तो वहॉं मुफ़्ती से फ़तवा लेकर ही अमल किया जाये।

प्रश्न- (स) धर्मनिरपेक्ष समारोहों जैसे शादी, जन्म आदि के अवसरों पर किसी ग़ैर मुस्लिम की तरफ़ से जो उपहार या मिठाई इत्यादि मुसलमानों को भेजे जाते हैं उनके बारे में साधारण रुझान यह है कि इनके लेने और खाने में कोई बुराई नहीं है, कुछ उलमा ने यह शर्त लगाई है कि उसके पवित्र होने की संभावना अधिक हो या उसमें कोई अपवित्र मिलावट न हो, इस शर्त से वास्तविक मसले में कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि अपवित्रता का थोड़ा सा भी सन्देह हो जाने के बाद कोई मुसलमान न उसे स्वीकार करेगा और न खायेगा ही। धार्मिक समारोहों से सम्बन्धित जो उपहार होते हैं, वे दो प्रकार के हैं, एक तो वह जो मूर्तियों पर चढ़ाये हुए हों जिनको प्रसाद कहा जाता है, उनके बारे में भी साधारण विचार यही है कि उनका लेना

और खाना वैध नहीं है। मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी लिखते हैं कि मूर्तियों का चढ़ावा लेकर किसी ग़ैर मुस्लिम को उपहार के रूप में भेज देना चाहिए। लेकिन साधारणतः लेखकों का विचार यह है कि ऐसा उपहार स्वीकार न किया जाये क्योंकि वह "अल्लाह के, अतिरिक्त दूसरों पर चढ़ावा की श्रेणी में आ जाता है" मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी लिखते हैं कि ऐसे उपहार को अस्वीकार करने का उचित कारण उनको समझा दिया जाये ताकि किसी तरह से दिल बुरा न हो। त्यौहार पर मिलने वाले ग़ैर मुस्लिम के उपहार की दूसरी प्रकार जिसका पूजा-पाठ से कोई सम्बन्ध न हो मात्र प्रसन्नता प्रकट करना उसका उद्देश्य हो, जैसे दीवाली के अवसर पर मिलने वाला उपहार, व्यापार के आधार पर सम्बन्धित ग़ैर मुस्लिम व्यापार से सम्बन्धित मुसलमानों को मिठाइयाँ भी देते हैं और सामान भी। यदि किसी ग़ैर मुस्लिम का, मुस्लिम से लम्बा औद्योगिक लेन देन हो तो उस अवसर पर बड़े-बड़े मूल्यवान सामान जैसे फ़्रिज, कूलर आदि भी देता है और साधारण सम्बन्धित लोगों को मिठाई की पर्चियां देते हैं कि अमुक दुकान से इतनी मिठाई ले लो, उस दुकान से उनका मामला पहले से तय होता है। इस तरह के उपहार के बारे में साधारण विचार वैधता का है, मौलाना रशीद अहमद गंगोही, मौलाना अशरफ़ अली थानवी ने भी दीवाली के उपहार को वैध ठहराया है, अल्लामा इब्ने तैमिया ने अल-इक़्तेज़ा में विभिन्न सहाबियों के कथन मुसन्निफ इब्ने शैबा के हवाले से नक़ल किये हैं, इनसे ग़ैर मुस्लिमों के उपहार स्वीकार करने की वैधता मालूम होती है।

एक औरत ने हज़रत आयशा (रज़ि०) से पूछा कि "मजूसियों से हमारे

सम्बन्ध हैं और इस कारण वे अपने त्यौहार के अवसर पर हमें उपहार देते हैं हज़रत आयशा (रज़ि०) ने फ़रमाया वे यदि गोश्त आदि दें तो न खाओ, परन्तु फल आदि खा सकती हो"। हज़रत अबू बरज़ा अस्लमी से भी इसी तरह की बात नक़ल की गई है, उन्होंने अपने घर वालों को निर्देश दिया कि नौरोज़ और महरजान के अवसर पर जो उपहार मजूसी लोग भेजते हैं, उनमें से फल आदि खा लो बाक़ी चीजें लौटा दो। (मुसन्निफ़ इब्ने अबी शैबा, अल इक़्तेज़ा के हवाले से)

प्रश्न- **(द)** मस्जिदों, मदरसों और धार्मिक समारोहों में ग़ैर मुस्लिमों का सहयोग लेना उचित है अथवा नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में अधिकतर लेखकों का विचार यह है कि यदि ग़ैर मुस्लिम अपने विश्वास में इसकी निकटता समझता है, और यह सन्देह नहीं कि उनपर वह एहसान जताएगा या उसके बदले में अपने धर्म स्थल या धार्मिक समारोहों में चन्दा माँगेगा तो उसका चन्दा लेना हलाल है। इसके समर्थक हैं मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना ख़ुरशीद अहमद, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारक पुरी, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, मौलाना सैयद असरारुल हक़ सबीली, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन (आसाम), मौलाना उबैदुल्लाह लाहौरी, सैयद अमीर हुसैन (गीलानी), मौलाना अब्दुर्रशीद जौनपुरी, मौलाना

ज़ाकिर हुसेन पाकिस्तान, मौलाना इरशाद अहमद भागलपुरी, डा. सैयद क़ुदरतुल्लाह बाक़वी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना अब्दुल क़ादिर, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही।

इसके विपरीत विचार रखने वालों में मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना अस्अद क़ासिम सम्भली, मौलाना अबुल आस वहीदी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल हैं। सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी लिखते हैं कि इस रुझान को दबाना चाहिए। मौलाना असअद क़ासिम सम्भली लिखते हैं कि फ़ुक़्हा इसे उचित नहीं समझते हैं लेकिन इसपर उन्होंने कोई दलील नहीं दी है। इसी तरह मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, और मौलाना अबुल आस वहीदी, ने अपने विचार के लिए कोई दलील नहीं दी है।

इस प्रश्न के सम्बन्ध में उचित विचार वही है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। अर्थात यदि चन्दा देने वाले ग़ैर मुस्लिम अपने विश्वास में इसे निकटता समझते हैं और उसके बदले में उनके धर्म स्थलों के लिए चन्दा मांगने का संदेह न हो तो उनका पैसा मस्जिदों, मदरसों और समारोहों में स्वीकार किया जा सकता है। मौलाना रशीद अहमद गंगोही, दारुल उलूम देवबन्द के मुफ़्ती हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी, और दूसरे फ़तवा देने वालों का यही विचार चला आ रहा है। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में सैकड़ों ऐसी मस्जिदें हैं जिन्हें हिन्दू राजाओं और ज़मींदारों ने अपनी ज़मीनों पर अपने ख़र्च से बनवाया और उलमा ने उनको मस्जिद स्वीकार किया, और आज भी वे मस्जिद के रूप में प्रयोग की

जाती हैं। हॉ यदि इस तरह के सन्देह मौजूद हों कि इसके बदले वह मन्दिर में चन्दे की मांग करेगें तो वहॉ बिल्कुल बचना चाहिए। कुछ उलमा ने इसको इस्लामी स्वाभिमान के विरुद्ध बताया है। मेरे विचार में यह बात वहीं हो सकती है जहॉ उनसे मांग की जाये कि यदि वे अगर बिना मांगे केवल निकटता और नेकी की नीयत से दे रहे हैं तो वहॉ इस्लामी स्वाभिमान बचा रहता है।

प्रश्न– **(इ)** एक मुसलमान दूसरे धार्मिक गिरोह के त्यौहार में भाग ले सकता है या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में अधिकतर लेखकों का विचार यह है कि मुसलमानों के लिए इनके धार्मिक समारोह और त्यौहारों में भाग लेना वैध नहीं है। इसके समर्थक हैं: मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना असअद क़ासिम सम्भली, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, शकील अहमद अनवर (हैदराबाद), मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन (आसाम), मौलाना उबैदुल्लाह (लाहौर), क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, सैयद अमीर हुसैन गीलानी (पाकिस्तान), ज़ाकिर हसन नोमानी (पाकिस्तान), मौलाना अब्दुर्रशीद जौनपूरी, मौलाना अरशद मदनी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहम्मद

मुस्तफ़ा क़ासमी, एम.ए. अब्दुल क़ादिर, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना इरशाद आलम भागलपुरी।

वैधता के समर्थकों में मौलाना फुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी ने कोई दलील नहीं दी है और मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने आवश्यकता और मजबूरी को आधार बनाया है। मौलाना पाकिस्तान में रहते हैं इसलिए उन्हें अनुमान लगाने में परेशानी हुई। हम लोग भारत में इस सीमा तक किसी तरह मजबूर नहीं हैं। अतः ऐसी समस्याओं में आवश्यकता को आधार बनाकर गुनाह, शिर्क और कुफ़्र के केन्द्रों पर जाने की अनुमति देना सही नहीं है जिससे बहुत से बिगाड़ पैदा होंगे और हमारे नौजवानों के लिए ग़लत रास्ते पर चलाने का कारण होगा।

ग़ैर मुस्लिमों को उनके त्यौहारों पर बधाई देना भी सही नहीं है। इसके समर्थक हैं: मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद याक़ूब क़ासमी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना असरारुल हक़ सबीली, मौलाना शकील अहमद हैदराबाद, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना शमसुद्दीन (आसाम), मौलाना उबैदुल्लाह (लाहौर), क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना अब्दुर्रशीद जौनपूरी, मौलाना अरशद मदनी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, एम. ए. अब्दुल क़ादिर, मौलाना तंज़ीम

आलम क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल।

लेखकों में बहुत से उलमा बधाई देने को उचित बताते हैं। उनके नाम ये हैं; मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, मौलाना इरशाद अहमद भागलपुरी, मौलाना अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी।

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी साहब का यह वाक्य बहुत उचित लगता है कि साम्प्रदायिक एकता, सौहार्द, और सद्भावना की नीयत से ग़ैर मुस्लिमों को उनके त्यौहारों के अवसर पर बधाई दी जा सकती है। भारत जैसे देश में इसकी गुंजाइश मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली भी देते हैं। ईद के अवसर पर वे मुसलमानों को बधाई देते हैं। उसके उत्तर में शाब्दिक मुबारक बाद मुसलमान भी दें। ईद मिलन के जवाब में कुछ शहरों में होली मिलन आदि के समारोह होते हैं। उनका उद्देश्य धार्मिक एकता और भाई चारा होता है। भारत में साम्प्रदायिक माहौल में इसकी आवश्यकता महसूस होती है। इसलिए इस तरह के कार्यक्रम में कुछ मुसलमान भाग लें और रस्मी और शाब्दिक बधाई दे दें, ताकि मुसलमानों पर साम्प्रदायिकता का आरोप न लगे।

ग़ैर मुस्लिमों की तरफ़ से इफ़्तार पार्टी का रिवाज अधिकतर राजनीतिक लाभ के लिए किया जाता है, इससे हमारे रोज़े की पवित्रता प्रभावित होती है। ऐसी पार्टियों का अधिकतर उत्साह वर्धन नहीं होना चाहिए।

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ समस्याएं

सैयद असरारुल हक़ सबीली

हैदराबाद

प्रश्न (अ,ब,स)

प्रश्नावली: "ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ विशेष समस्याएं" के प्रश्न संख्या: 3 से सम्बन्धित समस्या की प्रस्तुति के लिए मुझे 48 लेख प्राप्त हुए। जिसके तीन भाग हैं, भाग 'अ' का प्रश्न यह है:

"आजकल अधिकतर देशों में झण्डे को सलामी देने की रीति है और इसे झण्डे का सम्मान समझा जाता है, शरीअत के दृष्टिकोण से क्या यह उचित है"?

इस प्रश्न के उत्तर में लेखकों के विचार भिन्न-भिन्न हैं, हमने उन्हें नौ गिरोहों में बॉटा है। 9 उलमा ने उसे अवैध ठहराया है, एक साहब ने बिद्अत (दीन इस्लाम में कोई नई बात निकालना) कहा है, दो उलमा के विचार में यह मकरूह (घृणित) है, तीन उलमा ने इसे शर्त के साथ अवैध ठहराया है जबकि 15 लेखकों ने उसे मजबूरी की स्थिति में वैध बताया है और 17 उलमा ने इसे पूरी तरह वैध ठहराया है।

1-पूरी तरह अवैध ठहराने वाले नौ उलमा के नाम यह हैं; मौलाना

अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना अबुल आस वहीदी, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी।

मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी ने एक आयत और सैयद्ना हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ि० के एक कथन को तर्क बनाया है:

"ياايها الناس اعبدوا ربكم الذى خلقكم والذين من قبلكم لعلكم تتقون"

ऐ लोगो अपने पालन हार की पूजा करो जिसने तुमको पैदा किया और तुम्हारे पूर्वजों को भी पैदा किया शायद कि तुम डरो। (सूर: बकरा 21)

नि:सन्देह मैं जानता हूँ कि तुम एक पत्थर हो, न तुम हानि पहुँचा सकते हो न लाभ पहुँचा सकते हो, अगर मैं तुम्हें नबी (सल्ल०) को चूमते हुए न देखा होता तो, मैं भी न चूमता। (बुख़ारी 217/1)

मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही ने दलील में जवाहिरुल फ़िक़्ह का यह वाक्य प्रस्तुत किया है:

"इसलिए किसी विशेष ढांचा या प्रकार पर विश्वास और फिर उसकी विशेषता और विशेष पवित्रता का दावा बिल्कुल ग़लत और निराधार है।

(जवाहिरुल फ़िक़्ह 145/1)

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल ने इम्दादुल फ़तावा में हज़रत थानवी का विस्तृत फतवा आस्तानों (स्थानों) के सम्मान की समस्या की हक़ीकत से पर्दा हटाने के प्रश्न का हवाला देते हुए उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज को सबसे बड़ा राजनीतिक देवता बताया, जिसको क़ुरआन की भाषा में "अल-अन्साब" कहा जाता है।

"يـاايهـاالـذيـن آمـنـوا ان ماالخمر والميسر والانصاب والازلام رجس من عمل الشيطان"

ऐ ईमान वालो निस्सन्देह शराब, जुवा, स्थान और पॉसे नापाक और शैतानी काम हैं। (सूरः माइदा 89)

उन्होंने रद्दुल मुख़्तार अल-बहरुर्रायक़, फ़तावा बज़ाज़िया में और हिन्दीया के हवाले से लिखा है कि ग़ैर मुस्लिम को सम्मान देने के लिए सलाम करना वैध नहीं है, कुछ फ़ुक़्हा ने इसे कुफ़्र (इस्लाम छोड़ देना) तक कहा है तथा ग़ैर मुस्लिम की लम्बी उम्र और सदैव शान्ति की दुआ करना वैध नहीं है, उन्होंने इअलाउस्सुनन और फतहुल बारी के प्रकाश में झण्डे के गिर्द खड़े होने को भी अवैध बताया है।

हज़रत मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली ने भी तर्क के लिए अपनी किताब "वर्तमान समस्याओं का शरअी हल" में मौजूद लेख का हवाला दिया है। लेकिन वह किताब मुझे नहीं मिल सकी।

मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी ने मुसनद अहमद की इस हदीस का उल्लेख किया है "अगर मैं किसी को किसी का सजदा करने का आदेश देने वाला होता तो मैं औरत को आदेश देता कि वह अपने पति को सजदा करे"

2- झण्डों की सलामी को बिद्अत बताने वाले मात्र आलिम मौलाना अरशद मदनी (जामिया इमाम इब्ने तैमिया) ने इस सिलसिले में दो हदीसों का उल्लेख किया है।

"किसी ने यदि कोई नई बात हमारे इस मामले में पैदा की जो उसमें नहीं तो वह निरस्त होगी" (बुख़ारी 371/1)

"नई बात पैदा करने से बचो, इसलिए कि हर नई बात बिद्अत है और हर बिद्अत गुमराही है।" (अबू दाऊद 279/2)

3-इसे घृणित (मकरूह) कहने वाले दो लेखक, मौलाना मुहम्मद इक़्बाल क़ासमी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी है। मौलाना मुहम्मद इक़्बाल क़ासमी ने 'सम्मान में अतिशयोक्ति' के आधार पर घृणित बताया है और मौलाना ज़फ़र आलम नदवी ने इसे लाभहीन सम्मान बताया है, जो शरीअत की आत्मा के विरुद्ध है।

4-शर्त के साथ अवैध बताने वाले तीन उलमा हैं: मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी।

इन उलमा के अनुसार यदि सलामी के समय सर झुकाया जाये या हाथ जोड़ा जाये तो अवैध है अन्यथा वैध है, स्पष्ट रहे कि सलामी के समय सर झुका हुआ नहीं होता बल्कि सर ऊपर की तरफ़ और निगाह झण्डे की तरफ़ होती है और एक हथेली कान के पास होती है।

5-मजबूरी की स्थिति में, और हितों को देखते हुए वैध ठहराने वाले (15) उलमा हैं:

मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना मुहम्मद सलमान (गुजरात), मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन (आसाम), मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली, मौलाना राशिद हुसेन नदवी, सैयद असरारुल हक़ सबीली, मौलाना साबित शमीम रशादी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद (भागलपुरी), मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना उबैदुल्लाह (लाहौर)।

मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली, मौलाना सलमान, राशिद हुसैन नदवी, और मौलाना मुहम्मद इरशाद भागलपुरी ने फ़तावा रहीमिया का हवाला दिया है। फ़तावा रहीमिया के वाक्य यें है; "यह केवल राजनीतिक बात है और सरकारों का तरीक़ा है, इस्लामी सरकारों में भी होता है। यदि लड़ाई झगड़े का सन्देह हो तो अनचाहे करने में कोई पकड़ नहीं होगी, इन्शाअल्लाह। (फ़तावा रहीमिया 288/6)

मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद, मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह साहब का फ़तवा प्रस्तुत किया है जो 1939 में साप्ताहिक 'नक़ीब' पटना में प्रकाशित हुआ था। फ़तवा के मूल शब्द इस प्रकार हैं: "झण्डे की सलामी मुस्लिम लीग भी करती है और इस्लामी देशों में भी होता है। सलामी सैनिक कार्य है इसमें सुधार हो सकता है इसे सम्पूर्ण रूप से अनेकश्वरवाद कहना उचित नहीं है। (नकीब,पटना, जुलाई 1939)

मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन और मौलाना साबित शमीम रशादी ने फ़िक़्ही नियमों ''हाजत, ज़रूरत के स्थान पर उतर आती है'', और ''हाजतें (आवश्यकताएं) मना की हुई चीजों को वैध कर देती हैं" प्रस्तुत किये हैं। मौलाना मुहम्मद इरशाद भागलपुरी ने फ़िक़्ह के नियम "اذاضاق الامر اتسع" जब मामला तंग हो तभी विस्तार आता है"

6-सत्तरह उलमा ने झण्डे की सलामी को पूर्ण रूप से वैध ठहराया है वे निम्नलिखित हैं:

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना इब्राहीम, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही,

मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपूरी, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी, मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, सैयद शकील अहमद अनवर।

इस गिरोह ने झण्डे को एक राजनीतिक रिवाज बताया है इसका इबादत से कोई सम्बन्ध नहीं है। मुफ़्ती महबूब अली वजीही ने लिखा है कि झण्डा स्वयं आदर योग्य नहीं है केवल इसकी सलामी देश के सिद्धान्त और क़ानून के आदर को व्यक्त करने के लिए रखी गई है ताकि यह मालूम हो कि इस देश का आदर सम्मान हमारे दिलों में है। इस नीयत से यदि झण्डे को सलामी दी जाये तो कोई बुराई नहीं है।

क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल ने लिखा है कि माननीय सहाबा ने इस्लामी झण्डे को अन्तिम समय तक गिरने नहीं दिया। आदर स्वरूप हर राष्ट्र को अपना झण्डा प्यारा है। स्वयं देशवासी मुसलमान अथवा ग़ैर मुस्लिम उनके विचार में झण्डे की सलामी और उसका आदर, उसकी सुरक्षा की दुआ, इसके आदर में कोई बुराई नहीं है इसलिए इसमें कोई मतभेद नहीं होना चाहिए। मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही का कहना है कि एक मुसलमान की ओर से ऐसे अवसर पर नीयत यह होनी चाहिए कि उसका देश जिसका यह झण्डा है वह ख़ुश व हरा भरा रहे, मुसीबतों और कठिनाइयों से सुरक्षित रहे। ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक देश में होने की दशा में अल्लाह इसके वासियों को इस्लाम की तरफ़ होने और इस्लाम की तरफ़

झुकने का अवसर प्रदान करे। "अमल का दारो मदार नीयतों पर है" के अनुसार इस नीयत से झण्डे को सलामी दी जा सकती है। मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने लिखा है कि सारी दुनिया के मुसलमान झण्डे को सलामी देते हैं उन्होंने इस हदीस "जिसको मुसलमान अच्छा समझें वह अल्लाह की दृष्टि में अच्छा है" से दलील दी है।

इनके अतिरिक्त मौलाना अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपूरी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी, ने मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह के फ़तवा का उल्लेख किया है। मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी ने कुल हिन्द मजलिसे तामीर-ए-मिल्लत हैदराबाद के सेमीनार का प्रस्ताव नक़ल किया है, यह सेमीनार जून 2000 में हैदराबाद में "ग़ैर मुस्लिम देशों के मुसलमानों की समस्याएं" के विषय पर आयोजित हुआ था। प्रस्तुत समस्या से सम्बन्धित उसका प्रस्ताव इस तरह है "राष्ट्र ध्वज को सलामी देना और राष्ट्र गान के समय खड़ा होना इबादत व बन्दना की श्रेणी की बात नहीं, बल्कि देश से सम्बन्ध और प्रेम की एक निशानी समझी जाती है, इस पहलू से इसकी गुंजाइश है लेकिन यह इस्लामी मानसिकता से मेल नहीं खाता है। (मासिक अर्रशाद, आज़मगढ़ नवम्बर 2000)

इस प्रकार यदि देखा जाये तो लेखकों में दो तरह के विचार पाये जाते हैं: एक विचार यह है कि झण्डे को सलामी देना किसी भी अवस्था में वैध नहीं है इस विचार के समर्थक दस उलमा हैं जो इस प्रकार हैं:

मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम

क़ासमी, मौलाना नियाज़ अहमद मदनी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी।

शेष 37 उलमा ने किसी न किसी दशा में सलामी देने को वैध ठहराया है, एक लेखक डा. सैयद क़ुदरतुल्लाह बाक़वी ने इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपने विचार का उल्लेख नहीं किया है।

अन्त में एक स्पष्टीकरण यह है कि झण्डा फ़हराना और झण्डे की सलामी वास्तव में एक राजनीतिक व सरकारी काम है लेकिन देश के बहुसंख्यक वर्ग ने इस कार्य को शिर्क के रंग में रंग दिया है। कुछ स्थानों में ज़मीन पर भारत का नक्शा बनाया जाता है, उसके बीच में झण्डे की लकड़ी गाड़ दी जाती है, किसी पंण्डित के द्वारा अगरबत्ती जलाई जाती है, नारियल फोड़ा जाता है, नारियल के पानी का छिड़काव, भारत के नक़्शे, गाँधी की तस्वीर, और उस झण्डे पर किया जाता है, गाँधी जी के माथे पर लाल टीका लगाया जाता है, ध्वज फहराने के बाद अन्त में भारत माता की जय का नारा लगाया जाता है। इसे देखते हुए इसे केवल राजनीतिक रीति नहीं कहा जा सकता है और अब तो भारत माता का मंदिर बनाने की बात कही जा रही है।

धारा (ब) में प्रश्न है:

कुछ देशों में राष्ट्रगीत का रिवाज है जिनमें अनेकश्वरवाद वाले विषय सम्मिलत हैं। स्वयं भारत में वन्दे मातरम पढ़ने को कहा जाता है, जिसमें देश की भूमि की पूजा की कल्पना पायी जाती है। क्या मुसलमानों के लिए इस तरह के तरानों का पढ़ना वैध होगा? सारे लेखकों का विचार है कि वन्दे मातरम और उस जैसे अनेकश्वरवाद वाले गीतों का पढ़ना वैध नहीं है।

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी, मौलाना सैयद अमीर हसन गीलानी, मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, और सैयद शकील अनवर ने मजबूरी की स्थिति में वन्दे मातरम पढ़ने की अनुमति दी है, जबकि मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, और मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन ने मजबूरी की स्थिति में भी वन्दे मातरम पढ़ने की अनुमति नहीं दी है। मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, और मौलाना याक़ूब क़ासमी ने इस अवसर पर खड़े होने को अवैध ठहराया है।

मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी ने लिखा है कि इस तरह की कोई बैठक हो और उसमें भाग लेना अनिवार्य हो तो राष्ट्रगान में उल्लेख किये गये वाक्यों को पढ़ने पर सम्पूर्ण रूप से कुफ्र का फ़तवा नहीं लगाया जायेगा, क्योंकि वन्दे मातरम में जहाँ देश की पूजा करने के अर्थ हैं वहीं दूसरे अर्थ भी हैं, अतः पढ़ने वाले का जो उद्देश्य हो उसी के अनुसार उसका आदेश होगा। लेकिन उन्होंने दूसरे अर्थ नहीं बताये हैं, लेकिन इस लेखक का अपना विचार है कि सामूहिक रूप से वन्दे मातरम पढ़ने की मजबूरी हो तो वन्दे मातरम के बजाए दूसरी कविता अर्थात कलिम-ए-तौहीद गुनगुनाना चाहिए और सामूहिक रूप से ऐसे विवादित गीत को राष्ट्रीय गान से निकाल देने की माँग करना चाहिए।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही ने लिखा है कि वन्दे मातरम के विरुद्ध मुस्लिम जनता और नेताओं को संगठित होकर प्रयास करना चाहिए।

इसके लिए समाचार माध्यमों को पूरी ताक़त से प्रयोग करना चाहिए और उसपर पूरा दबाव डालना चाहिए, और जिस स्कूल और कालेज में उसका पढ़ना अनिवार्य हो वहाँ से अपने बच्चे को निकाल लेना चाहिए।

मौलाना नईम अख़्तर क़ासमी ने अनेकश्वरवाद वाले राष्ट्रगान और उसमें भाग लेने वाले दोनों को मना किया है और दोनों को अवैध कहा है। मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी ने संक्षिप्त उत्तर देते हुए लिखा है कि जिस राष्ट्रगान में शिर्क वाले विषय सम्मिलित हों वे मुसलमानों के लिए किसी भी तरह वैध नहीं है। मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी ने वन्दे मातरम को उल्लेख करने के रूप में पढ़ने को उचित बताया है, उन्होंनें दलील में यह आयत प्रस्तुत की है:

"قالوا اتخذ الله ولداً سبحانه"

उन लोगों ने कहा अल्लाह के बेटा है तो वह इससे पवित्र है कि उसका बेटा हो" (सूरः यूनुस-68) में "अल्लाह के बेटा है" एक कुफ़्र वाला वाक्य है मगर क़ुरआन में इसका उल्लेख किया गया है और कुफ़्र का उल्लेख करना कुफ़्र नहीं है।

वन्दे मातरम को अवैध ठहराने वालों ने विभिन्न तर्क दिये हैं। मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी और मौलाना शमसुद्दीन साहब ने कुरआन की ये आयतें प्रस्तुत की हैं;

"قل افغير الله تامرونى اعبد ايها الجاهلون، ولقد اوحى اليك والذين من قبلك لئن اشركت ليحبطن عملك ولتكونن من الخاسرين"

"ऐ अज्ञानियों! क्या तुम मुझे अल्लाह के अतिरिक्त दूसरे की (पूजा) करने का आदेश देते हो, और तुमको वहय् उतारी गई है और तुमसे पहले

के लोगों को उतारी गई है, यदि तुमने शिर्क किया तो तुम्हारे कर्म नष्ट हो जायेंगे और तुम घाटे में रहोगे। (सूर: ज़ुमर: 64,65)

मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी और मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन ने इस आयत का उल्लेख किया है:

"انہ من يشرک بالله فقد حرم الله عليه الجنة وماواه النار وما للظالمين من انصار"

''जो अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराता है तो अल्लाह उसपर जन्नत हराम कर देता है और उसका ठिकाना नरक होता है और अन्याय करने वालों का कोई सहायक नहीं होता है" (सूर: माइदा-72)

मौलाना ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने; "ان الشرک لظلم عظيم" अनेकश्वरवाद बहुत बड़ा अत्याचार है। (सूर: लुकमान 13)

मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने:

"ان الله لا يغفر ان يشرک به ويغفر ما دون ذلک لمن يشاء ومن يشرک بالله فقد ضل ضلالاً بعيدا"

अल्लाह अनेकश्वरवाद करने वालों को क्षमा नहीं करता और इसके अतिरिक्त जिसे चाहता है वह क्षमा कर देता है और जिसने अल्लाह के साथ साझी ठहराया वह गुमराही में बहुत आगे निकल गया।" (सूर: निसा-116)

मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी ने;

"ولئن اتبعت اهواء هم من بعد ما جاءک من العلم انک اذا لمن الظالمين"

यदि आप उनकी इच्छाओं का अनुसरण करेंगे जबकि आपके पास ज्ञान आ चुका है तो आप अत्याचारी होंगे" आयतें प्रस्तुत की हैं। (सूरा: बकरा: 145)

मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना

ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन साहब ने मजबूरी की दशा में वन्दे मातरम पढ़ने की अनुमति दी है और तर्क में यह आयत प्रस्तुत की है:

"الا من اکرہ وقلبه مطمئن بالايما"

सिवाये जिसको मजबूर किया गया और दिल ईमान पर सन्तुष्ट है।

(सूरः नह्ल 106)

धारा (स) का प्रश्न है:

जो संस्थाएं देश वासियों को न्याय देती हैं वे देश में लागू साक्ष्य क़ानून या दूसरे क़ानून के कारण कभी-कभी ऐसे फ़ैसले भी कर सकती हैं जो इस्लामी दृष्टिकोण से ग़लत हों ऐसी स्थिति में यदि दोनों पक्ष मुसलमान हों तो उन्हें क्या रवैया अपनाना चाहिए। जिस पक्ष के लिए फ़ैसला हुआ है उससे उसे लाभान्वित होना चाहिए अथवा नहीं?

सभी लेखकों का विचार है कि जिस पक्ष के लिए ग़ैर शरअी फ़ैसला हुआ है उससे उसको लाभान्वित नहीं होना चाहिए। इस विचार के लिए सभी दलीलें 'शोध लेखों के संक्षेप में आ चुकी हैं। (तद्नुसार देखें)

उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी ने इस विवरण का उल्लेख किया है कि यदि न्यायधीश ने ऐसे साक्ष्यों पर भरोसा किया है जो शरीअत में भरोसे योग्य नहीं और अपर्याप्त हैं, तो यह फ़ैसला दीन के अनुसार लागू नहीं होगा। जैसे सम्पत्ति आदि के मुक़दमें में अदालत वास्तविकता के विरुद्ध फ़ैसला कर दे तो वह चीज़ दावा करने वाले के लिए, वैध नहीं होगी। उनके लिए इस फ़ैसले से

लाभ उठाना वैध नहीं होगा और जिन फ़ैसलों के आधार पर इतने और ऐसे साक्ष्यों पर हों जो इस्लामी शरीअत के दृष्टिकोण में पर्याप्त हों और उस देश के क़ानून की दृष्टि में भी, तो अब ये मुक़दमें दो प्रकार के हैं; एक वह जिनमें केवल शरअी कारण पाया जाना पर्याप्त है न्यायाधीश का आदेश अनिवार्य नहीं जैसे विरासत पाने वाले के लिए विरासत देने वाले की मौत के कारण विरासत पाने वालों का अधिकार, और क्रय-विक्रय के कारण सामान खरीदने वाले का स्वामित्व इत्यादि। ऐसे मामलों में ग़ैर मुस्लिम न्यायधीश का फ़ैसला भी मान्य होगा। लेकिन दूसरे वे मामले जिनमें केवल शरअी कारण का पाया जाना पार्याप्त नहीं बल्कि न्यायधीश का आदेश भी अनिवार्य है उनमें ग़ैर मुस्लिम न्यायाधीश का फ़ैसला मान्य नहीं होगा, जैसे निकाह का निरस्तीकरण, और निकाह के निरस्तीकरण के लिए मात्र कारण का पाया जाना पर्याप्त नहीं, बल्कि न्यायधीश का फ़ैसला अनिवार्य है। इसी प्रश्न का एक भाग यह भी है कि ऐसे मामले में यदि दोनों पक्ष मुसलमान हों तो क्या तरीक़ा अपनाना चाहिए।

इस सिलसिले में मौलाना आमिर ज़फ़र, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना मुहम्मद इरशाद क़ासमी इत्यादि, लगभग सभी उलमा का विचार है कि शरीअत के विरुद्ध फ़ैसले को ठुकरा कर दारुल क़ज़ा या शरअी पंचायत से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम साहब ने लिखा है कि दोनों पक्षों में से कोई न्यायालय में जाये तो वहाॅं मुस्लिम पर्सनल ला को स्पष्ट करना चाहिए, इस पर भी यदि ग़लत फ़ैसला हो तो उसके विरुद्ध अपील की जा सकती है।

सैयद शकील अहमद अनवर ने लिखा है कि देश के क़ानून का पड़ताल करके देखना आवश्यक है कि इनके कौन से भाग इस्लामी शरीअत के प्रतिकूल हैं इन भागों को जनमत के शक्तिपूर्ण प्रदर्शन से बदलवाना चाहिए। न्यायालय के माध्यम से देश के क़ानून के अनुसार जो फ़ैसले हों, वे यदि इस्लामी पर्सनल ला के अन्तर्गत हों और मुस्लिम प्रतिवादी के विरुद्ध हों तो उन्हें मुस्लिम पर्सनल ला के आधार पर पुन: परीक्षण के लिए सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

मौलाना याक़ूब क़ासमी साहब ने लिखा है; शरीअत के विरुद्ध फ़ैसले में दोनों पक्षों और सारे मुसलमानों को इसके विरुद्ध प्रदर्शन करना चाहिए और मुसलमानों के शरअी न्यायधीश (क़ाज़ी) की नियुक्ति के लिए सरकार से मांग करना चाहिए। इस लेखक ने अपने लेख में इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि भारतीय मुसलमानों, विशेष रूप से आल इण्डिया पर्सनल ला बोर्ड को चाहिए कि संविधान के अनुसार देश में अपना दृष्टिकोण एक मान्य धर्म और सांस्कृतिक अस्तित्व के रूप में मनवा लें, अपने परिवारिक क़ानून और धार्मिक मामलों के सिलसिले में देश के संवैधानिक ढांचे के अन्तर्गत धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के वाहक बन जायें। इस तरह संवैधानिक और क़ानूनी व्यवस्था के उपरान्त देश के न्यायालयों में मुस्लिम पर्सनल ला को स्थापित करने की गुंजाइश हो सकती है और इसमें मुस्लिम न्यायधीश और इस्लामी क़ानून के विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा सकती है।

मौलाना अबू बक्र क़ासमी और मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा क़ासमी ने अपने लेख में लिखा है कि ग़ैर मुस्लिम देशों में बसने वाले मुसलमानों पर अनिवार्य है कि वे सरकार से मॉंग करें कि वे किसी दीनदार व नेक

आलिम को मुसलमानों का अमीर (नेता) नियुक्त कर दे या मुसलमान स्वयं किसी नेक परहेज़गार आलिम को अपना अमीर नियुक्त कर लें। वह अमीर मुसलमानों के मुकदमों का फ़ैसला करने के लिए क़ाज़ी की नियुक्ति करे। मौलाना नियाज़ अहमद मदनी ने यह भी लिखा है कि शरई विभागों की स्थापना के साथ-साथ जनता में जागरुकता पैदा की जाये और उनको बताया जाये कि अल्लाह से फ़ैसला कराने और अल्लाह के अतिरिक्त दूसरों से फ़ैसला कराने में क्या अन्तर है? ग़ैर इस्लामी विभागों में मुक़द्मा प्रस्तुत करने में कौन सी शरई बुराई है? कई लेखकों ने ये आयतें प्रस्तुत की हैं:

यदि तुममें किसी मामलें में विवाद हो तो उसे अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की तरफ़ लौटा दो यदि तुम अल्लाह और क़यामत पर विश्वास रखते हो, यह नियति (अन्जाम) के अनुसार भी तुम्हारे लिए बेहतर है। (सूर: निसा-59)

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में बसे मुसलमानों की कुछ समस्याएं

मुहम्मद हिशामुल हक़ नदवी
इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी (भारत)

प्रश्न संख्या (अ)

इस प्रश्न की भूमिका इस तरह बताई गई है:

मुस्लिम उम्मत (सम्प्रदाय) मौलिक रूप से ऐसी उम्मत है जिसको लोगों तक सच्चाई का सन्देश पहुँचाने के लिए भेजा गया है। इसके लिए एक तरफ़ यह बात अनिवार्य है कि स्वयं इस उम्मत की विचारधारा ठीक हो। स्थिति अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो वह दीन के आदेशों पर चलता रहे, दूसरे अल्लाह के बन्दों के साथ उसका सम्बन्ध प्यार व सहानुभूति और भाई चारगी और सहायता का हो।

इस पृष्ठ भूमि में पूछे गये प्रश्नों को चार भागों में बाँटा गया है।

भाग (अ) का विवरण इस प्रकार है:

वर्तमान युग में विश्व स्तर पर इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि लोगों के बीच सांस्कृति और सभ्यता के स्तर पर एकता पैदा हो जाये। सांस्कृतिक विलय के प्रयास में धर्म को सबसे बड़ी बाधा माना जा रहा है। इसलिए पश्चिमी देशों ने इस बात का प्रयास किया कि धर्म को मनुष्य के

सक्रिय जीवन से अलग कर दिया, और कुछ पूजा पद्धतियाँ इस दायरे में बाक़ी रखी गईं। धर्म के प्रभाव को समाप्त करने के लिए दूसरे प्रयास यह किये जा रहे हैं कि कहा जाता है कि दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं, लेकिन मंज़िल एक है। और इन धर्मो की हैसियत एक ही मंज़िल तक जाने वाले भिन्न रास्तों की है। बहुत से मुसलमान बुद्धिजीवी भी इस विचार धारा के दास होते जा रहे हैं। इस्लामी दृष्टिकोण से क्या यह किसी सीमा तक स्वीकार्य है? इस प्रश्न 'समस्या प्रस्तुति' के लिए मुझे 48 लेख प्राप्त हुए हैं। लेखकों के नाम निम्नलिखित हैं:

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मौलाना सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी (सदस्य इस्लामी विचार परिषद, पाकिस्तान), मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी (जमीअत उलमा-ए-पाकिस्तान), मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह अस्अदी, मुफ़्ती ज़ाकिर हसन नोमानी (पेशावर पाकिस्तान), मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह (लाहौर), मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मुफ़्ती सैयद असरारुल हक़ सबीली, क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल (पाकिस्तान), डा. सैयद क़ुदरतुल्लाह बाक़वी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी,

मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी, मौलाना इरशाद क़ासमी, मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना मुहम्मद सलमान खली, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना साबित शमीम रशादी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी, सैयद शकील अहमद अनवर, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना याक़ूब क़ासमी, मौलाना आमिर ज़फ़र।

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए सारे लेखकों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सांस्कृतिक विलय और वहदते अदियान सभी धर्म एक हैं। जैसी छलपूर्ण विचार धाराएं इस्लाम विरोधी और इस्लामी शरीअत की दृष्टि से बेकार और ग़लत हैं। शोध पत्र लेखकों का विचार है कि इस समस्या का सम्बन्ध सीधे तौर पर इस्लामी विश्वासों से है। और यह धारणा वास्तव में इस्लाम को ग़ैर इस्लाम से मिलाने और इस्लाम की विशेष पहचान को मिटाने का अपवित्र प्रयास है, इस लिए इस सम्बन्ध में किसी तरह, किसी समझौते का प्रश्न ही नहीं है।

लेखकों का यह भी विचार है कि मानव समाज से इस्लाम, मात्र एक अल्लाह पर विश्वास (तौहीद) रिसालत संदेष्टा पर विश्वास और अन्य आवश्यक चीजों को मानने की ही माँग नहीं करता, बल्कि यह दूसरे धर्मों पर इस्लामी विश्वास और इस्लामी शरीअत की बड़ाई को स्वीकार कराना चाहता है, और इस्लाम को अन्तिम और पूर्ण दीन और स्थायी संस्कृति होने का विश्वास कराना चाहता है। और यह भी चाहता है कि इस्लाम को सच्चा

धर्म और दूसरे धर्मों को ग़लत समझा जाये।

इस सम्बन्ध में लेखकों ने निम्न लिखित आयत को तर्क बनाया है:

"ان الدین عنداللہ الاسلام"

1-अल्लाह की दृष्टि में दीन तो इस्लाम ही है। (सूर: आले इमरान 19) (लेख- मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मौलाना साबित शमीम रशादी, मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी, मौलाना ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मुफ़्ती सैयद असरारुल हक़ सबीली, मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी, मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन)

"الیوم اکملت لکم دینکم واتممت علیکم نعمتی رضیت لکم الاسلام دینا"

2-आज के दिन मैंने तुम्हारे लिए दीन को पूरा कर दिया और अपनी नेमतों को पूरा कर दिया और इस्लाम को दीन के रूप में पसन्द कर लिया। (सूर: माइदा-3) (लेख-मौलाना अबू बक्र क़ासमी)

"ومن یبتغ غیر الاسلام دیناً فلن یقبل منہ وھو فی الآخرۃ من الخاسرین"

3-जो इस्लाम के अतिरिक्त दीन ढूंडता है तो उसे किसी भी तरह स्वीकार नहीं किया जायेगा और आखिरत (प्रणलय) में वह घाटे में रहेगा। (सूर: आले इमरान-85) (लेख- मौलाना राशिद हुसैन नदवी, मुफ़्ती मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह (पाकिस्तान), मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती सैयद असरारुल

हक़ सबीली, मुफ़्ती अस्अद क़ासिम सम्भली, मौलाना मुहम्मद अरशद मदनी, मौलाना इरशाद क़ासमी, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना शम्सुद्दीन)

"وان هذا صراطی مستقیماً فاتبعوه ولا تتبع سبل فتفرق بکم عن سبیله ذلکم وصاکم به لعلکم تتقون"

4-यह मेरा सीधा रास्ता है इसका अनुसरण करो और ऐसे रास्ते पर न चलो जो तुम्हें उसके रास्ते से हटा दे, इस बात की तुम्हें वसीयत की जाती है शायद तुम डरो (सूर: अनआम-154) (लेख- मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली, मौलाना मुहम्मद इक़बाल क़ासमी)

"ومن یساقق الرسول من بعد ما تبین له الهدی ویتبع غیر سبیل المومنین و نوله ما تولی ونصله جهنم وساء ت مصیرا"

5-जो रसूल से झगड़ता है इसके बाद जब कि हिदायत उसके लिए स्पष्ट हो गई, और वह मोमिनों के रास्ते से हट जाता है, और हम उसको झुका देते हैं जिधर वह झुकता है और हम उसको नरक में डाल देंगे जो बुरा ठिकाना है। (सूर: निसा-115) (लेख- मो० राशिद हुसैन नदवी)

"ان الذین یکفرون بالله ورسوله ویریدون ان یفرقوا بین الله رسله و یقولون نومن ببعض نکفر ببعض ویریدون ان یتخذوا بین ذالک سبیلا اولاء ک هم الکافرون حقا۔ واعتدنا للکافرین عذابا مهینا"

6-निस्सन्देह वे लोग चाहते हैं जो अल्लाह और उसके रसूल का इन्कार करते हैं और वे चाहते हैं कि अल्लाह और उसके रसूलों के बीच भेद कर दिया जाये और वह कहते हैं कि कुछ पर हम विश्वास करते हैं और कुछ से हम इन्कार करते हैं और यह चाहते हैं कि इसके बीच एक रास्ता बनाएं वही लोग वास्तव में काफ़िर हैं और काफ़िरों के लिए हमने

नीचा करने वाला कष्ट तैयार कर रखा है। (सूर: निसा-150-151) (लेख-मौलाना राशिद हुसैन नदवी)

"یاایھاالذین آمنوا ادخلوا فی السلم کافۃ"

7-ऐ मुसलमानों इस्लाम में पूरे पूरे दाख़िल हो जाओ। (सूर: बकरा 202) (लेख मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मौलाना साबित शमीम रशादी)

"لکل امۃٍ جعلنا منسکاً ھم ناسکوہ فلا ینازعنک فی الامر وادع الی ربک انک لعلی ھدیً مستقیم ۔ وان جاء لواک فقل الیہ اعملوا بما تعملون۔ اللہ یحکم بینکم یوم القیامۃ فیما کنتم فیہ تختلفون"

8-हर उम्मत के लिए हमने रास्ता तय कर दिया है वे उस पर चलते हैं तुम मामलात में हरगिज़ झगड़ा न करो और अपने पालनहार के ऊपर छोड़ दो, तुम उस समय सीधे रास्ते पर होगे और यदि वे लोग तुमसे झगड़ा करते हैं तो तुम कह दो कि अल्लाह अधिक जानने वाला है, अल्लाह तुम्हारे बीच परलोक के दिन फ़ैसला करेगा जिसमें तुम्हें मतभेद था। (सूर: हज्ज 67-69) (लेख- मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना अबुल आस वहीदी)

"شرع لکم من الدین ما وصی بہ نوحاً والذی او حینا الیک ما وصینا بہ ابراھیم وموسی وعیسی ان اقیموا الدین ولا تتفرقوا فیہ"

9-तुम्हारे लिए उसी दीन का तरीक़ा निर्धारित किया जिसका आदेश उसने नूह को दिया था और जिसे तुम्हारी तरफ वहय् के माध्यम से भेजा है और जिसकी हिदायत हम इब्राहीम, और मूसा और ईसा (अलै०) को दे चुके थे कि तुम इस दीन को स्थापित करो और तुम उसमें बँट न जाओ। (सूर: शूरा-13) (लेख-मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी)

"وانزلنا الیک الکتاب بالحق مصدقاً لما بین یدیہ من الکتاب مھیمناً

عليه فاحكم بينهم بما انزل الله ولا تتبع اهواء هم ما جاء ک من الحق لكل جعلنا منكم شرعة ومنهاجاً"

10-हमने तुम्हारी तरफ़ यह किताब भेजी जो सच्चाई को लेकर आई है और इस किताब में जो कुछ उसके आगे मौजूद है उसका सत्यापन करने वाली है और उसकी रक्षक है, तो तुम अल्लाह की तरफ से दिए गये नियम के अनुसार उनके बीच फ़ैसला करो और जो कुछ तुम्हारे पास आया है उसको छोड़कर उनकी इच्छाओं के पीछे न चलो हमने तुम इन्सानों में हर एक के लिए एक शरीअत और एक रास्ता निर्धारित किया है। (सूरः माइदा-48) (लेख अबुल आस वहीदी)

"الا لله دين الخالص"

11-क्या अल्लाह के लिए ही ख़ालिस दीन नहीं है? (सूरः ज़ुमरः 3) (लेख-क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम)

"ودو الو تدهن فيدهنون"

12-लोग चाहते हैं कि आप झुकें तो वे भी नर्म पड़ जायेंगे। (सूरः क़लम-9) (लेख- मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लहाही)

"ومارسلناک الا كافة للناس بشيراً ونذيراً"

13-हमने तुमको पूरी दुनिया के लोगों के लिए शुभ सूचना देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है (सूरः सबा 28) (लेख- मौलाना मुहम्मद उबैदुल्लाह पाकिस्तान)

"واذا اخذالله ميشاق النبئين لما آتيتكم كتاباً وحكمة ثم جاء كم رسول مصدق لما معكم لتؤمنن به ولتنصرنه"

14-याद करो जब अल्लाह ने पैग़म्बरों से वचन ले लिया था कि

आज मैने तुम्हे किताब और विवेक से मालामाल किया कल यदि कोई दूसरा रसूल तुम्हारे पास उसी का सत्यापन करता हुआ आये जो तुम्हारे पास है तो उसपर ईमान लाना होगा और तुम्हें उसकी मदद करनी होगी। (सूरः आले-इमरान-81) (लेख- मौलाना मोहम्मद उबैदुल्लाह)

"هوالذی ارسل رسوله بالهدی ودین الحق لیظهره علی الدین کله ولو کره المشرکون"

15- उसने अपने रसूल को हिदायत और सच्चे दीन के साथ भेजा ताकि सारे दीन (धर्मों) पर वह छा जाये चाहे शिर्क (अनेकश्वरवाद) करने वालों को यह बुरा लगे। (सूरः तौबा-33) (लेख- मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी)

"لکم دینکم ولی دین"

16-तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है और मेरे लिए मेरा दीन है। (सूरः काफ़िरून-6) (लेख- क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम, मौलाना अबू बक्र क़ासमी, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

"ودوالو تکفرون کما کفروا فتکونون سواء فلا تتخذوا منهم اولیاء"

17- काफ़िर चाहते हैं कि तुम भी काफिर हो जाओ जैसे वे हैं ताकि सब बराबर हो जायें तो उनमें से किसी को अपना दोस्त न बनाओ। (सूरः निसा-88) (लेख- मौ० अख़्तर इमाम आदिल)

"انمااتخذ تم من دون الله اوثاناً مودة بینکم فی الحیوۃالدنیا"

18-तुमने अल्लाह को छोड़कर मूर्तियों को अपने बीच प्यार का माध्यम बना लिया है सांसारिक जीवन में (सूरः अनकबूत-24) (लेख-मौलाना अख़्तर इमाम आदिल)

19- जिसने किसी क़ौम से समानता अपनाई वह उन्हीं में से है (अबू दाऊद-किताबुल लिबास) (लेख- क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम, मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही)

20-यहूद का विरोध करो और शिर्क करने वालों का विरोध करो (जीवन प्रणाली में अन्तर रखो) (जामेअ सग़ीर 226) (लेख-क़ारी ज़फ़रुल इस्लाम, और मौलाना इरशाद क़ासमी)

21-बनी इसराईल 72 गिरोहों में बट गये और हमारी उम्मत के 73 गिरोह होंगे। सबके सब नरक में होंगे सिवाय एक के। लोगों ने पूछा वह गिरोह कौन है, आप ने फरमाया जिस पर मैं और मेरे साथी (सहाबी) होंगे। (तिर्मिजी, मिश्कात) (लेख- सैयद अमीर हुसैन गीलानी, मुहम्मद इक़बाल क़ासमी)

22-क़सम उस हस्ती की जिसके हाथ में मुहम्मद (सल्ल०) की जान है अगर मूसा तुम्हारे सामने आ जाते तो तुम उनकी पैरवी कर लेते और मुझको छोड़ देते, तो तुम सीधे रास्ते से भटक जाते, और यदि मेरी नुबुव्वत में वह जीवित होते तो मेरी पैरवी करते। (दारमी, मिश्कात 68/1) (लेख- मौलाना अख़्तर इमाम आदिल और मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली)

मौलाना अरशद मदनी ने निम्नलिखित हदीसों को तर्क बनाया है:

1-नबी एक विशेष क़ौम के लिए भेजा जाता था और मैं तमाम दुनिया के लिए भेजा गया हूँ। (बुख़ारी, फ़तहुल बारी)

2-मैं लाल और काले सबके लिए भेजा गया हूँ।

(मुस्लिम- किताबुल मसाजिद)

3-जिसने हमारे मामले में कोई नई चीज़ पैदा की उसका सम्बन्ध हमसे न हो तो वह निरस्त हो जायेगी। (बुख़ारी, किताबुल-सुलह)

4-क़सम है उस हस्ती की जिसके हाथ में मुहम्मद (सल्ल०) की

जान है, इस उम्मत में से जिसने मेरी बात न सुनी चाहे वह यहूदी हो या ईसाई हो और इसी हालत में मर जाये और जो चीज़ मुझ पर उतारी गई है उस पर ईमान न लाये तो नरक में जायेगा। (मुस्लिम, किताबुल ईमान)

मुफ़्ती असरारुल हक़ सबीली ने इस हदीस को तर्क बनाया है: अब्दुल्लाह इब्ने मसूद (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक लकीर खींची फिर कहा यह अल्लाह का रास्ता है, फिर अपने दाएं और ,बायें लकीर खींची और 'ये रास्ते हैं' और हर रास्ते पर शैतान तुम्हें बुला रहा है। और आपने पढ़ा 'यह मेरा सीधा रास्ता है तुम इसकी पैरवी करो' (अहमद, नसाई, दारमी, मिश्कात 58,59)

मुफ़्ती फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी और मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने वहदते दीन (दीन एक ही है) को इस्लाम का उद्देश्य बताते हुए निम्न लिखित आयत को तर्क बनाया है:

"كان الناس امة واحدة فبعث الله النبيين مبشرين ومنذرين انزل معهم الكتاب بالحق ليحكم بين الناس فى ما اختلفوا فيه"

जो शुभ सूचना देते और लोगों को डराते थे और उनके साथ सच्ची किताब भेजी ताकि लोगों में विवाद के अवसर पर फ़ैसला करें।

(सूर: बक़रा-213)

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल और मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी ने भी इस आयत से वहदते अदयान (अर्थात सब दीन को एक बनाया जाये) को ग़लत बताया है।

मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी ने इस संदर्भ में उम्मत की दो क़िस्मों का उल्लेख किया है उम्मते इजाबत (दावत देने वाली) उम्मते

दावत को स्वीकार करने वाली उम्मत बताया है, और लिखा है कि उम्मते इजाबत का कर्त्तव्य है कि उम्मते दावत को एक दीन की दावत दे, और दावत का आधार नेकी फैलाना और बुराई को मिटाना और एक अल्लाह पर विश्वास हो। क्योंकि इनके कथनानुसार नबियों के दीन की दावत का आधार यही तीन बाते थीं, इसलिए आज एकता का आधार यही तीनों चीजें होंगी। अपने विचार के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित आयत का उल्लेख किया है:

"كنتم خيرامةٍ اخرجت للناس تامرون بالمعروف وتنهون عن المنكر وتومنون بالله"

तुम बेहतरीन गिरोह हो, तुम लोगों के लिए लाये गये हो, भलाई का आदेश देते हो बुराई से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान लाते हो। (सूर: आले इमरान-110) मौलाना ने इस सम्बन्ध में निम्न लिखित आयत को तर्क बनाते हुए नबियों की दावत के तरीक़े पर प्रकाश डाला है:

"ادع الى سبيل ربک بالحكمة والموعظة الحسنة وجادل هم بالتى هى احسن"

अपने पालन हार के रास्ते की तरफ़ विवेक और नसीहत के साथ बुलाओ और उनसे बेहतर तरीक़े से तर्क करो। (सूर: नहल-125)

मौलाना राशिद हुसैन नदवी और मौलाना सैयद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी वहदते अदियान पर आधारित एकता को बनावटी एकता कहते हैं, सैयद सियालवी का विचार है कि एक अल्लाह के मानने वाले और तीन अल्लाह के मानने वाले और अल्लाह को न मानने वाले इन सब का वास्तविक लक्ष्य एक कैसे हो सकता है? उन्होंने कम्यूनिस्टों की अधर्मिता,

और अल्लाह के इन्कार पर आधारित एकता को निरस्त करते हुए लिखा है कि हर तरह के अत्याचार के बावजूद यह एकता सत्तर वर्ष से अधिक न बढ़ सकी और दूसरी तरफ इस्लाम की स्थापित की हुई एकता पिछली 14 सदियों से किसी सत्ता के बिना केवल आध्यात्मिक शक्ति के सहारे बची हुई है।

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही और मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने यह विचार प्रकट किया है कि धर्म को अकारण इन्सानों के बीच होने वाले मतभेदों और झगड़ों का आधार बता दिया गया है क्योंकि इन दोनों उलमा के कथनानुसार इस तरह के मतभेद तो एक धर्म के मानने वालों के बीच भी पाये जाते हैं। मौलाना राशिद हुसैन नदवी ने दो विश्व युद्धों ईराक़ ईरान युद्ध, दक्षिण और उत्तरी कोरिया के बीच टकराव, अफ़्रीक़ा अमरीका में काले गोरे की लड़ाई और भारत में दलितों और कथित उँची जातियों की लड़ाई का उल्लेख किया है। मौलाना के कथनानुसार यह तमाम युद्ध एक धर्म के मानने वालों के बीच हुए और वे आज भी जारी हैं। डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही के अनुसार इसका कारण निहित स्वार्थ और शोषण है न कि धर्म। इनका विचार यह है कि लोगों को अपने विश्वास और विचार धारा पर रहते हुए मानव एकता के आधार तलाश करना चाहिए।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही, मुफ्ती ज़ाकिर हसन नोमानी, मौलाना सैयद अमीर हुसैन गीलानी, सैयद शकील अहमद अनवर, डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही ने वहदत-ए-अदियान के साथ-साथ धर्म को इन्सान का व्यक्तिगत मामला ठहराने और इसको सामाजिक जीवन से अलग थलग करने की आलोचना की है और इस धारणा को नकारते हुए मौलाना मुहम्मद शमसुद्दीन

और शकील अहमद अनवर ने इस्लाम की विश्व स्तरीय हैसियत, व्यक्ति और समूह, समाज व सरकार के बारे में उसकी दी गई स्पष्ट शिक्षाएं, नियम, रीति और जीवन प्रणाली पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है।

कुछ शोध पत्र लेखकों ने वहदते अदियान की विचार धारा के जन्म और उसके रिवाज पाने के कारणों पर प्रकाश डाला है। अतः सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी ने इस विचार धारा को हिन्दू दर्शन (Phylosophy) की पैदावार बताया है, जबकि सैयद शकील अहमद अनवर ने सांस्कृतिक विलय के दृष्टिकोण को, राष्ट्रवाद का नतीजा बताया है। मौलाना अबुल आस वहीदी और मौलाना नियाज़ अहमद मदनी ने तथाकथित बुद्धिजीवियों के साथ-साथ सूफ़ीवाद को भी इस विचार धारा को फैलाने का जिम्मेदार ठहराया है।

वहदते-अदियान के दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए मौलाना साबित शमीम रशादी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, और मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी ने इस्लाम के अतिरिक्त मामलों में हस्तक्षेप न करने के इस्लामी सिद्धान्तों की चर्चा की है। इन उलमा ने इस सिलसिले में आयत "दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं है "لا اكراه فى الدين" को तर्क बनाया है। मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी और मौलाना मुस्तफ़ा क़ासमी ने निम्नलिखित आयत को तर्क बनाया है:

"وقل الحق من ربكم من شاء فليؤمن ومن شاء فليكفر"

कह दीजिए सच्चाई तुम्हारे रब (पालनहार) की तरफ़ से आ गई है अब जो चाहे ईमान लाये और जो चाहे इन्कार करे। (सूर: कहफ़ 29)

मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी ने इस आयत को तर्क बनाया है।

"لا تسب الذين يدعون من دون الله فيسب الله عدواً بغير علم"

उन्हें गालियॉं मत दो जिनको ये लोग अल्लाह के सिवा पुकारते हैं कहीं ऐसा न हो कि ये (शिर्क से आगे बढ़कर) अपनी अज्ञानता के कारण अल्लाह को गालियॉं देने लगें। (सूर:अनआम-108)

इस पृष्ठभूमि में मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी ने इस्लामी सरकारों के सद्भाव और धार्मिक स्वतन्त्रता का शानदार उल्लेख करते हुए निम्नलिखित वाक्य नक़ल किया है।

1-"ये सभी देश ताक़त से जीते गये है, इनके वासी अपने-अपने धर्म पर चलते रहते थे"। (किताबुल अम्वाल)

2-"ये लोग अपनी गवाही के क़ानून, विवाह, आपसी मतभेद, विरासत के क़ानून और दूसरे सभी पर्सनल ला (व्यक्तिगत क़ानून) में स्वतंत्र होंगे।

3-इतिहास की पुस्तक तबरी भाग-4 के वाक्य इस तरह हैं: "इनके और उनके क़ानून के बीच हस्तक्षेप न किया जाये यह सारा विवरण इस विषय के सिलसिले में प्रकट किये जाने वाले लेखकों के विचारों से सम्बन्धित था।

मेरा अपना विचार है कि इस समय भूमण्डलीकरण की पृष्ठभूमि में इस विषय पर और अधिक विस्तार से चर्चा की आवश्यकता है। इस समय स्थिति यह है कि "संस्कृतियों के बीच टकराव (Clash of Civilisation) या संवाद और सह अस्तित्व (Co Existence) जैसे विषयों पर विश्व स्तरीय चर्चाएं हो रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रो0 सैमुएल हँटिंग्टन की किताब 'सांस्कृतिक टकराव' ने विशेष रूप से 11 सितम्बर 2000 के बाद वातावरण को अधिक गरमा दिया है। हज़ारों लेख इसके बाद अख़बारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और अभी तक यह सिलसिला जारी है।

संस्कृतियों का ढांचा और उनका विकास और विभिन्न सभ्यताओं के बीच आपसी प्रभाव और इन पहलुओं के सिलसिले में इस्लाम के दृष्टिकोण को दलील के साथ विस्तृत रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

मैं समझता हूँ कि इन नाज़ुक हालात में और विषय के फैलाव और इसकी विभिन्न सतह ही वास्तव में इसके चुनाव का कारण हैं। मुझे आशा है कि हम इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए इस विषय के सभी बिन्दुओं को प्रस्तुत करने में सफल हो गये तो इससे दूसरी क़ौमों और धर्मों से हमारे संवाद की नीति स्पष्ट हो जायेगी और इसका तरीक़ा भी निर्धारित हो जायेगा। हमें खुशी है कि कुछ पत्र लेखकों ने प्रश्न की परिधि में रहते हुए ही सही उन पहलुओं की तरफ संक्षेप में संकेत दिये हैं।

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ समस्याएं

ज़फ़रुल इस्लाम आज़मी

प्रश्न संख्या - (ब,स,द)

इस लेखक को प्रश्न-4 के भाग ब,स,द से सम्बन्धित समस्या को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया है, भाग ब की रिपोर्ट यह है:

दुनिया के कुछ भागों में ग़ैर मुस्लिमों का एक वर्ग दूसरे वर्ग को अन्याय व शोषण का शिकार बनाये हुए है, भारत में बहुत बड़ी आबादी जो दलित कही जाती है, सदियों से हिन्दुओं में ऊँची जाति समझे जाने वाले वर्ग की बर्बरता का शिकार है, जिनको राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा बनाये रखने का संगठित और योजनाबद्ध प्रयास होता रहा है। इसी तरह कुछ देशों में काले और गोरे के बीच भेद-भाव जारी है। ऐसी स्थिति में पीड़ित वर्ग के साथ मुसलमानों का क्या व्यवहार होना चाहिए? क्या मुसलमानों पर मानव भाईचारा के आधार पर उनकी सहायता करना एक धार्मिक कर्त्तव्य है या चूँकि सत्ता उनके हाथ में नहीं है इस लिए इस सिलसिले में वे जिम्मेदार नहीं हैं?

शोध पत्र लेखकों के विचारों से निम्नलिखित बिन्दू सामने आते हैं:

1-ऐसी स्थिति में पीड़ित की सहायता बिना किसी शर्त के की

जायेगी। 2-शर्त के साथ की जायेगी। 3-उनकी सहायता धार्मिक कर्त्तव्य है। 4-नैतिक कर्त्तव्य है। 5-सहायता न करने की स्थिति में वे उत्तरदायी होंगे। 6-उत्तरदायी नहीं होंगे। 7-इस सम्बन्ध में ख़ामोश हैं। 8-पीड़ित और अत्याचारी को सच्चाई की तरफ बुलाएंगे। 9-सच्चाई की दावत के साथ सहायता करेंगे।

जिन लेखकों ने बिना शर्त सहायता का विचार दिया है उनके नाम निम्न हैं;

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही, मौलाना अबू बक्र क़ासमी (दरभंगा) मौलाना अबुल आस वहीदी, मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना अरशद मदनी, मौलाना सैयद असरारुल हक़ सबीली, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना शमसुद्दीन (आसाम), मुफ़्ती ज़ाकिर हुसैन (पेशवर), मौलाना फ़ुज़ैलुर्रहमान हिलाल उस्मानी, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मुफ़्ती महबूब अली वजीही, मुफ़्ती इरशाद अहमद क़ासमी, मौलाना उबैदुल्लाह जामिया अशरफ़िया (लाहौर), मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही, मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी, मौलाना उबैदुल्लाह अस्अदी, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल (पाकिस्तान), डा. सैयद कुदरतुल्लाह बाक़वी, मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही (अलीगढ़), सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी, सैयद शकील अहमद अनवर, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी, मौलाना मुहम्मद ज़फ़र आलम नदवी, मौलाना आमिर ज़फ़र (मऊ)।

अधिकतर लेखकों ने पवित्र कुरआन की इन आयतों "अल्लाह तुम्हें उनके सहयोग से नहीं रोकता जिन्होंने तुम्हें घरों से नहीं निकाला.........", "ऐ लोगो तुम्हें हमने एक ही मर्द औरत से पैदा किया........", "अल्लाह इस बात

को पसन्द नहीं करता कि कोई बुरी बात करे सिवाय जिस पर अत्याचार हुआ हो.......", "हमने आदम (अलै0) के बेटों को बड़ाई दी है...........", को अपनी दलील बनाया है और इसी तरह "अपने भाई की मदद करो चाहे वह अत्याचारी हो या पीड़ित", और तुममें से जो कोई बुराई को देखे तो.........., आदि हदीसों को दलील के रूप में प्रस्तुत किया है। मौलाना आमिर ज़फ़र साहब ने दलील में क़ुरआन की आयत "हमने इन्सान को उसके माँ-बाप के बारे में वसीयत की.......", प्रस्तुत किया है, जब कि मौलाना अबू बक्र क़ासमी ने सूर: माइदा की आयत के साथ हदीस 'अपने भाई की मदद करो चाहे वह अत्याचारी हो या पीड़ित' प्रस्तुत किया है। मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही ने "खाना खिलाओ" और मौलाना अख़्तर इमाम आदिल ने तबरानी, बज़्ज़ार और मजमउज़्ज़वाइद के हवाले से लिखा है कि हज़रत इब्ने उमर ने फ़रमाया कि मैंने एक दिन प्रसिद्ध अन्यायी हज्जाज का भाषण सुना उसमें उसने बहुत सी ग़लत बातें कहीं, मैने सोचा कि मैं उसका सुधार करुँ और उसकी ग़लती पर उसका ध्यान आकर्षित करूं तो मुझे रसूलुल्लाह का कथन याद आया "मोमिनो के लिए उचित नहीं है कि वह अपने आपको अपमानित करें" मैंने हुज़ूर से कहा था कि स्वयं को अपमानित करने का क्या अर्थ है? आपने फ़रमाया, अपने को ऐसे ख़तरे में डालना जिससे बचने की ताक़त न हो, आपने और भी तर्क (मजमउज़्ज़वाइद) (234/6) और किताबुल ख़िराज (अबू यूसुफ़) (316/1) प्रस्तुत किए हैं। डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी (भोपाल), मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही (गुजरात), और मौलाना अबुल आस वहीदी ने अपने दावे पर कोई तर्क नहीं प्रस्तुत किया है।

मौलाना सुल्तान अहमद इस्लाही (अलीगढ़) ने सुनन अबू दाऊद की प्रसिद्ध हदीस "कमज़ोरों में मुझे दिलचस्पी लेने दो, इसलिए कि आप लोगों को कमज़ोरों के कारण ही रोज़ी दी जाती है और मदद मिलती है, और सैयद ज़ाकिर हुसैन ने सीरत इब्ने हिशाम के वाक्य, मैने उन दोनों की दिल जोड़ने के लिए मदद की ताकि वे इस्लाम लाएं" प्रस्तुत किया है, और मौलाना इक़बाल अहमद क़ासमी ने "जब लोग अन्यायी को देखें तो उसके हाथ से कुछ न लें हो सकता है अल्लाह उनको उसके कारण मुसीबत में डाल दे (मिश्कात), मौलाना सादिक़ मुबारकपुरी ने बुख़ारी की हदीस "हमें सात चीजों का आदेश दिया और सात चीजों से रोका, तो बीमार को देखने का उल्लेख किया ....पीड़ित की सहायता" नक़ल की है। मौलाना इरशाद क़ासमी ने रद्दुल मुहतार का एक वाक्य यदि मुसलमान काफ़िर (युद्ध करने वाले) या ज़िम्मी को देता है तो कोई बुराई नहीं है। मुफ़्ती ज़ाकिर हुसैन पेशावरी ने, वैश्या का कुत्ते को पानी पिलाने को अपना तर्क बनाया है, मौलाना अरशद मदनी का तर्क भी इसी तरह है। जब समझौतों के अन्तर्गत बनू खुज़ाअ: मुसलमानों के बनू बक्र, क़ुरैश के दोस्त बने और बनू बक्र ने बनू खुज़ाअ: पर आक्रमण कर दिया और क़ुरैश ने उनके हथियार और योद्धाओं के माध्यम से सहायता की और समझौते के विरुद्ध बनू खुज़ाअ: के साथ अत्याचार और बर्बरता में भागीदार हो गये तो आप (सल्ल०) ने बनू खुज़ाअ: की सहायता की थी।

जिन लेखकों ने शर्त के साथ सहायता देने का विचार अपनाया है, अर्थात मुसलमानों को यदि उनकी मदद करने पर हानि का सन्देह हो, तो सहायता करनी चाहिए, उनके नाम निम्नलिखित हैं।

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान क़ासमी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना ख़ुरशीद अहमद आज़मी, मुफ़्ती अब्दुर्रहीम क़ासमी, मौलाना सलमान (गुजरात), मौलाना राशिद हुसैन नदवी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी।

मौलाना अब्दुर्रशीद क़ासमी लिखते हैं: बिना इसकी चिन्ता के कि मुसलमान सत्ता में हैं या नहीं, मगर मौजूदा राजनीति पर भी नज़र रहनी चाहिए कि ऊँची जाति वाले हमारी सहायता का उद्देश्य कुछ और न समझ लें। इसी प्रकार मौलाना इक़बाल अहमद क़ासमी लिखते हैं, "सहायता तो करनी चाहिए मगर आगे-आगे नहीं रहना चाहिए और यह भी ध्यान में रहे कि ऊँची जाति वाले मुसलमानों के विरोधी हो जायें और मुसलमानों को हाानि पहुँचाने पर न उतारू हो जायें और ग़रीबों को सहायता देकर इतना शक्ति शाली न बना दिया जाये कि कल वे मुसलमानों पर अत्याचार करना शुरू कर दें। और मौलाना मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी साहब लिखते हैं कि राजनीतिक आन्दोलन और उपाय के माध्यम से पिछड़े वर्ग को उनके अधिकार दिलाएं । उद्देश्य के अनुसार ये तीनों विचार लगभग एक ही हैं।

इस सहायता को कुछ उलमा ने नैतिक कर्त्तव्य बताया है। मौलाना इब्राहीम गजिया फ़लाही (गुजरात), इसे नैतिक कर्त्तव्य मानते हैं, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी के लेख से कोई स्पष्ट पहलू नहीं निकलता क्योंकि उन्होंने सबसे पहले लिखा है, मुसलमानों का ग़ैर मुस्लिम वर्ग की सहायता करना धार्मिक कर्त्तव्य नहीं है, फिर वे आगे लिखते हैं जितना सम्भव हो उतनी सहायता करने में कोई हानि नहीं है। यह स्पष्ट नहीं हुआ कि 'जितना सम्भव हो' को कहाँ लागू किया जायेगा, वह नैतिक कर्त्तव्य होगा या

धार्मिक कर्त्तव्य। इन दोनों लेखकों के अतिरिक्त सभी लेखकों ने उसे दीनी कर्त्तव्य माना है।

सहायता न करने की स्थिति में ज़िम्मेदार होने के समर्थक निम्न लिखित हैं:

मौलाना अबू सुफ़ियान मिफ़्ताही, मौलाना अताउल्लाह क़ासमी, मौलाना नियाज़ अहमद अब्दुल हमीद मदनी, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी, मौलाना क़ाज़ी मुहम्मद हारून, मौलाना मुहम्मद ज़फ़र आलम नदवी।

मौलाना सम्भली लिखते हैं कि पीड़ित की सहायता फ़र्ज़्-ए-किफ़ाया (ऐसा कर्त्तव्य जिसे कोई मुसलमान पूरा कर दे तो सबकी तरफ़ से अदा हो जाता है) है न कि फ़र्ज-ऐन (ऐसा कर्त्तव्य जो तमाम मुसलमानों का अलग-अलग अदा करना आवश्यक है) है।

ज़िम्मेदार न होने के समर्थक हैं, मुफ़्ती हबीबुल्लाह क़ासमी, डा. सैयद कुद्रतुल्लाह बाक़वी हैं। मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली सहायता के बजाय, समानता के आधार पर केवल उनको दावत देने के समर्थक हैं। सैयद शकील अहमद अनवर हैदराबाद लिखते हैं, सहायता तो करें, मगर अत्याचारी और पीड़ित दोनों को दावत अवश्य दें, अन्यथा इसके बिना समानता आदि अन्धे कुएं में क़ीमती माल नष्ट करने के समान होगा।

इन तीन के अतिरिक्त शेष सभी लेखकों ने इस सिलसिले में ख़ामोशी अपनाई है। इससे पहले कि मैं कुछ लिखूँ भूमिका के रूप में कुछ बातें सेवा में प्रस्तुत हैं:

1-भारत के हालात दूसरे देशों से भिन्न हैं।

2-साम्प्रदायिक दंगों में लूट मार करने वाले और होते हैं और योजना बनाने वाले और उकसाने वाले और होते हैं।

3-इस दौर में बहुसंख्यक वर्ग स्वार्थी हैं, इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हम पर बर्बरता या हमारे शोषण के समय दलित हमारा साथ देंगे अथवा नहीं।

4-जब दो मुसीबतों का सामना हो तो उनमें से कम हानि वाली को चुना जाये। (अल-इशबाहवन्नज़ायर) का नियम ध्यान में रखा जाये। उपरोक्त बातों की रोशनी में यह कहता हूँ कि ग़रीबों की सहायता तो की जाये लेकिन इस संकल्प के साथ कि हमें पीड़ित का साथ देना है चाहे वह पीड़ित राजनीतिक स्तर पर हो या सामाजिक स्तर पर हो, मुसलमान हो या दलित जैसा भी अन्याय होगा हम दोनों ही इस अन्याय के विरुद्ध उठ खड़े होंगे। इस सम्बन्ध में हिल्फ़ुल फ़ुज़ूल की घटना को भी तर्क के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

भाग (स) की रिपोर्ट इस तरह है:

यह बात स्पष्ट है कि इस्लाम में जन सेवा को बहुत महत्व दिया गया है। और कुरआन व हदीस में भिन्न भिन्न तरीक़ों से इसके लिए उभारा गया है, लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि दूसरे धर्मों से भी मुसलमानों का सम्बन्ध मानवीय भाई चारे पर आधारित है और मुसलमानों से उसका दोहरा सम्बन्ध है: एक मानवीय भाई चारा का दूसरा इस्लामी और इन्सानी भाई चारे का। इन हालात में मुसलमान यदि जनसेवा की कोई संस्था स्थापित करें जैसे अस्पताल इत्यादि तो उन्हें इन संस्थाओं से ग़ैर मुस्लिमों को लाभ पहुँचाने के लिए क्या नीति अपनानी पड़ेगी? इस्लामी दृष्टिकोण से ऐसी

संस्थाओं को मुसलमानों के लिए सीमित रखना उचित है अथवा बिना किसी साम्प्रदायिक भेद भाव के सभी के लिए सेवा व सहायता के लिए दरवाज़ा खुला रखना चाहिए?

इस भाग के अन्तर्गत लेखकों के विचार भिन्न हैं;

1-इन सस्थाओं को बिना किसी धार्मिक भेदभाव के लाभ पहुँचाना चाहिए।

2-इन्हें मुसलमानों के लिए सीमित रखना चाहिए

3-समानता की स्थिति में मुसलमान को वरीयता देनी चाहिए।

मौलाना मुहम्मद इक़बाल लिखते हैं: ''यदि ग़ैर मुस्लिम वर्ग सम्पन्न है तो मुसलमानों के लिए सीमित रखना चाहिए''। मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही लिखते हैं: ''यदि संस्थाओं के साधन सीमित हैं तो उन्हें मुसलमानों के लिए सीमित रखना चाहिए दूसरी दशा में इनके दरवाज़े सबके लिए खुले रखना चाहिए''। वैसे कुछ मुस्लिम संस्थाएं ऐसी अवश्य होनी चाहिए जिनकी केवल धार्मिक के बजाये मानवीय पहचान हो। इन लोगों ने अपने दावे के लिए कोई दलील प्रस्तुत नहीं की है।

समानता की दशा में मुसलमानों को वरीयता के समर्थक:

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही, मौलाना अख़्तर इमाम आदिल, मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, मौलाना खुरशीद अहमद आज़मी, सैयद शकील अहमद अनवर, मौलाना याक़ूब क़ासमी इत्यादि हैं। मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली लिखते हैं: अपनी (ताक़त) के अनुसार शरीअत ने अनिवार्य किया है, इसमें निकटता और आवश्यकता को ध्यान में रखना अनिवार्य है। मौलाना सलमान लिखते हैं: यदि सकत हो तो मुसलमानों को

वरीयता दी जायेगी और यदि सकत न हो तो संस्थाओं को मुसलमानों के लिए सीमित रखना होगा। मौलाना क़ाज़ी मुहम्मद हारून मैंगल और मौलाना अब्दुल लतीफ़ पालनपुरी का विचार है कि यदि गुंजाइश हो तो दोनों के लिए अन्यथा सहायता मुसलमानों के लिए सीमित होगी। मौलाना अरशद मदनी का विचार है कि ग़ैर मुस्लिमों को भी लाभ पहुँचाना चाहिए, शर्त यह है कि युद्ध की स्थिति न हो और मुसलमानों को पलायन पर मजबूर न करते हों। मौलाना मुफ़्ती अस्अद क़ासिम साहब लिखते हैं: इस प्रकार की संस्थाओं के संसाधान का बड़ा भाग मुसलमानों पर ख़र्च किया जाये। मुसलमान दोहरे अधिकार का भागी है, आगे आप फ़रमाते हैं कि व्यवस्था के स्तर पर केवल मुसलमान होंगे। हाँ सेवायें जनता के लिए होंगी। मौलाना मुहम्मद इक़बाल लिखते हैं कि यदि ऐसी संस्थाएं स्थापित हैं जो मुस्लिम व ग़ैर मुस्लिम के लिए खुली हैं तो अच्छा है कि अपनी संस्था को केवल मुसलमानों के लिए ही रखा जाये। क्योंकि सरकारी संस्थाओं में अधिकतर कर्मचारी ग़ैर मुस्लिम होते हैं और वे भेद भाव से काम लेते हैं। यदि पहले से संस्था स्थापित न हो तो देखना चाहिए कि वहाँ रहने वाला ग़ैर मुस्लिम वर्ग सम्पन्न तो नहीं है? यदि सम्पन्न है तो मुसलमानों के लिए सीमित रखना और न रखना दोनों वैध हैं। मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी ख़ामोश हैं। उपरोक्त उलमा के अतिरिक्त तमाम लेखक बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के कल्याण कारी संस्थाओं से सहायता पहुँचाने के समर्थक हैं और तर्क में ये आयतें प्रस्तुत करते हैं "अल्लाह तुम्हें उन लोगों की सहायता से नहीं रोकता जिन्होंने तुम्हें ......" और "अपने ऊपर वरीयता देते हैं हालाँकि उन्हें आवश्यकता है" और हदीस "ज़मीन वालों पर दया करो

आसमान वाला तुम पर दया करेगा" और कुछ लोगों ने समामा बिन असाल के मक्का मुकर्रमा में अकाल के अवसर पर सहायता करने और रसूलुल्लाह (सल्ल०) द्वारा 500 अशर्फ़ियाँ भेजने को तर्क बनाया है।

इस प्रस्तुत कर्त्ता के अनुसार दोनों ही को लाभान्वित होने का अधिकार प्राप्त होगा परन्तु वरीयता मुसलमानों की दी जायेगी, और मुसलमानों की स्थानीय परिस्थितियों में उनकी संस्था और आर्थिक दशा को भी ध्यान में रखना होगा। कुछ कल्याणकारी संस्थाएं ऐसा भी करती हैं कि ग़रीबों के इलाज, दवा के लिए अस्पताल को पर्ची लिख देते हैं कि वे इलाज कर दें और जो व्यय हो उसे संस्था से वसूल कर लें। यदि ये कल्याणकारी संस्थाएं ऐसा करें तो कल्याण कार्य कम हो जायेगा और वरीयता का एक रास्ता निकल सकता है।

भाग (द) की रिपोर्ट इस तरह है:

जब कोई प्राकृतिक आपदा आती है जैसे भूकम्प, बाढ़, संक्रामक रोग, इत्यादि तो उसका प्रभाव समाज में रहने वाले सभी लोगों पर पड़ता है और सभी लोगों को सहायता की आवश्यकता होती है। दुर्भाग्य है कि भारत में कुछ साम्प्रदायिक तत्व ऐसे हैं कि आपदा के समय में भी वह भेद-भाव से काम लेते हैं। मुसलमानों में भी ऐसे संगठन हैं जो ऐसे अवसर पर बचाव कार्य करते हैं। तो ऐसी दशा में देश के भाइयों के साथ मुस्लिम संगठनों को क्या रवैया अपनाना चाहिए?

इस भाग के अन्तर्गत लेखकों के विचार भिन्न हैं:

पहला विचार: अधिकतर लेखक बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के समानता के सिद्धान्त पर सहायता देने के समर्थक हैं। किसी ने दलील में

यह प्रस्तुत किया है “जिसने परेशान हाल को आसानी दी उसे अल्लाह दुनिया व आखिरत में आसानी देगा। (मिश्कात) और किसी ने “खाना खिलाओ का सहारा लिया है। अधिकतर लोगों ने अपने दावे पर कोई दलील नहीं दी है। मौलाना मुहम्मद सादिक़ मुबारकपुरी, मौलाना सलमान और मौलाना क़मरुज़्ज़मां नदवी ने समानता के तौर पर सहायता देने के कथन के बाद मुसलमानों से घृणा करने वाले साम्प्रदायिक लोगों को इससे अलग रखा है। मौलाना याक़ूब क़ासमी लिखते हैं, समानता का रवैया अपनाना चाहिए यदि यह मालूम हो जाये कि ग़ैर मुस्लिम वर्ग अपने वर्ग की सहायता से बे परवाह हो गया है तो ऐसी स्थिति में मुसलमानों को वरीयता देना चाहिए। मौलाना असरारुल हक़ सबीली का विचार है कि भेद भाव से काम न लें परन्तु इतना अवश्य ध्यान में रखें कि जो मुसलमान भेद भाव से पीड़ित हुए हैं उन तक सहायता पहुॅचाने का प्रयास करें। सैयद मुहम्मद ज़ाकिर हुसैन शाह सियालवी फ़रमाते हैं; यदि ग़ैर मुस्लिमों का झुकाव इस्लाम की तरफ़ हो और दावते इस्लामी वहॉ तक पहुॅच सकती हो तो सबसे पहले ग़ैर मुस्लिमों को दिया जाये। मौलाना ने फ़िक्हुल इस्लामी (2009/3) के वाक्य को तर्क बनाया है।

दूसरा मत यह है कि मुसलमानों को वरीयता देनी चाहिए। इस मत के समर्थक निम्न लिखित हैं:

मौलाना आमिर ज़फ़र (मऊ), मुफ़्ती अक़ीलुर्रहमान, मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली, मुफ़्ती जमील अहमद नज़ीरी, डा. सैयद क़ुद्रतुल्लाह बाक़वी, सैयद ख़ुरशीद हसन रिज़वी, मौलाना तंज़ीम आलम क़ासमी। अधिकतर लेखकों ने कोई तर्क नहीं दिया है, तर्क देने वालों में से कुछ ने पवित्र

क़ुरआन की आयतें:

"فاذاالذی بینک وبینه عداوة کانه ولی حمیم"

"वह व्यक्ति जिससे आपकी दुश्मनी है वह ऐसा दिखता है कि आपका क़रीबी दोस्त है"

और तफ़्सीर कुर्तबी व तफ़सीर इब्ने कसीर के वाक्यों को आधार बनाया है। मौलाना राशिद हुसैन नदवी शर्त के साथ वरीयता के समर्थक हैं। वह लिखते हैं; आवश्यकता को देखा जाये, लेकिन मुसलमानों की तरफ ध्यान नहीं दिया जा रहा हो और ग़ैर मुस्लिमों के लिए विभिन्न संगठन हों तो मुसलमानों को वरीयता दी जायेगी। मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली ने "अल -अक्न्दम फ़ल् अक्दम" (वरीयता) और "अल-अहवज फ़ल्-अहवज" (आवश्यकता) के नियम को ध्यान में रखा है।

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही लिखते हैं, 'आपातकालीन स्थिति और त्वरित सहायता में कोई अन्तर न हो' लेकिन स्थायी रूप से बसाने में मुसलमानों को वरीयता दी जायेगी, लेकिन मौलाना इस्लाही ने अपने दावे के लिए कोई दलील नहीं दी है। मौलाना मुफ़्ती इरशाद अहमद क़ासमी लिखते हैं; ज़कात का धन या अधिक धन ज़कात का हो तो मुसलमानों के लिए विशेष होना चाहिए। आपने एक परामर्श दिया है कि चन्दा साधारण पीड़ितों और दलितों के नाम से किया जाये। उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ग़ैर मुस्लिम पर कम से कम और मुसलमानों पर अधिक से अधिक खर्च किया जाये। मुफ़्ती हबीबुल्लाह साहब के अनुसार ज़कात का धन केवल मुसलमानों पर और ज़कात के अतिरिक्त धन दोनों पर खर्च किया जाये परन्तु वरीयता मुसलमानों को दी जायेगी।

तीसरा विचार मौलाना अब्दुर्रहीम क़ासमी का है वह लिखते हैं कि मुसलमानों के चन्दों से मिलने वाला धन केवल ग़रीब मुसलमानों को ही देना आवश्यक है, जिनको दूसरे संगठनों ने वंचित कर दिया है। इसी प्रकार मौलाना मुहीउद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही लिखते हैं कि यदि मुसलमानों की सहायता के लिए मुस्लिम संगठनों के अतिरिक्त कोई दूसरी व्यवस्था न हो और उनके संसाधन भी सीमित हों तो केवल मुसलमानों को विशेष रूप से दिया जायेगा। मुफ़्ती असअद क़ासिम सम्भली के लेख से भी विशेष रूप से पता चलता है, वह लिखते हैं: यदि उनका फण्ड ज़कात से है तो उससे ग़ैर मुस्लिम की सहायता का कोई प्रश्न ही नहीं, और यदि चन्दा से है तो पहले मुसलमानों की सहायता की जायेगी, उनकी सहायता करने से कुछ बचे तो ग़ैर मुस्लिमों के सम्मानित परिवारों की सहायता की जा सकती है। मौलाना मोहम्मद इक़बाल का भी यही विचार है।

प्रस्तुत कर्त्ता के विचार में वरीयता देने वालों की राय में बल महसूस होता है। इस सम्बन्ध में पवित्र कुरआन की आयतें:

"انما المومنون اخوة"

''मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं'' के अतिरिक्त (अल-फ़ारूक़ 203/2) के इस वाक्य को दलील बनाया है। अल्लामा शिब्ली लिखते हैं "उसामा बिन ज़ैद का वेतन जब उनके बेटे अब्दुल्लाह से अधिक निर्धारित किया गया तो अब्दुल्लाह ने आपत्ति जताई, तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने फरमाया कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) उसामा को तुमसे और उसामा के बाप को तुम्हारे बाप से अधिक प्यार करते थे।" यह उचित प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में (बुख़ारी 610/2) पर उल्लिखित हदीस को प्रस्तुत कर दिया जाये।

"हज़रत उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उसामा को एक क़ौम का अमीर बनाया तो क़ौम के लोगों ने उनके अमीर बनायो जाने पर आपत्ति व्यक्त की तो आपने (सल्ल०) फ़रमाया ''तुम लोगों ने उनके अमीर बनने पर आपत्ति की तो इससे पहले तुम्हीं लोगों ने उसके बाप को अमीर बनाये जाने पर आपत्ति की थी, हालाँकि वह अमीर बनने के योग्य थे, जबकि वह लोगों में मुझे सबसे अधिक पसन्द थे और इसके बाद भी वह मेरे सबसे अधिक चहेते व्यक्ति होंगे।" इसी तरह जब मदायन की विजय के बाद माले ग़नीमत (लूट का माल) आया तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने हसन और हुसैन (रज़ि0) को हज़ार-हज़ार दिरहम् दिया और अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह को मात्र पाँच सौ दिरहम् दिये तो हज़रत अब्दुल्लाह ने अपत्ति की और कहा कि जब ये दोनों बच्चे थे तो उस समय मैं रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ लड़ाई में आगे-आगे रहा हूँ। हज़रत उमर (रज़ि०) ने फरमाया: हाँ! उनके बुजुर्गों (पूर्वजों) का जो दर्जा (पद) है वह तुम्हारे बाप दादा का नहीं। (ख़ुलफ़ाये राशिदीन 163)

वरीयता देने वालों के समर्थन में निम्नलिखित हदीस भी प्रस्तुत की जा सकती है:

"मैं रसूलुल्लाह सल्ल. के पास पहुँचा तो मैंने दरवाज़े पर एक अन्सार की महिला को देखा, जिसकी आवश्यकता मेरे ही जैसी थी, हमारे पास से हज़रत बिलाल (रज़ि०) गुज़रे तो हम दोनों ने नबी (सल्ल०) से पूछा! क्या मुझे अनुमति देते हैं कि मैं अपने पति को सदक़ा (दान) दूँ? और उसको अपने कमरे में अलग-थलग रख दूं, और हम दोनों ने यह भी कहा कि हमारी सूचना आप (सल्ल०) को न दें। तो वह गये और पूछा। तो आप

(सल्ल०) ने पूछा वे दोनों कौन हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया ज़ैनब। तो आपने पूछा कौन ज़ैनब, तो उन्होंने कहा अब्दुल्लाह की पत्नी, तो आपने फ़रमाया हाँ, उसके दो बदले हैं एक निकटता का बदला, और दूसरा दान का बदला।"

इसलिए जब मुसलमानों में आपस में एक दूसरे पर वरीयता दी जा सकती है तो मुसलमानों को ग़ैर मुस्लिमों पर वरीयता देना अधिक महत्वपूर्ण है।

☆☆☆

विस्तृत लेख

ग़ैर मुस्लिम के साथ मामलों की सीमाएं और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का हुक्म

मौलाना बदरुल हसन क़ासमी, कुवैत

1- अल्लाह का इर्शाद है:

"**وما ارسلناک إلا رحمة للعالمين**" (سورۂ انبياء: ١٠٧)۔

"**قل يا أيها الناس إنى رسول الله إليكم جميعا**" (سورۂ اعراف: ١٥٨)۔

"**يا أيها الناس قد جاء كم الرسول بالحق من ربكم فآمنوا خيراً لكم**" (سورۂ نساء:)۔

और नबी अकरम सल्ल० ने इर्शाद फ़रमाया: ''अंबिया किराम अलैहिमुस्स्लाम (अवतारों) का अवतरित होना उन की क़ौमों के लिए हुआ करता था, लेकिन मेरा अवतरित होना तमाम इन्सानों के लिए हुआ है'' (बुख़ारी)

यह और इन के अलावा दूसरी क़ुरआनी आयात और हदीसों से यह बात पूरी तरह स्पष्ट होकर सामने आती है कि इस्लाम का सन्देश तमाम मानव जाति के लिए है, इस्लामी शरीअत किसी विशेष जाति या क्षेत्र के साथ ख़ास नहीं बल्कि यह एक विश्वव्यापी शरीअत है, और मज़हबे इस्लाम तमाम क़ौमों और गिरोहों का संयुक्त अधिकार है, इस की राय में क़ौमी, ख़ानदानी, भाषाई या रंग व नस्ल की बुनियाद पर कोई भी रुकावट नहीं है, इस्लाम दुनिया में केवल इस लिए आया है कि वह मनुष्य को वैचारिक

आस्था सबंधी बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से उच्च व श्रेष्ट बनाए।

इस हिसाब से मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों के बीच एक सर्वकालिक रिश्ता क़ाइम है, क्योंकि अगर ग़ैर मुस्लिम मौजूद न होंगे तो मुसलमान इस्लाम क़ुबूल करने की और अल्लाह के दीन में दाख़िल होने की दावत किसे देंगे?

जंग कभी कभार पेश आने वाली एक स्थिति है, और इस का सहारा मजबूरी की हालत में या उन रुकावटों की वजह से लेना पड़ता है जो इस्लाम विरोधी लोग या ताक़तें पैदा करती हैं, और विश्वास के चयन व इख़्तियार के लिए हासिल इन्सानी आज़ादी में खुल्लम खुल्ला हस्तक्षेप होने लगता है।

हज़रत नबी अकरम सल्ल० ने जंगों का सहारा उसी समय लिया था जब कुफ़्फ़ार व मुशिरकीन ने आप सल्ल० के सामने सारी राहें बन्द करदी थीं, उन्हें अपने वतन से निकलने पर मजबूर कर दिया था, और उन के साामने और कोई भी रास्ता खुला नहीं रखा था, अत: अगर दीन के साथ अत्याचार न हो रहा हो, मुसलमानों पर हमले न हो रहे हों, सन्धियों को माना जा रहा हो, कमज़ोरों को अत्याचार का निशाना न बनाया जा रहा हो, तो ऐसी हालत में इस्लामी दृष्टिकोण से जंग और जिहाद की कोई गुंजाइश नहीं है।

अल्लाह तआला का इर्शाद है:

”وقاتلوا فی سبیل الله الذین یقاتلونکم ولا تعتدوا“ (بقرہ: ۱۹۰)،

और इर्शाद है:

”لا إکراہ فی الدین“ (بقرہ: ۲۵۶)

और इर्शाद है:

"وإن جنحوا للسلم فاجنح لها" (انفال: ٦١)

सत्यता यह है कि इस्लाम ने किसी सत्य चाहने वाले पर तलवार नहीं उठायी, और न ही किसी के साथ अत्याचार किया, और नबी अकरम सल्ल० ने उन्हीं दुशमनों से जंग की है जो मुक़ाबले पर थे, या कुछ फ़ुक़हा की रायों के अनुसार वचन तोड़ने के अपराधी थे।

अत: जंग इस्लाम की नज़र में न ही इक़दामी (आगे बढ़ कर मोर्चा संभालना) है कि कुफ़्फ़ार के घरों की ईंट से ईंट बजाते रहें, इस लिए कि अल्लाह तआला ने कुफ़्फ़ार को इस लिए पैदा नहीं किया कि क़त्ल व जंग के द्वारा उन्हें विनष्ट कर दिया जाए, और न ही यह जंग सुरक्षा की है कि मुस्लिम इलाक़ों पर हमला का इन्तिज़ार किया जाए, बल्कि इस्लामी दृष्टि से जंग कभी आगे बढ़कर होगी और कभी सुरक्षा की। आगे बढ़कर जंग उस समय होगी जब मानवता पर अत्याचार अधिक बढ़ जाएगा और बचाव की उस समय जब दावत इस्लामी की राह में रुकावटें डाली जाएंगी।

इस्लाम ऐसे उच्च उसूलों और श्रेष्ठ मूल्यों के साथ आया है जो मानव जीवन को संगठित और दुनिया व आख़िरत में इन्सानों की बेहतरी की ज़मानत देते हैं, अत: इस्लाम का यह हक़ है कि उम्मतों पर क़ौमों के बीच उन उसूलों और मूल्यों के प्रचार प्रसार का आयोजन करे, और इस में अचरज की क्या बात है? सारे ही व्यवस्था और दृष्टिकोण फैलना चाहते हैं चाहे वह इन्सान के बनाए हुए हों, तो फिर वह व्यवस्था जो उस की बनायी हुई है जो मनुष्य के हर कार्य व रोग से अवगत और उनके इलाज व उपचार से परिचित है, इस का ज़्यादा हक़दार है कि लोगों के बीच आम हो

और फैले, इस्लाम किसी ख़ास इलाक़ा या ख़ास उम्मत के साथ सम्बद्ध नहीं है, वह एक क़यामत तक रहने वाला और तमाम इन्सानों के लिए आया हुआ दीन है।

इस्लाम चूंकि एक अक़ीदा (विश्वास) और कुछ उसूल व मूल्यों का नाम है जिन पर मुसलमान ईमान रखते हैं, अतः उस का प्रचार उस का हक़ होना चाहिए, और इसी तरह इन उसूल व मूल्यों की सुरक्षा भी इस्लाम के प्रचार के संबंध से मुसलमानों को हुक्म दिया गया है कि वह अल्लाह की ओर अच्छे तरीक़े से बुलाएं।

इर्शाद है:

"أدع إلى سبيل ربک بالحکمة والموعظة الحسنة وجادلهم بالتی هی أحسن" (نحل: ۱۲۵)

और इर्शाद है:

"ولا تجادلوا أهل الکتاب إلا بالتی هی أحسن" (عنکبوت: ۴۶).

नबी करीम सल्ल० की बड़ी इच्छा रहती थी कि जंग का सहारा न लेना पड़े, इसी लिए जब आप सल्ल० ने हज़रत मआज़ को यमन भेजा तो वसीयत की थी कि दावत देने से पहले जंग न करना, दावत स्वीकार करने से वे इन्कार भी करदें तो उस समय तक उन से जंग न करना जब तक कि वे स्वयं जंग न शुरू करें, अगर वे जंग शुरू भी करदें तो उस वक़्त तक उन पर तलवार न चलाना जब तक तुम में से किसी को क़त्ल न करदें, फिर तुम उन्हें यह दिखा देना और कहना कि क्या इस से बेहतर कोई रास्ता नहीं? इस लिए कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे हाथ किसी एक व्यक्ति को पथ प्रदर्शन दे वह तुम्हारे लिए सारे जहां से बेहतर है।

इसी तरह इस्लाम ग़ैर मुस्लिमों के साथ सद व्यवहार और न्याय का हुक्म देता है, इर्शाद है:

"لاينهاكم الله عن الذين لم يقاتلوكم فى الدين ولم يخرجوكم من دياركم أن تبروهم وتقسطوا إليهم إن الله يحب المقسطين" (سورۂ ممتحنه: ٨)۔

इन्सान मासूम और उस की जान सम्मान योग्य है ताकि ख़ुदा की ओर से दी गयी ज़िम्मेदारी के बोझ को उठा सके, उस के क़त्ल की इजाज़त एक अस्थायी चीज़ है, वह भी उस की बुराई को दूर करने और हानि को रोकने के लिए है, फ़ुक़हा ने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि काफ़िर काफ़िर के तौर पर क़त्ल का हक़दार नहीं, और न ही कुफ़्र कुफ़्र के तौर पर उन से जंग करने की वजह है।

अल्लामा इमाम इब्नुल हुमाम कहते हैं कि अल्लाह तआ़ला का यह कथन:

"وقاتلوا المشركين كافة كما يقاتلونكم كافة"

बताता है कि हमें उन से जिस जंग का हुक्म दिया गया है वह उन से मुक़ाबला करने का बदला और उस का नतीजा है।

और इसी तरह अल्लाह तआ़ला का यह कथन:

"وقاتلوهم حتى لاتكون فتنة"

कि उन की तरफ़ से मुसलमानों को अपने दीन से फिरने के लिए किसी आज़माइश व आपदा प्रकट न हो, चाहे मार पीट के द्वारा हो या जंग के रूप में।

और इस बात पर तो तमाम लोगों की सहमति है कि ग़ैर मुस्लिमों में से न लड़ने वालों को क़त्ल नहीं किया जाएगा और न ही बच्चों, औरतों

और राहिबों को। जहां तक इस्लामी फ़ुक़हा द्वारा विश्व को दो हिस्सों दारुल इस्लाम और दारुल हर्ब में बांट कर रखने का संबंध है तो वह किसी हदीस की बुनियाद पर नहीं है, बल्कि हालात को देखते हुए मुजतहिदीन फ़ुक़हा का विचार है, जैसा कि अल्लामा अबु ज़ुहरा ने अपने लेख: ''नज़रियतुल हर्ब फ़िल इस्लाम'' में लिखा है।

2-इस्लाम मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों के बीच मनो वैज्ञानिक रुकावटों और पाबन्दियों को मौजूद नहीं रखता, इस लिए कि वह एक आसमामी दीन है और तमाम मानव जाति की हिदायत और न्याय व पाकी व पवित्रता पर क़ाइम सभ्यता व संस्कृति को वजूद प्रदान करने के लिए आया है, अत: इस में आपत्ति की कोई बात नहीं है कि मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर आवासीय इलाक़ों में आबाद हों बशर्तेकि मुसलमान अपने इस्लामी अक़ीदों व आचरण और आदाब व तौर तरीक़ों पर मौजूद रहें हों, ताकि उन बहुत से लोगों के लिए सुख व शान्ति और भलाई व कल्याण, आकर्षण और पथ प्रदर्शन का कारण बनें जो वर्गीय और रंग व नस्ल पर आधारित भेद भाव की मुसीबत में गिरफ़्तार हैं, और बड़ी मुश्किल और कठिन सामाजिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं, इस लिए कि यह तो सुधार के उद्देश्य का एक भाग है कि वह मेहनत करने वाले, परेशान हाल और कमज़ोर लोगों की मुसीबतों को दूर करे, उन की गरदनों में पड़ी बेड़ियों को तोड़े, लोगों को ग़लत विश्वास और बर्बर रस्म व रिवाज से मुक्ति दिलाए, मुसलमानों को ग़ैरों के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने की मनाही सिर्फ़ वहां है जहां मुसलमानों के ख़ानदान और मुस्लिम बच्चों में आस्था संबंधी व नैतिक बुराइयों के घुस जाने का डर हो, लेकिन अगर मुस्लिम ख़ानदान ग़ैर

मुस्लिमों के साथ अपने आचरण को सुरक्षित रखते हुए, इस्लामी शिक्षाओं पर अमल करते हुए, आज़ादी के साथ इस्लामी कामों की अदाएगी करते हुए और अपने बच्चों के दीनी विश्वास को सुरक्षित रखते हुए ज़िन्दगी गुज़ारने पर सक्षम है तो ऐसी हालत में संयुक्त मुहल्लों में आबाद होने की कोई मनाही नहीं है।

अलबत्ता अगर इस्लामी शिआर की अदाएगी में रुकावट पैदा की जाती हो, या मुस्लिम ख़ानदानों के आचरण व तरीक़े ग़ैर मस्लिमों के रंग में ढल जाने का डर हो तो इस प्रकार के संयुक्त आवासीय इलाक़ों में आबाद करना सही न होगा, ताकि मुस्लिम ख़ानदान अपने दीन व विश्वासों को सुरक्षित रख सके, और नई नस्ल अनेकश्वरवाद व मादक पदार्थ या नैतिक बुराइयों की दलदल में फ़ंसने से बची रहे।

3-ग़ैर मुस्लिमों के साथ सद व्यवहार व भलाई और न्याय का हुक्म दिया गया है, इस सिलसिले में इमाम तबरी रह0 का कथन है: सब से सही राय वह है जिस में कहा गया है कि न्याय व नेकी के बरताव के हुक्म में तमाम धर्मों के मानने वाले शामिल हैं कि उन के साथ भलाई और सद व्यवहार का प्रदर्शन करो, अल्लाह तआ़ला ने सामान्यता के साथ अपने इस कथन में सभों को शामिल रखा है, और इस में किसी क़ौम व मिल्लत की विशेषता नहीं है, और जिन लोगों ने इस के निरस्त का दावा किया है उन की बात अर्थहीन है।

इमाम क़रतबी (तफ़सीर क़रतबी 18/59, अहकामुल क़ुरआन लिइब्नुल अरबी 4/1785) फ़रमाते हैं कि इस आयत में अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मुसलमानों को छूट व अनुमति दी गई है कि वह उन लोगों के साथ सद

व्यवहार का मामला करें जो मुसलमानों से दुश्मनी नहीं रखते और न उन से जंग करते हें ऐसे लोगों के साथ मुसलमान भलाई व उपकार का मामला करें, इस तौर पर कि उपकार हेतू अपने मालों का कुछ हिस्सा उन्हें दें।

मुफ़स्सिर कुरआन इमाम इब्ने कसीर रह0 फ़रमाते हैं: ''वह (अल्लाह तआला) उन ग़ैर मुस्लिमों के साथ उपकार और व्यवहार से मना नहीं करता जो तुम से लड़ते नहीं हैं कि तुम उन के साथ सद व्यवहार करो''

(तफ़सीर इब्ने कसीर 4/373)

सारांश यह है कि कुफ़्फ़ार के साथ अच्छा मामला और सद व्यवहार वैध है बशर्तेकि वह लड़ते न हों, और यह आचरण की उच्च मिसालों में से है जिन के बारे में नबी अकरम सल्ल० ने इर्शाद फ़रमाया: ''मैं अच्छे आचरण की पूर्ति के लिए आया हूं'' (मोत्ता इमाम मालिक)

4-भूकम्प व बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदाओं की हालत में एक मुसलमान के लिए वैध है कि वह इमदादी कामों में हिस्सा ले, माल व अन्य सामान इमदाद में पेश करे, और मुस्लिम व ग़ैर मुस्लिम का भेद न करे, यद्यपि एक मुसलमान की जान की हिफ़ाज़त दूसरों के मुक़ाबले में कहीं अधिक है।

बहुत सी कुरआनी आयतें इस पर विवेचन करती हैं कुछ निम्न हैं:

"لاينهاكم الله عن الذين لم يقاتلوكم فى الدين ول يخرجوكممن دياركم ان تبروهم وتقسطوا إليهم إن الله يحب المقسطين" (ممتحنه:٨)

और इर्शाद है:

"ليس عليك هداهم ولكن الله يهدى من يشاء وما تنفقوا من خير فل-نفسكم وما تنفقون إلا ابتغاء وجه الله" (بقره: ٢٧٢)

और इर्शाद है:

"ويطعمون الطعام على حبه مسكينا ويتيما وأسيراً" (سورۂ دھر: ٨)۔

इमाम बुख़ारी व मुस्लिम ने हज़रत असमा बिन्ते अबू बकर रज़ि० से रिवायत किया है कि वह कहती हैं: क़ुरैश के साथ सन्धि के ज़माने में (सुलह हुदैबिया) में मेरी मां जो कि ग़ैर मुस्लिमों थीं मुझ से मुलाक़ात के लिए आईं, मैं हुज़ूर सल्ल० की सेवा में हाज़िर हुई और पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी मां बड़ी उम्मीदों से मेरे पास आई हैं तो क्या मैं उन के साथ अच्छा व्यवहार का मामला करूं? आप सल्ल० ने फ़रमाया: ''हां, उन के साथ अच्छा व्यवहार करो''।

यद्यपि मक्का वालों ने आप सल्ल० को बहुत सताया था और आप सल्ल० को मक्का से निकाल दिया था फिर भी आप सल्ल० ने इमाम मुहम्मद बिन हसन शीबानी की रिवायत के अनुसार अकाल के ज़माने में मक्का वालों के पास कुछ माल भिजवाया कि ग़रीबों में बांट दिया जाए।

(शरहुस्सेयरुल कबीर: 144)

इसी तरह यह भी साबित है कि हज़रत उमर बिन ख़त्ताब रज़ि० ने अपने शाम के सफ़र के दौरान बैतुल माल (सरकारी काष) से उन ईसाइयों की मदद का आदेश दिया था जो कोढ़ के रोग में गिरफ्तार थे, और मौत के बिस्तर पर होते हुए ज़िम्मियों (वह ग़ैर मुस्लिम तो इस्लामी राज्य में रहे और जिज़्या) के साथ सद व्यवहार की वसीयत की थी यद्यपि जिस के ख़ंजर से आप रज़ि० का सीना चाक हुआ वह अबू लूलू मजूसी था।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र अपने ग़ुलाम को आदेश दिया करते थे कि वह क़ुरबानी का गोश्त अपने यहूदी पड़ौसी को अवश्य दिया करे, एक

यहूदी के साथ इतने आयोजन पर उन के ग़ुलाम को हैरत हुई तो आप ने कहा: हुज़ूर सल्ल० का इर्शाद है कि हज़रत जिब्राईल अलै० ने पड़ौसी के साथ सद व्यवहार की इतनी ताकीद की कि मुझे लगने लगा कि वह उसे विरासत तक में भागीदार ठहरा देंगे। (बुख़ारी व मुस्लिम)

इसी तरह हज़रत अकरमा, इब्ने सीरीन और इमाम ज़ुहरी की राय में ग़ैर मुस्लिम को सदक़ा फ़ित्र (दान) तक देना जाइज़ है, इन हदीसों व विचारों की रौशनी में ग़ैर मुस्लिमों को प्राकृतिक विपदा से बचाने के लिए उन की मदद करने में कोई मनाही नहीं रह जाती।

5-जहां तक ग़ैर मुस्लिम बीमारों की सेवा का मामला है तो इस सिलसिले में असल इमाम बुख़ारी की वह रिवायत है कि आप सल्ल० के पास एक यहूदी ग़ुलाम था जो आप की सेवा कियाा किया था, जब वह बीमार हुआ तो आप सल्ल० उस के पास उस का हाल पूछने को तशरीफ़ ले गए। इब्ने हजर फ़रमाते हैं कि इस हदीस से मुश्रिक का हाल पूछने की वैधता साबित होती है। इमाम मावरदी कहते हैं: ज़िम्मी का हाल पूछना वैध है और पुण्य की प्राप्ती इस संबंध पर है जो समीपता या संगत की वजह से हो।

आप सल्ल० ने अपने आदर्णीय चचा अबू तालिब का हाल भी उन की बीमारी के ज़माने में पूछा था थी और उन के सामने इस्लाम पेश किया था।

अल बहरुर्राइक़ के लेखक फ़रमाते हैं कि ये सारी चीज़ें मुश्रिकीन का हाल पूछने की वैधता पर दलालत करती हैं। इस लिए यह अमल भी सद व्यवहार की ही एक क़िस्म है और इस्लाम की ख़ूबियों में से है, हज़रत

इमाम अहमद बिन हंबल से गै़र मुस्लिम का हाल पूछने के बारे में मालूम किया गया तो उन्होंने फ़रमाया कि क्या आप सल्ल० ने यहूदी की इयादत नहीं (बीमार का हाल पुछना) की थी और उन पर इस्लाम नहीं पेश किया था? इन सब के बावजूद कुछ फ़ुक़हा की राय में यह वैधता इस्लाम की आशा के साथ बंधी है, अल्लामा इब्ने बताल फ़रमाते हैं: उस की इयादत की वैधता उसी समय है जब यह उम्मीद हो कि यह कार्य इस्लाम स्वीकारने को उस के नज़दीक खुलकर बना देगा, और अगर इस की उम्मीद न हो तो यह वैध नहीं, जो बात खुलकर सामने आती है वह यह है कि विवादित उद्देश्यों से हालात भिन्न हो सकते हैं, हो सकता है उस की इयादत के नतीजे में मुसलमानों के किसी और उद्देश्य की पूर्ति होती हो

(अल मुग़नी 2/409)

इसी तरह अधिकांश फ़ुक़हा की राय यह है कि मुसलमान काफ़िर के शोक पर जा सकता है अगर कोई उस का रिश्तेदार मर जाए, सुफ़ियान सूरी रह० से नक़ल है कि मुसलमान काफ़िर के लिए शोक व्यक्त करेगा और कहेगा: ''महानता व सत्ता केवल अल्लाह के लिए है'' इमाम हसन बसरी फ़रमाते थे कि जब किसी काफ़िर के लिए शोक व्यक्त करो तो कहो: ''لايصيبک إلا خير'' इमाम इब्ने बत्ताल का कथन है: काफ़िर के शोक के समय निम्न शब्द कहे जाएंगे ''अल्लाह तुम्हारी मुसीबत पर तुम्हें तुम्हारे दूसरे दीनी भाइयों से बेहतर पुण्य दे'' (अलमुग़नी 2/409)

हमारी राय यह है कि शब्दों का निर्धारण कोई ज़रूरी नहीं है, काफ़िर का शोक करने वाला व्यक्ति जो अच्छे हाल कलिमात समझेगा वही अदा करेगा, बशर्तेकि इस में शिर्क का सम्मान और शिर्क वालों की निजात की

दुआ न हो, इमाम शाफ़ई से एक कथन नक़ल है और वह इमाम अहमद की तरफ़ समर्पित है कि काफ़िर की इयादत सिर्फ़ उसी हालत में वैध है जब उस के इस्लाम लाने की उम्मीद हो, लेकिन अगर काफ़िर रोगियों की इयादत इस्लाम के महान कामों में से है तो किसी काफ़िर की मौत पर उन के लिए शोक करना और भी बेहतर है, चाहे उन में से किसी के इस्लाम स्वीकारने की उम्मीद हो या न हो, इस लिए कि अल्लाह तआ़ला का यह इर्शाद आम है:

"لاينهاكم الله عن الدين لم يقاتلوكم فى الدين ولم يخرجوكم من دياركم أن تبروهم وتقسطوا إليهم إن الله يحب المقسطين" (الممتحنه: ٨)۔

6-झण्डा एक राष्ट्रीय पहचान है, और किसी साम्राज्य शक्ति की प्रत्यक्ष ग़ुलामी से देश की आज़ादी की निशानी के तौर पर अपनायी जाती है, यही वजह है कि जब देश में शान्ति होती है तो वह झण्डा हवा में लहराता रहता है, और जब देश अपनी आज़ादी व स्वाधीनता में किसी दुर्घटना का शिकार होता है, या उस के किसी नेता की मौत हो जाती है या किसी प्राकृतिक विपदा के नतीजे में किसी बरबादी व हानि से दोचार होता है तो उस झण्डे को झुका दिया जाता है, झण्डे को पहचान के तौर पर अपनाना एक राष्ट्रीय परम्परा है जो तमाम क़ौमों और देशों में प्रचलित है, और शरअी पसन्दीदा कामों में से है, इसलिए कि नबी करीम सल्ल० ने जंगों आदि के अवसरों पर झण्डे को इस्तेमाल किया है। मुसन्नफ़ इब्ने अबी शैबा में उल्लेख है कि जिसने सबसे पहले झंडा इस्तेमाल किया वह हज़रत इबराहीम अलै० हैं। (असर रक़म 25/726/472)

जंगे उहुद में आप सल्ल० ने पूछा कि मुश्रिकों का झण्डा कौन

उठाएगा? कहा गया: बनु अब्दुद्दार, आप ने फ़रमाया कि हम उन से ज़्यादा वफ़ा के हक़दार हैं, मुसअब बिन उमैर कहां हैं? उन्होंने जवाब दिया, हाज़िर हूं, आप ने फ़रमाया कि इस झंडे को उठालो, मुसअब बिन उमैर ने झण्डा उठा लिया और आप सल्ल० के आगे चलने लगे। वह सब से महान झण्डा था, औस का झण्डा साद बिन हज़ीर और ख़ज़रज का झण्डा साअ़द बिन अबू उबादा के हवाले किया गया।

जंगे मूता के अवसर पर आप सल्ल० ने सफ़ेद झंडा पसन्द किया था, और उसे हज़रत ज़ैद बिन हारिसा के हवाले किया था, और इसी तरह जंगे तबूक के अवसर पर झंडा पर आप सल्ल० ने अलम और झण्डे बनवाए, और सब से महान झंडा हज़रत अबू बकर सिद्दीक़ के हवाले किया।

झण्डा चूंकि एक क़ौमी निशानी है, और आप सल्ल0 से साबित है कि आप सल्ल० ने झण्डों को इस्तेमाल किया, उन्हें वफ़ादारी की निशानी माना, झंडे को ऊंचा रखने का आयोजन किया, इस काम के लिए कुछ सहाबा किराम को नियुक्त किया, और सहाबा किराम ने दौराने जंग उस के न झुकने देने की पूरी कोशिश की जैसा कि जंगे मूता के अवसर पर हज़रत ज़ैद बिन हारिसा, अब्दुल्लाह बिन रवाहा और जाफ़र तय्यार रज़ि० के अमल से स्पष्ट है कि उन्होंने किस तरह बारी बारी झंडे को उठाए रखा, और उसे ऊंचा रखने के लिए यथा संभव कोशिश की। यह सारी चीज़ें इस बात की दलील हैं कि झंडे का आयोजन करने, किसी दल या शासन की तरफ़ से उसे ऊंचा रखने, उसे झुकने से बचाने और उसे एक निशानी कल्पित करने में कोई हरज नहीं।

अब जहां तक झण्डे को सलामी देने का सवाल है तो अगर यह एक

गर्व वाला काम है, जैसे उसे लहराते समय खड़ा हो जाना तो इस में कोई आपर्त्ति नहीं बशर्तेकि इस काम के साथ उस का सम्मान और उस के सामने सर झुकाने या शिर्क का काम न हों।

यही हुक्म राष्ट्रीय गान का भी है, अगर उस के सम्मान व गौरव और उस के लिए खड़े होने में देश के अपमान वे राष्ट्र के साथ विद्रोह माना जाता हो और उस पर हानि व ख़तरा महसूस होता हों तो ऐसी सूरत में उस का सम्मान और उस के लिए खड़ा होना वैध होगा, अलबत्ता अगर हानि का डर न हो और इस के बिना भी सलामती की ज़मानत हो तो इस से बचना बेहतर होगा।

जहां तक हिन्दूस्तान के विवादित राष्ट्रीय गान का संबंध है तो उस का पढ़ना या उस के लिए खड़ा होना वैध नहीं कि उस में ज़मीन की इबादत व पूजा जैसे शब्द शामिल हैं और देश के लिए ऐसे गुण इस्तेमाल किए गए हैं जो अल्लाह तआला के अलावा किसी और के लिए सही व वैध नहीं हैं।

7-ग़ैर मुस्लिमों के साथ तिजारती और कारोबारी मामलात के साथ जैसे क्रय विक्रय, किराया दारी व रहन आदि में भागी-दारी एक सही और प्रचतिल अमल है, आप सल्ल० के ज़माने से प्रचलित और मुसलमानों के बीच मौजूद है, इन मामलों में से वही वर्जित हैं जो हराम हैं, जैसे ब्याज, मादक पदार्थ, शराब और सुअर का गोश्त और ऐसी ही दूसरी चीज़ें, ग़ैर मुस्लिमों के साथ मामलात की कुछ और दूसरी क़िस्में भी हैं, जैसे सामान्यता आप सल्ल० ने हुनैन के अवसर पर सफ़वान से एक ढाल उधार ली थी, सफ़वान ने कहा कि ऐ मुहम्मद! क्या इस पर आप का सर्वकालिक क़ब्ज़ा रहेगा? आप सल्ल० ने इर्शाद फ़रमाया: नहीं, बल्कि

उधार ले रहा हूं, और वापसी की ज़मानत है। (अबू दाऊद, हाकिम, अन्नसाई)

उधार लेना मामलात और आपसी समझौते की क़िस्म की चीज़ है, और इस में मुसलमान होने की काई शर्त नहीं, इसलिए कि मामलात के संबंध से असल अनुमति है, या यह कि उस के मना होने की दलील मौजूद हो।

इमाम इब्ने मफ़लेह ने (आदाब शरइया) में लिखा है कि अगर मुसलमानों को किसी काफ़िर के पास अमानत रखने की ज़रूरत हो तो यह उस के लिए वैध है (अल आदाबुश्शरइया 2/467)। स्वयं आप सल्ल0 ने शाह ईला का हदया (तोहफ़ा) सफ़ेद ख़च्चर स्वीकार किया था, और उसे आप सल्ल० ने एक चादर प्रदान की थी, इसी तरह दौमतुल जन्दल के शासक ने आप सल्ल० को रेशम का जुब्बा (पहनने का कपड़ा) (उम्दतुल क़ारी 13/168) और मक़ोक़स ने एक बांदी (ग़ुलाम) उपहार के तौर पर पेश की थी।

(फ़तहुल बारी 5/231)

इस से मालूम होता है कि काफ़िर का दिया हुआ उपहार मुसलमान स्वीकार कर सकता है, और उस पर काफ़िर का बदला देना भी वैध है ताकि किसी काफ़िर का हाथ मुसलमान के हाथ से ऊंचा न रहे, बदर के क़ैदियों के संबंध से आप सल्ल० ने इर्शाद फ़रमाया: अगर मुतइम बिन अदी ज़िन्दा होता और उस ने क़ैदियों की रिहाई की प्रार्थना की होती तो उस के लिए इन सभों को रिहा कर देता (बुख़ारी)। और यह उस की उन कोशिशें का बदला था जो उस ने काबा में टंगे हुए सहीफ़ा के फाड़ने में की थी, रिवायतों में है कि ताइफ़ से वापसी के दिन आप सल्ल0 की हिमायत व मदद का बदला होता।

अल्लामां बदरुद्दीन ऐनी ने आप सल्ल० के बनू दैल के एक व्यक्ति को प्रवास के अवसर पर मार्ग दर्शक के तौर पर उजरत (पैसे देकर काम लेना) पर लेने की घटना पर विवेचन करते हुए कहा है: यह इस बात की दलील है कि मुश्रिकों को भी राज़दार और अपने माल व दौलत का अमीन बनाया जा सकता है अगर उन की तरफ़ से अमानत व मामला और वफ़ादारी का अनुभव हो, जिस तरह आप (सल्ल0) ने उस मुश्रिक को अपना मार्ग दर्शक व राज़दार बनाया था।

जहां तक गै़र मुस्लिमों के साथ मामलात व संबंधों के आम नियम का मामला है तो वह वही है जो उलमाए इस्लाम और फ़ुक़हा ने बड़ी मेहनत व महारत के साथ बयान कर दिया है।

हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रह० इर्शाद फ़रमाते हैं जैसा कि मुहद्दिस ज़फ़र अहमद उस्मानी ने अहकामुल क़ुरआन में नक़ल किया है: काफ़िरों के साथ संबंधों की तीन क़िस्में होती हैं:

1-मवालात अर्थात दोस्ती हार्दिक संबंध

2-मदारात अर्थात उन के साथ सद व्यवहार का मामला करना।

3-मवासात अर्थात कुछ दे दिलाकर उन को लाभ पहुंचाना।

जहां तक पहली क़िस्म अर्थात मवालात की बात है तो यह बिल्कुल ही वैध नहीं, और इसी को अल्लाह तआला के इस कथन में मना किया गया है:

"لاتخذوا اليهود والنصارى أولياء بعضهم أولياء بعض ومن يتولهم منكم فإنه منهم"

और

"يا أيها الذين آمنوا لاتتخذوا عدوى وعدوكم أولياء"

आवभगत तीन अवसर पर वैध है:

1-हानि दूर करने के लिए।

2-काफ़िर की दीनी ज़रूरत के लिए अर्थात सद व्यवहार के द्वारा उस के इस्लाम लाने की आशा हो।

3-अगर वह मेहमान हो या सभ्य लोगों में से हो तो उस के सम्मान के लिए।

स्वयं अपनी ज़रूरत या अर्थात माल व मान की प्राप्ती के लिए ग़ैर मुस्लिम के साथ व्यवहार वैध न होगा, ख़ास कर अगर उस से दीन में किसी हानि के पैदा होने का डर हो, और अल्लाह तआला के इस कथन में मुवालात से तात्पर्य सद व्यवहार ही है: "لايتخذ المؤمنون الكافرين أولياء" और इसी लिए हानि से बचने की हालत को अपवाद मानते हुए कहा गया है: "إلا أن تتقوا منهم تقاة" इस के अलावा दूसरी आयात में मवालात से तात्पर्य उस के वास्तविक अर्थ हैं, इसी लिए वहां किसी भी क़िस्म का अपवाद नहीं है।

काफ़िर की उस की दीनी ज़रूरत के लिए सद व्यवहार की वैधता की दलील सूरा अबस में अल्लाह तआला का यह कथन है:

"فأنت له تصدى"

इस आयत में जिस बात पर पकड़ की गई है वह काफ़िर को मोमिन पर प्रमुख मानना है, न कि सिर्फ़ उस की आव भगत, और मेहमान होने के नाते किसी ग़ैर मुस्लिम की आव भगत की वैधता की दलील वह रिवायत है जिस में बनू सक़ीफ़ को मस्जिद में ठहराने की बात कही गई है।

और व्यक्तिगत लाभ जैसे प्रताप व माल की प्राप्ती के लिए ग़ैर मुस्लिम के साथ सद व्यवहार की मनाही की दलील अल्लाह तआला का यह कथन है:

"أبيغون عندهم العزة"

अब रही तीसरी क़िस्म अर्थात मवासात, तो यह हर्ब वालों के साथ वैध नहीं, अलबत्ता ज़िम्मी और उन जैसे लोगों के साथ वैध है, और इस का स्पष्टीकरण सूरा मुमतहिना में मौजूद है, जो "لاينهاكم" से ले कर هم" "الظالمون तक की क़ुरआनी आयत में है, वहां मवासात की ताबीर ''तवल्ला'' से मजाज़न की गई है, और इस मजाज़ का क़रीना ये शब्द हैं:

"أن تبروهم وتقسطوا إليهم""

और मदारात की वैधता सिर्फ़ उस समय है जब उस के प्रकट का होना संभव हो, मात्र वहम व संदेह का भरोसा नहीं होगा, और इसी वहम व संदेह का इन्कार भी समझा गया है, क़ुरआन की आयत:'تخشى أن تصيبنا" "دائرة में मदारात का यही हुक्म उन लोगों के संबंध से है जो अवज्ञा व बुराइयों में से हैं।

जहां तक ग़ैर मुस्लिमों से मदद लेने की बात है तो आप सल्ल० ने सफ़वान बिन उमय्या से मदद ली थी, यद्यपि जंगे हुनैन के अवसर पर वह मुश्रिक था।

आप सल्ल० ने बनू क़ैनक़ाअ़ के यहूदियों से मदद ली थी, और माले ग़नीमत में उन्हें हिस्सा भी दिया था।

आप सल्ल० ने क़बीला ख़ुज़ाआ के एक व्यक्ति से मदद ली थी और क़ुरैश के विरुद्ध उसे जासूस के तौर पर इस्तेमाल किया था।

यही वजह है कि हन्फ़िया, शाफ़िया, मालकिया में से इब्ने अब्दुल बर्र और हनाबला एक दूसरी राय में ग़ैर मुस्लिमों से मदद लेने को कुछ विशेष शर्तों के साथ वैध समझते हैं, स्वयं आप सल्ल० ने मदीना में दाख़िल होते समय यहूदियों के साथ संधि की थी, हल्फ़ुल फ़ुज़ूल में शिरकत की प्रशंसा की और उसे अच्छा कार्य ठहराया था, और ताइफ़ से वापसी के समय मुतइम बिन अदी के घर में दाख़िल हुए थे, ये सारी चीज़ें इस बात की दलील हैं कि कुफ़्फ़ार के साथ गठजोड़ वैध है, और पारलियामेंट आदि में ग़ैर मुस्लिमों को प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है बशर्तेकि वह मुसलमानों के हित में हो।

राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का आदेशः

शासन के बनने या शासक के चयन के लिए इस्लाम ने कोई ख़ास शक्ल निर्धारित नहीं की है, बल्कि न्याय के स्थापित करने का एक सामान्य फ़रेम वर्क बनाने पर ही फोकस किया है, आप सल्ल0 के बाद ख़िलाफ़त राशिदा (इस्लामी शासन) की स्थापना हुई, और फिर उस के बाद से इस्लामी जगत में राजनीतिक तौर तरीक़े या शासन व्यवस्था कभी ख़िलाफ़त राशिदा की तरह थी, तो कभी सर्वथा बादशाही वजूद में आई, तो कहीं अत्यन्त तानाशाही व्यवस्था स्थापित हुई।

इस्लाम की शूराई व्यवस्था मौजूदा लोक तंत्र से अधिक प्रकृति के निकट, ज़्यादा संगठित और ज़्यादा महत्व वाली है, बशर्तेकि शासक तानाशाही स्वभाव न रखता हो, लेकिन जब से मुसलमानों ने व्यवाहारिक मैदानों में अपनी पकड़ खो दी है और ज्ञान व उद्योगों के मैदान में पश्चिमी दुनिया को आश्चर्य जनक विकास प्राप्त हासिल हुआ है और जल, थल एंव

अन्तरिक्ष सब के सब पश्चिमी टैकनालोजी के अन्तर्गत और उन के भयानक हथियारों के निशाने पर आ गए है वर्त्तमान दौर के हालात ने दारुल कुफ़्र और दारुल हर्ब के अर्थों को बदल कर ही रख दिया है।

दूसरी तरफ़ दुनिया की सारी हुकूमतें और देश चाहे मुस्लिम हों या ग़ैर मुस्लिम संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था में आ गए हैं और उस के सदस्य हैं, इसी तरह अधिकांश देशों के बीच वाणिज्य संबंध स्थापित हैं, अतः इस अंदाज़ में कुफ़्र व इस्लाम की बुनियाद पर एक देश को दूसरे से अलग करना जैसा कि प्राचीन फ़िक़्ह की पुस्तकों में मौजूद है अब असंभव सा हो गया है, बल्कि अब अपवादी हालतों के अलावा जैसे इसराईल, कोई ऐसा देश नहीं रह गया है जिस को दारुल हर्ब का नाम दिया जा सके, सत्यता यह है कि मुसलमान अपने दीन की हिफ़ाज़त के लिए दारुल इस्लाम प्रवास के मुक़ाबले में कुछ ग़ैर इस्लामी हुकूमतों और देशों को ज़्यादा शान्तिपूर्ण और अपने अधिकारों के लिए ज़्यादा शक्तिशाली और सूरक्षित पाते हैं, यही वजह है कि इस्लामी विचारक और बुद्धिजीवी ग़ैर मुस्लिम हुकूमतों जैसे यूरोप व अमरीका आदि प्रवास करने पर मजबूर हो जाते हैं, और इसी तरह लाखों मुस्लिम छात्र पश्चिमी विद्यालयों में दाख़िला को ज़्यादा वरीयता देते हें ताकि वे अपनी ज्ञानात्मक गतिविधियों को पूर्ण कर सकें और वहीं आबाद हो सकें।

दूसरी तरफ़ हुकूमतों और देशों के क्षेत्र में देखिए तो ज़मीन अपनी व्यापकता के बावजूद मुसलमानों पर तंग हो चुकी है, वास्तविक रूप से एक भी ऐसी मुस्लिम हुकूमत या मुस्लिम देश मौजूद नहीं है जो इन तमाम मुसलमानों को अपनी सीमाओं में जगह दे सके जो ग़ैर मुस्लिम हुकूमतों के

अधीन जीते हैं, और ऐसा देश होता भी तो वह अपनी सरहदें इस काम के लिए खोल कर नहीं रख सकता, और अगर सरहदें खुल भी जाएं तो उस के सकारात्मक व नकारात्मक नतीजों का ज्ञान तो सिर्फ़ अल्लाह को ही है, दसियों साल से बंगलादेश में लाखों ग़ैर बंगाली मुसलमानों के साथ जो कुछ हो रहा है किसी से छिपा नहीं है, ऐसी सूरत में खोखली बातें जैसे कि युद्ध क्षेत्र से शान्ति पूर्ण क्षेत्र का प्रवास या दीन से फिरने की बात करना बिल्कुल ही अलौजिक बात है, कितने ऐसे मुस्लिम देश हैं जहां अपने दीन के पाबन्द लोग कांटों पर जीते और अजनबी देशों और दूर के टापुओं में पनाह लेने पर मजबूर हो जाते हैं, कौन सा शान्ति पूर्ण क्षेत्र इस बात के लिए तैयार और सक्षम है कि वह दो सौ मिलयन हिन्दुस्तानी मुसलमानों या फ़िलिपाइन, रूस और चीन जैसे ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद लाखों मुसलमानों को अपने यहां जगह दे सके, मान लीजिए अगर यह हो भी जाए तो उस से पैदा होने वाले नकारात्मक प्रभाव कम ख़तरनाक नहीं होंगे, बल्कि विश्व स्तर पर मुसलमानों के हितों को ज़्यादा हानि पहुंचेगी।

सारांश यह है कि मुस्लिम अल्पसंख्यक के लिए डेमोक्रेटिक शासन व्यवस्था का कोई बदल नहीं है, ऐसी हुकूमतों में रहना जो डेमोक्रेसी को शासन व्यवस्था के तौर पर और अधर्मवाद (अर्थात किसी धर्म को न हानि पहुंचाना और न ही किसी से पक्षपात करना) को व्यवस्था के रूप में अपनाती हैं अल्प संख्यकों के लिए सब से बड़ा लाभ और दीनी व क़ौमी बुनियादों पर मार काट और विनाश करने की कोशिशों से उन की सुरक्षा का सब से बड़ा माध्यम है, जैसा कि बूसेनिया आदि के उदाहरण से समझा जा सकता है, डेमोक्रेसी न तो खुला कुफ़्र है और न खुला इन्कार व मुंकर,

बल्कि तानाशाह हुकूमतों को लगाम लगाने के सिलसिले में वह इस्लामी शिक्षाओं के उद्देश्यों से पूरी तरह सहचर है, इसलिए कि राजनीतिक युग का मतभेद पत्रकारिता की आज़ादी, न्याय व्यवस्था की स्वाधीनता और विपक्ष में अल्प संख्यकों के अधिकार यह सब वे चीज़ें हैं जो क़ौमों और उम्मतों के सदाचारी जीवन के लिए अपेक्षित हैं।

जहां तक हलाल को हराम और हराम को हलाल या फ़राइज़ के निरस्त करने का संबंध है तो इस प्रकार के क़ानून अस्वीकार्य हैं, चाहे वह लोकतंत्रिक देशों की संसदों से बने हों या किसी तानाशाह शासक के लागू किए आदेशों की शक्ल में हों, इस की बहुत सी मिसालें मिलती हैं, और मुसलमान इस प्रकार के क़ानूनों को स्वीकार करने पर मजबूर नहीं हैं जो इस्लाम की स्पष्ट शिक्षाओं से टकराती हों, बल्कि उन का फ़र्ज़ है कि इस प्रकार के क़ानूनों के विरुद्ध खड़े हों, अब जो मुसलमान डेमोक्रेसी का तरीक़ा इस लिए अपनाता है कि उस के द्वारा न्याय स्थापित हो सके, लोक तांत्रिक व्यवस्था वजूद में आए, मानव अधिकार का सम्मान हो और अत्याचारों को रोका जाए तो इस में कोई मनाही नहीं, इस में यह उसूल मौजूद है कि जिस काम के बिना किसी अनिवार्य पर अमल नहीं हो सकता हो वह काम भी अनिवार्य है, शरअी उद्देश्यों के लिए अगर कोई माध्यम निश्चित हो जाए तो वह माध्यम भी उद्देश्य का ही हुक्म ले लेता है, डेमोक्रेसी की दावत अनिवार्यतः प्रभुसत्ता का इन्कार नहीं है, और मात्र ख़्वारिज (विरोध) जैसे नारा बुलन्द करने में कोई लाभ नहीं, जिस के बारे में कहा जा चुका है: "كلمة حق أريد بها باطل" जो चीज़ें दीन की सिद्ध हैं उन पर इन मज्लिसों और पारलिमेंटों में वोटिंग की काई गुन्जाइश ही नहीं

है।

ग़ैर इस्लामी देशों में प्रजातन्त्र को स्थापित करना आवश्यक नहीं कि वह इस्लाम विरोधी ही हो. हाँ, बहुसंख्यक मतों और विश्वासों के कारण शासक पार्टी को दो धारी हथियार हाथ लग जाता है जिसका प्रयोग कभी कभी मुसलमानों के विरुद्ध भी हो सकता है जैसा कि भारत में समान सिविल कोड के लिए जारी दबाव और कुछ आंशिक क़ानूनों को लाने की कोशिशें हैं जो मुसलमानों के पर्सनल लॉ से टकराते हैं. लेकिन अधिकतर क़ानून जो संसद पारित करती है वह प्रबन्धन से सम्बन्धित होते हैं और दूर व निकट कहीं से भी दीन पर प्रभाव नहीं डालते. इसलिए मेरे विचार में चुनाव में भाग लेना अवैध नहीं होगा इसलिए कि संसद से आने वाली बुराइयों को भी संसद द्वारा ही रोका जा सकता है. लेकिन जहां तक संसदीय व्यवस्था में भाग न लेना मुसलमानों का उनमें प्रतिनिधित्व न होना संसद सदस्यों की ओर से मतभेद न होने का सम्बन्ध है तो इस स्थिति में इस बात की अधिक संभावना है कि ऐसे नियम बन जायें जो इस्लामी शिक्षा के प्रतिकूल हों और फलस्वरूप खतरा बढ़ जाये और मुसलमानों की अधिक क्षति हो.

इसमें कोई संदेह नहीं कि शरई राजनीति का अर्थ है कि ऐसे नियम जो सरकारी संस्थाओं को संगठित करते हैं राष्ट्र के मामलों को पूरा करते हैं, शरीअत की आत्मा से सहमत होते हैं और उनके उद्देश्यों को पूरा करते हैं, तो ऐसी शरई राजनीति का विवरण स्पष्टरूप से पवित्र कुरआन और हदीस में नहीं है.

अल्लामा इब्ने अकील फ़रमाते हैं, राजनीति ऐसे कार्यों और गतिविधियों

का नाम है जिसमें लोग बनाव से निकट और बिगाड़ से दूर रह सकते हैं, चाहे इन कार्यों को रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने शरीअत के अनुसार न बताया हो. (अत्तरीकुल हुक्मीया 13)

अल्लामा इब्ने नुजैम फरमाते हैं राजनीति में शासक की ओर से कोई भी ऐसा कार्य जो किसी हित को ध्यान में रखकर होता हो चाहे उसके सम्बन्ध में कोई दलील न उतरी हो, शरअी राजनीतिक साधारण रूप से लाभ पहुंचाने और हानि से बचाने पर आधारित होती है जैसा कि इसके सिद्धान्त से समझा जा सकता है।

यह बात प्राकृतिक है कि हालात को ध्यान में रखा जाएगा और विभिन्न क्षेत्रों में विशेष अनुभव रखने वालों के विचारों की रोशनी में भविष्य की योजनाऐं बनाई जाऐंगी.

जहाँ तक राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने और ऐसी सरकार के प्रशासन में पद ग्रहण करने का प्रश्न है जो धर्म निरपेक्ष या मानव निर्मित विधान पर चल रही हों तो यह हर ज़माने में चर्चा का विषय रहा है, एक वर्ग इसमें भाग लेने को पूरी तरह अस्वीकार्य ठहराता है और उसे ईश्वरीय विधान की तुलना में मानवकृत विधान को पालन योग्य मानते हैं.

इनकी दलील कुरआन की वे आयतें हैं जिनमें अल्लाह की उतारी हुई शरीअत के अनुसार फ़ैसला न करने को कुफ्र या बुराई या अत्याचार कहा गया है.

और वे आयतें हैं जो प्रभुत्व को अल्लाह के लिए विशेष बताती हैं जैसे:

ان الحكم الاللہ،ان ان لاتعبدو االاایاہٗ

‘‘प्रभुत्व केवल अल्लाह के लिए विशेष है, और उसका आदेश है कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी की उपासना न करो’’ (सूरः यूसुफ 40)

इसी तरह वह मनाही है जो ईश्वरीय शरीअत के अतिरिक्त किसी और विधान के अनुसार फ़ैसला करने के संबंध में उतरी है:

वे आयतें हैं जो अत्याचारियों के सामने घुटने टेकने से रोकती हैं.

वे आयतें और हदीसें हैं जो काफ़िरों से मित्रता को मना करती हैं.

इसके लिए कुरआन व सुन्नत की दलीलें स्पष्ट और अन्तिम हैं, इनमें तमाम मुसलमानों और शासकों को ईश्वरीय शरीअत के अनुसार कार्य करने का पाबन्द बनाया गया है और तागूत (अल्लाह के अलावा दूसरों की उपासना) से मना किया गया है और जो अल्लाह व उसके रसूल के आदेश को नहीं मानता वह मोमिन नहीं हो सकता।

मिनहाजुस्सुन्नः में इमाम इब्ने तैमिया फरमाते हैं: इसमें सन्देह नहीं जो अल्लाह के उतारे हुए आदेश के अनुसार फ़ैसला को अनिवार्य नहीं समझता वह काफ़िर है और जो लोगों के बीच अल्लाह की तरफ़ से उतारे गए आदेश के अनुसार फ़ैसला न करके अपनी तरफ़ से न्याय समझ कर फ़ैसले को वैध समझता है वह भी काफ़िर है, उन्हीं आयतों और हदीसों और कुछ समकालीन उलमा के विचार में भाग न लेना ही बुनियाद है।

मुहम्मद कुतुब फरमाते हैं:

उपर्युक्त हालात में जो मुसलमान अज्ञानता के विधान का इन्कार करता हो उसका मंत्री बनना अवैध है। (क़ज़ाउल मआसिर 509)

कुछ लोग तो इस विषय को अनेकश्वरवाद से जोड़ देते हैं कि अनेकश्वरवाद के अवैध होने से पता चलता है कि अज्ञानता की व्यवस्था में

भी भाग लेना अवैध है इसलिए इनके दृष्टि कोण के अनुसार अत्याचारी और काफ़िरों के मंत्री मंण्डल में भाग लेना अल्लाह के अधिकार में अत्याचार है और उसकी बर्बादी है।

इसमें अत्याचारियों के साथ दोस्ती और आखिरत के हित को नष्ट करना है।

अत्याचारियों के कार्य को अच्छा समझना है आम जनता को भटकाना है और अत्याचारी शासक पर भरोसा करना है।

इनमें अत्याचारियों के साथ भागीदार बनकर अच्छे लोगों को बदनाम करना है.

इस विचार की तुलना में एक दूसरा विचार भी है जो भाग लेने की वैधता का समर्थक है इसकी दलील में यूसुफ़ (अलै.) की वह मांग जो उन्होंने मिस्र के शासक अज़ीज़ से की थी:

اجعلنی علی خزائن الارض انی حفیظ علیم

''मुझे देश के खज़ाने का शासक बना दो मैं इसकी रक्षा भी कर सकता हूँ और इसका ज्ञान भी रखता हूँ.'' दूसरी आयतों से ज्ञात होता है कि यूसुफ़ (अलै.) बादशाह के अधीन थे और शासन में कोई मौलिक परिवर्तन का कोई अधिकार नहीं प्राप्त था और बादशाह हज़रत यूसुफ़ के दीन पर नहीं था. यह साधारण मानवता के लिए है हजरत यूसुफ़ (अलै.) के लिए विशेष नहीं है. यूसुफ़ (अलै.) की यह दलील की वह रक्षक भी है और ज्ञानी भी है, इस बात की दलील है कि यदि योग्य व्यक्ति को यह एहसास हो जाए कि न्याय की स्थापना और बुराई को हटाने की संभावना है या यह कि वह देश और देश हित को स्पष्ट रूप से समझता हो तो इसमें कोई

हानि नहीं कि वह अपने आप को प्रस्तुत करे या शासन में भाग ले चाहे सरकार इस्लामी न हो।

इसका समर्थन नज्जाशी की घटना से होता है जब वह इस्लाम लाने के साथ साथ अल्लाह के उतारे हुए आदेशों से हटकर फ़ैसला करते रहे और एक गैर मुस्लिम राष्ट्र के बादशाह बने रहे इसके बावजूद रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने उन्हें काफ़िर और उन्हें मिल्लत से बाहर नहीं किया बल्कि उसने रसूलुल्लाह (सल्ल.) के पास एक पत्र भेजा जिसमें कहा था ''कि मैं अपने आप का मालिक हूँ'' इमाम इब्ने हजर ने उनके बारे में कहा है कि वह मुसलमानों के लिए एक ढाल और बड़े लाभदायक थे।

इन सबसे स्पष्ट होता है कि ग़ैर इस्लामी सरकार में भाग लेना वैध है यदि इस पर किसी बड़े हित का मामला है या हानि से रोकने की स्थिति है चाहे भागीदार हालात को बदलने में असमर्थ हो।

प्रसिद्ध कुरआन के व्याख्याकर इमाम शहाब आलूसी हज़रत युसुफ़ (अलै.) की घटना का उल्लेख करते हुए फ़रमाते हैं इसमें पद या दायित्व की मांग की वैधता की दलील है यदि पद की मांग करने वाला न्याय की स्थापना में समर्थ हो चाहे किसी काफ़िर या अत्याचारी से क्यों न मांग करनी पड़े। (रूहुल मआनी 5/3)।

वास्तविकता यह है कि किसी मंत्रीमंण्डल या राजनीतिक प्रशासन में भाग लेने का उद्देश्य वर्तमान संसदीय प्रणली या आधुनिक मंत्री मण्डलीय व्यवस्था के अन्तर्गत न अत्याचारियों की अधीनता न काफिरों से दोस्ती और न अईश्वरीय शरीअत का आदेश है बल्कि मानवकृत विधान में भाग लेने से भाग दिलवाने वाले का उद्देश्य पूरा हो जाता है और साथ साथ यदि वह

अपने दीन का पालन करता है तो न्याय की स्थापना और हर संभव ईश्वरीय शरीअत का पालन है, शर्त यह है कि दीन के सिद्धान्तों से समझौता न किया जाए।

इस दृष्टिकोण को सुल्तानुल उलमा अज्ज बिन अब्दुस्सलाम के इस कथन से समर्थन मिलता है जो उन्होंने अपने वक्तव्य में बहुत ही गम्भीरता के साथ और फ़िक़्ही अन्दाज़ में कहा है:

अगर मुसलमानों को अपनी पकड़ मज़बूत करने और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ग़ैर इस्लामी शासन में भागीदारी ही एक माध्यम है तो उसके वैध होने बल्कि कुछ परिस्थितियों में अनिवार्य होने में भी कोई सन्देह नहीं. यह बात न्याय की स्थापना, दीन की रक्षा और मुसलमानों के हितों और उद्देश्यों पर भागीदारी की क्षमता से सम्बन्धित है।

वास्तविकता तो यही है कि मुसलमान उस व्यवस्था में भागीदार न बने जो न्याय के आधार पर नहीं है लेकिन जैसा कि कहा गया है: ''अगर कोई (हक़) पूरा न मिल सके तो उसका मिलता हुआ बड़ा भाग नहीं छोड़ना चाहिए.'' और इस्लामी शरीअत के उद्देश्यों में हर संभव अन्याय और बुराई को कम करना और अपराध, अन्याय के दायरे को तंग करना सम्मिलित है, अल्लाह तआला का इरशाद है ''अल्लाह से डरो जितनी तुममें शक्ति हो''

(सूर: तग़ाबुन–16)

दूसरे स्थान पर अल्लाह तआला का इरशाद है ''अल्लाह तआला किसी व्यक्ति पर उसकी शक्ति से अधिक बोझ नहीं डालता है.''

सूर: बकर–286)

नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया अगर मैं तुम्हें किसी चीज़ का आदेश दूँ तो

जितना संभव हो करो. सहाबा किराम ने हब्शा की तरफ़ प्रवास (हिजरत) किया और कुरैश के अत्याचार से बचने के लिए नज्जाशी के पास शरण ली कि यह मामला तुलनात्मक रूप से आसान था और नज्जाशी इस्लाम लाने के बाद भी सरकार चलाते रहे यद्यपि उनकी सरकार इस्लामी नहीं थी।

''दो हानियों में से एक हानि'' को अपनाने का एक सैद्धान्तिक प्रशन है जिसे विवेक और शरीअत दोनों स्वीकार करते हैं. फ़ुकहा ने बुराइयों पर चुप रहने को उस समय वैध कहा है जब किसी बुराई का इन्कार उससे बड़ी बुराई का कारण बने. आप (सल्ल.) काबा को उन्हीं बुनियादों पर उठाना चाहते थे जिन पर इब्राहीम (अलै.) ने बनाया था लेकिन विवाद के डर से छोड़ दिया और हज़रत आयशा से फ़रमाया अगर तुम्हारी क़ौम अभी अभी अनेकश्वरवाद से न निकली होती तो मैं हज़रत इब्राहीम (अलै.) की बुनियादों पर काबा को खड़ा करता जिन पर इब्राहीम (अलै.) ने बनाया था।

बछड़े की पूजा एक बुराई थी, हज़रत हारून (अलै.) इस बुराई पर उम्मत में बंटवारे के डर से चुप रहे, उन्होंने फरमाया: ''ऐ मेरे भाई मेरी दाढ़ी और बाल पकड़ कर न खींचो, मुझे डर था कि आप कहेंगे तुमने बनी इसराईल के बीच बंटवारा कर दिया और मेरी बातों को ध्यान में नहीं रखा.'' (सूर: ताहा–93)

अगर इन्सान सबसे बेहतरीन अमल (कर्म) की शक्ति न रखता हो और हालात प्रतिकूल हों तो कम पर सन्तोष करने में कोई बुराई नहीं है.

इस सिलसिले में कुछ फ़िक्ही सिद्धान्त हैं जैसे– मेहनत से आसानी प्राप्त हो जाती है لمشقة تجلب आवश्यकताएं मना की हुई चीज़ों को वैध कर देती हैं, हानि को दूर रखा जाता है:

الضرورات تبيح المحظورات الضرر يزال

इसी तरह दूसरे फ़िक्ही सिद्धान्त व नियम हैं जो उस मुसलमान के सामने विस्तृत क्षितिज खोल देते हैं जो विशेष और अपवाद वाली परिस्थितियों में घिरा हो, फिर यह कि शरीअत के आदेशों का आधार आसानी पर है न कि कठिनाई पर, अल्लाह का इरशाद है:

अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है तुम्हें कष्ट में डालना नहीं चाहता (सूर: बक़र–185)

''अल्लाह तआला ने तुम्हारे ऊपर दीन में तंगी नहीं रखी है.''

(सूर: हज्ज–72)

हाँ, जो व्यक्ति मजबूरी की हालत में हो और वह इनमें से कोई चीज खाले, बिना इसके कि नियम के उल्लंघन की नियत रखता हो या आवश्यकता की सीमा को लांघे तो उस पर कुछ पाप नहीं, वास्तव में अल्लाह क्षमा करने वाला और कृपाशील है. (सूर: बकर–173)

सिवाय इसके कि वह मजबूर किया गया हो और उसका दिल ईमान पर सन्तुष्ट हो। (सूर: नहल–106)

यह तुम्हारे पालनहार की तरफ़ से छूट है और उसकी कृपा है।

(सूर: बक़र–178)

''अल्लाह तआला चाहता है कि तुम्हारा बोझ हल्का कर दे, और सत्यता यह है कि इन्सान कमज़ोर बनाया गया है''

स्वयं फ़क़ीहों ने अनुयायी क़ाज़ी की सत्ता मुज्तहिद क़ाज़ी मौजूद न होने की स्थिति में वैध बतायी है और इसी प्रकार पापी की गवाही को यदि कोई न्याय प्रिय मौजूद न हो और बूरे व्यक्ति के नेतृत्व में जिहाद वैध है

यदि कोई भला और बुराई से बचने वाला अमीर न हो।

इमाम अहमद से पूछा गया कि यदि अमीर है और मज़बूत है लेकिन फाजिर (व्यभिचारी) है और दूसरा भला है लेकिन कमज़ोर है तो दोनों में से किसके साथ मिलकर जिहाद करना चाहिए? फ़रमाया शक्तिशाली, व्यभिचारी का गुनाह उसी के लिए हो लेकिन उसकी शक्ति मुसलमानों के लिए लाभदायक है. जबकि कमज़ोर भले की भलाई तो स्वयं उसके लिए है लेकिन उसकी कमज़ोरी की हानि मुसलमानों को पहुँचेगी तो इन्सान को जिहाद शक्तिशाली के साथ करना चाहिए चाहे वह बुरा हो।

हालात और चीज़ों का सुधार चरणों में करना शरीअत के आदेशों और भले लोगों की सुन्नत में से है, स्वयं शरीअत ने शराब को हराम करने में चरणबद्ध तरीक़ा अपनाया, उसी तरह चरणबद्ध तरीक़ा प्राकृतिक है–जो मानव और जानवरों एंव पौधों में कार्य रत है. जब यह बात सिद्ध हो गई कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेना शरीअत के अनुसार वैध है तो मतदान और प्रतिनिधित्व मतदान प्रक्रिया और चुनावी गतिविधियों में भाग लेना साधारण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वैध होगा. इससे कोई अन्तर नहीं होता कि हम मतदान को गवाही के रूप में लें जैसा कि कुछ सामयिक फ़क़ीहों का विचार है या, इसे प्रतिनिधि बनाने के रूप में लें चाहे चुनाव में आज़ाद प्रत्याशी हो या किसी पार्टी के टिकट पर. पाकिस्तान की इस्लामी विचार परिषद ने जो मतदान की परिभाषा की है वह प्रतिनिधि बनाना (तौकील) या अधिकार सौंपना (तफ़्वीज़) है. तो इसमें गवाही का भाव सम्मिलित है. और इससे प्रतिनिधित्व अनिवार्य हो जाता है, यह कहना कि यह प्रतिनिधित्व है इस बात पर दलील है कि मतदान में गवाही, अनुमोदन और प्रतिनिधित्व

के भाव आपस में मिश्रित हैं, और फ़क़ीहों के लिए इस समस्या की शरअी हैसियत का निर्धारण कठिन है, इस लिए कि यह एक नई शब्दावली है जो शरीअत के भावों और बुनियादों की उपज नहीं है, बहर हाल यदि उद्देश्य रीति में शरीअत के उद्देश्य प्राप्त हों तो राजतनीतिक गठजोड़, दल, और राजनीतिक संस्थाएं बनाना वैध है, ताकि मुसलमानों के जान माल की रक्षा हो सके, जिस तरह ग़ैर मुस्लिम देशों के सरकारी विभागों और संसदीय संस्थाओं में भागीदारी वैध है. जहां तक हर तरह की भागीदारी (ग़ैर मुस्लिमों से) के इन्कार पर ज़ोर देना, सहयोग शब्दावलियों के भावों की व्याख्या में अतिशयोक्ति, खिलाफ़त-ए-राशिदा, इस्लामी शासन, या ईश्वरीय शासन के नारे की बात है तो यह सब सुन्दर सपने रह जाऐंगे, शुतुर मुर्ग की तरह रेत में सिर छिपाना और वास्तविकता के इन्कार का इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसी तरह की सोच ने मुसलमानों के जीवन को हराम बना रखा है।

लोकतन्त्र यद्यपि इस्लाम का अंश नहीं है लेकिन इसके सकारात्मक और अच्छे नियमों जिनसे यह व्यवस्था तैयार होती है वे इस्लाम में पहले से मौजूद हैं।

अधिकार, समता, न्याय के सिद्धान्त वर्तमान विश्व में लोकतंत्र से ही सच्चाई बन सकते हैं, वास्तविक लोकतन्त्र इस समय मनुष्य पर मनुष्य के अत्याचार को रोकने और अत्याचारी शासक को उसके पद से हटाने और परामर्श पर आधारित शरअी व्यवस्था को बनाने का माध्यम बन गई है और ये सारी चीज़ें इस्लामी शरीअत के उद्देश्यों और उसकी शिक्षाओं का एक हिस्सा है।

जहाँ तक शपथ लेने या संविधान की क़सम खाने का संबन्ध है वह एक प्रकार का वचन है कि संविधान की धाराओं का पालन किया जाएगा और पद पर बने रहने के दौरान पूरी ईमानदारी और बारीकी के साथ कर्त्तव्यों को पूरा किया जाएगा. गहरे अर्थों में वह शरअी शपथ नहीं है, हो सकता है कि वह निरंकुश सरकारों में शासक के नाम से क़सम खाने से कुछ कम हो. शपथग्रहण के लिए तैयार किए जाने वाले वाक्यों में परिवर्तन किया जा सकता है और उनको सही विश्वास के अनुसार बनाया जा सकता है ताकि वह इस्लाम की शिक्षाओं के विरुद्ध न हों।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों के पर्सनल लॉ की सुरक्षा की एक आदर्श व्यवस्था और एक अनोखा अनुभवः

जब मुसलमान पर एक ग़ैर मुस्लिम की सत्ता अस्वीकार्य है तो आखिर उन मुसलमानों की समस्याओं का क्या समाधान है जो ग़ैर मुस्लिम देशों में मुस्लिम अल्पसंख्यक की हैसियत से जीवन व्यतीत कर रहे हैं? और अपने अस्तित्व की सुरक्षा और मुसलमान की हैसियत से कैसे जी सकते हैं जब कि उनके सभी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन, मानव निर्मित क़ानून या शिर्क पूर्ण आदेश के अधीन हैं, जो पूर्ण रूप से इस्लामी आदेशों के विपरीत हैं? सत्ता चाहे विशेष रूप से हो चाहे साधारण हो, सब ग़ैर मुस्लिमों के हाथों में है? वह गैर शरअी आदेश और ग़ैर मुस्लिम अधिकारियों की सत्ता में अपने निकाह व तलाक और वक़्फ़ व विरासत जैसी समस्याएं हल करने पर मजबूर हैं।

मुस्लिम अल्पसंख्यक की हैसियत से बसने वाले मुसलमानों की संख्या

लाखों तक पहुँचती है और वर्तमान शासन व्यवस्थाओं में उन्हें इसकी अनुमति नहीं मिल सकती कि वह मुस्लिम देशों में पलायन कर जाएें. अगर वे स्वयं या हालात से मजबूर हो कर निकल भी जाएें तो दुनिया में कोई भी मुस्लिम देश ऐसा नहीं जो इस बात पर तैयार हो या इस बात के लिए सक्षम हो कि इतनी बड़ी संख्या में पलायन करने वाले मुस्लिम अल्पसंख्यकों का स्वागत कर सके या अपने देश की नागरिकता दे सके, फिर क्या तरीक़ा है कि कैसे मुसलमानों की इतनी बड़ी संख्या इस्लामी शरीअत की छत्र छाया में रह सकेगी जब कि दुनिया के अधिकतर देश काफ़िरों, मुश्रिकों, यहूदी और इसाई या अधर्मी और साम्यवादियों जैसे लोगों की सत्ता के अधीन हैं।

केवल एशिया के दक्षिण पूर्व क्षेत्र में ऐसी ग़ैर मुस्लिम सरकारें हैं जिसमें मुस्लिम अल्पसंख्यकों की बहुत बड़ी संख्या रहती है, उदाहरण के रूप में भारत में लगभग दो सौ मिलियन मुसलमान रहते हैं फिलीपींस, श्री लंका और नैपाल में भी मुसलमानों की बड़ी संख्या रहती है। अब इन मुसलमानों के लिए कैसे संभव है कि पर्सनल लॉ की सीमा तक भी इस्लामी आदेशों की छत्र छाया में जीवन व्यतीत कर सकें, यद्यपि पर्सनल लॉ की ओर से लापरवाही मुसलमानों के, वजूद और उनकी पहचान के लिए खतरा है और मूर्तिपूजा की सभ्यता शैतानी और शिर्क वाला जीवन अधर्म साम्यवाद, नास्तिकता और यौन स्वतंत्रता के वातावरण में इनकी औलाद के नष्ट होने का संदेह है।

फ़तवा केन्द्रों में जो जटिल प्रश्न आते हैं और उन देशों में मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं के बारे में पूछा जाता है जो अधिकतर पतियों के

अन्याय के कारण और कभी वहां की सरकार के न्यायलयों के ग़लत रवैये के कारण पैदा होते हैं इनके उत्तरों पर एक दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि वह समस्या आज भी है और फ़क़ीहों के यहाँ इसका वास्तविक हल मौजूद नहीं है जो मुसलमानों की इन कठिनाइयों से उबार सके और उनके रहन सहन को संगठित कर सके और इस पर अमल करना, ग़ैर मुस्लिम देशों में रहते हुए सरल भी नहीं है. यह उत्तर व्यक्तिगत होते हैं ये कुछ परिस्थितियों में लागू करने योग्य होते हैं और कुछ में लागू करने योग्य नहीं होते।

इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मैं उचित समझता हूँ कि उस अनुभव को प्रस्तुत करूँ जो मुसलमानों और विशेष रूप से ग़ैर इस्लामी देशों में मुस्लिम अल्प संख्यकों की घरेलू समस्याओं के समाधान में एक अद्भुत हैसियत रखता है. मेरे विचार में इस अनुभव के माध्यम से मुसलमानों के अस्तित्व और पहचान की नष्ट होने से बचाने में सहायता मिल सकती है यह एक लम्बा अनुभव है जिसकी आयु सत्तर (70) वर्ष है और जिसको प्रबल फ़िक़्ही और शरअी प्रमाण भी प्राप्त है. इस अनोखे अनुभव से मेरा तात्पर्य इमारत–ए–शरईया बिहार, उड़ीसा, और झारखण्ड है जो भारत में सत्तर वर्ष से स्थापित है और बड़ी सक्रियता के साथ बड़े उलमा की निगरानी में काम कर रहा है।

इस अनुभव का निचोड़ यह है कि मुसलमानों में किसी व्यक्तित्व का चुनाव अमीर के रूप में होता है और उसकी हैसियत शेखुल इस्लाम की होती है. इसकी शक्ति का आधार इस बात पर है कि उसका चुनाव नगर के महत्वपूर्ण लोगों, समाज के समझदार बड़े लोग, या मुसलमानों के एक

बड़े वर्ग ने किया है. इसके चुनाव और उस पद पर उसकी नियुक्ति के बाद उसका चरित्र और कर्तव्य यह होता है कि वह मुसलमानों की समस्याओं को राजनीतिक संवेदनशीलता से दूर रहते हुए ग़ैर मुस्लिम सरकार के साथ मिल कर संगठित करता है और उन समस्याओं को छेड़ने से बचता है जो देश की आन्तरकि शांति व्यवस्था से सम्बन्धित हों या जो देश के संविधान के सिविल क़ानून और क्रिमिनल क़ानून के अन्तर्गत आती हों. बल्कि चुने हुए अमीर का काम मुसलमानों की पहचान की रक्षा करना होता है, वह सरकारी संस्थाओं और पदाधिकारियों को इसकी किसी भी तरह अनुमति नहीं देता कि वह मुसलमानों के पर्सनल लॉ में हस्तक्षेप करें इस पद पर नियुक्ति के बाद उसे क़ाज़ियों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है, इस व्यवस्था के माध्यम से कभी कभी घरेलू समस्याओं के अतिरिक्त दूसरी ससस्याओं में भी मध्यस्थ या पंच के रूप में मुसलमानों के बीच विवादों में फ़ैसला किया जा सकता है।

अमीर द्वारा नियुक्त किए गए क़ाज़ी मौलिक रूप से परिवारिक समस्याओं जैसे निकाह, तलाक़, निकाह निरस्त करना और पति पत्नी का अलगाव आदि को आवश्यक शर्तों की मौजूदगी में गहरे फ़िक़ही स्तर के अनुसार समाधान करने का कर्त्तव्य पूरा करते हैं. इन मामलों की अदालती कार्रवाई अदालतों की तरह होती है, यह कार्रवाइयाँ लगभग मुफ्त या दूसरे न्यायालयों की तुलना में बहुत कम खर्च में होती हैं, जिसके कारण मुसलमान इसकी तरफ़ अधिक आते हैं. इससे बढ़कर इसके माध्यम से मुसलमानों में जागरुकता, अपनी घरेलू और व्यक्तिगत जीवन को शरीअत के आधार पर स्थापित करने और निकाह, तलाक़ वक़्फ़ व विरासत जैसी

समस्याओं में मानव निर्मित और शिर्कपूर्ण कानून से बचने में सहायता मिलती है. अमीर या संगठन का अध्यक्ष ज़कात के धन को जमा करने और शरअी तरीक़े पर उनके मद में खर्च करने के लिए बैतुल माल (सरकारी कोष) स्थापित करता है, मुसलमानों के जीवन में इस प्रकार के आन्तरिक संगठनों ने भारत के दो राज्य बिहार और उड़ीसा में बड़ी सफलता प्राप्त की है। कभी कभी गैर मुस्लिम शासन इस बात पर मजबूर होता है कि वह उन मुसलमान क़ाज़ियों के फ़ैसलों को मानें जिनको इमारत-ए-शरईया की तरफ़ से नियुक्त किया गया है और उनके फ़ैसलों का आदर करें इस लिए कि वे मुसलमानों के दिलों में आदर का स्थान रखते हैं।

इस जैसी व्यवस्था की शरअ़ी बुनियाद साधारण हदीसें और आसार (सहाबा और इमामों के विचार) हैं जिसमें मुसलमानों को सामूहिक जीवन अपनाने और एक अमीर के अनुसरण करने की दावत दी गई है. चाहे यात्रा में ही आदमी क्यो न हों इसके अतिरिक्त और भी दूसरे तर्क हैं जैसे ईद व जुमा की व्यवस्था करना जिसमें मुसलमानों के किसी ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है जो निगरानी और संगठित रखने का कार्य करे. फ़िक़्ह की किताबों में ऐसे बहुत से तर्क आए हैं जो इस तरह की व्यवस्था स्थापित करने की दावत देते हैं।

अल्लामां शामी फरमाते हैं: ''अगर गवर्नर काफ़िर है तो भी मुसलमानों के लिए जुमा व ईद की व्यवस्था करना वैध है. मुसलमानों की सहमति से उनके बीच क़ाज़ी रहेगा और मुसलमानों पर अनिवार्य होगा कि वह अपने लिए मुस्लिम हाकिम (गवर्नर) ढूंड लें''

अल्लामा इब्नुल हुमाम अपनी किताब फत्हुल क़दीर में लिखते हैं:

यदि सुल्तान (बादशाह) न हो और न ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका अनुसरण वैध हो जैसा कि कुछ मुस्लिम देशों में हुआ है जिन पर काफ़िरों ने विजय प्राप्त कर ली है जैसे पश्चिम में क़र्तबा, बलन्सिया और हब्शा के नगर, और उन्होंने मुसलमानों को उस पर बाक़ी रखा, तो मुसलमानों पर अनिवार्य होगा कि वह अपने में से किसी पर सहमति बना लें और उसको अपना हाकिम (गवर्नर) बना लें और वह हाकिम क़ाज़ी की नियुक्ति करे या स्वयं क़ाज़ी के कर्त्तव्य निभाये.''

(फ़तहुल-क़दीर, 365/6)

''जब फ़िक़्ह की किताबों में ''मुसलमानों की आपसी सहमति से क़ाज़ी बन जाएगा'' के वाक्य बार बार आए हैं लेकिन बहुत से मुस्लिम अल्प संख्यकों ने इस आदेश की लापरवाही की जिसके फलस्वरूप वे अपना अस्तित्व खो बैठे और पतन का जीवन जीने पर मजबूर हो गए. अत: उचित यही लगता है कि इमारत-ए-शरईया का निरीक्षण और उसके क़ाज़ियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का अध्ययन करने के बाद इमारत-ए-शरईया जैसी व्यवस्था अपनाई जाए. दिवंगत क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी साहेब इस व्यवस्था के विशेष योग्यता वाले प्रसिद्ध क़ाज़ी थे. उन्होंने और दिवंगत मौलाना मिन्नतुल्लाह रहमानी ने भारत में इस्लामी अस्तित्व की सुरक्षा और मुसलमानों के पर्सनल लॉ की रक्षा में बहुमूल्य सेवाऐं की हैं।

दक्षिणी अफ़्रीक़ा के मुसलमानों ने भी रंग भेद वाली व्यवस्था के समापन के बाद नई व्यवस्था से लाभान्वित होने का इरादा किया, उनके पर्सनल लॉ से सन्बन्धित इस्लामी संविधान की रचना हुई उसे सरकार के

समक्ष प्रस्तुत किया गया कि वह मुसलमानों के पर्सनल लॉ को स्वीकार करें जो निकाह, तलाक़ और निकाह निरस्तीकरण से सम्बन्धित शरीअत के आदेशानुसार वर्षों से संकलित है।

फ़क़ीहों के स्पष्टीकरण किसी एक फ़िक्ही मत तक सीमित नहीं हैं बल्कि साधारण फ़िक्ही किताबों में बहुत से तर्क मौजूद हैं।

कुवैत से प्रकाशित ''मौसूअ: फ़िक़्हीया (फिक्ही विश्वकोष) में चारों प्रसिद्ध फ़िक़्ही मसलकों का निचोड़ ऐसे नगर के बारे में जिसमें मुसलमानों का कोई खलीफा न हो या किसी नगर पर ग़ैर मुस्लिमों का कब्जा हो, इनकी प्रमाणित किताबों से प्रस्तुत किया है कि आपसी झगड़ों में सुलह सफाई और मुसलमानों के मामलों को संगठित करने के लिए क़ाज़ियों की नियुक्ति संभव है तो इन मसलकों का निचोड़ यह है:

यदि सुल्तान न हो और न ही वह व्यक्ति हो जिसका अनुसरण वैध है या वहां तक पहुँचना कठिन हो तो उसमें फकीहों का मतभेद है।

हनफ़ी उलमा का विचार है कि मुसलमानों पर अनिवार्य है कि आपस में से किसी को हाकिम बना लें और हाकिम क़ाज़ी की नियुक्ति करेगा या स्वयं क़ाज़ियों का कार्य करेगा।

मालिकी उलमा का विचार है कि इमाम का अस्तित्व या उससे सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो तो ज्ञान और अनुभव वाले लोगों में से जिनमें क़ाज़ी होने की शर्तें पूरी होती हों. उसको क़ाज़ी बनायें और यह नियुक्ति आवश्यकता के कारण इमाम की निगरानी में होगी।

शाफ़ई उलमा कहते हैं कि क़ाज़ी की नियुक्ति वैध होगी यदि उसकी नियुक्ति पर तमाम अधिकार रखने वालों में सहमति हो और उसकी सहायता

के लिए सक्षम हों, शर्त यह है कि दूसरे के लिए फ़ैसला करना संभव न हो।

हम्बली उलमा का विचार यह है कि यदि शहर क़ाज़ी से खाली हो जाए और शहर के सभी लोग एकत्र होकर किसी क़ाज़ी की नियुक्ति कर लें तो यदि इमाम मौजूद न होगा तो उसके फ़ैसले लागू होंगे लेकिन यदि इमाम उपस्थित होगा तो यह उचित नहीं (फ़त्हुल क़दीर, 461/5, रद्दुल मुहतार 369/5) रौजतुल क़ज़ा 6/1, तब्सरतुल हुक्काम 29/1, अदबुल क़ाज़ी लिल-मावर्दी 141, 129/1) यह फ़िक़्ही दलीलें उन मुसलमानों को एक रास्ता दिखाती हैं जो अल्पसंख्यकों की हैसियत में रहते हैं ताकि वे अपने क़ानूनी अधिकार का प्रयोग कर सकें और किसी दीनी ज़िम्मेदार पर सहमत हो जाऐं जो कि अमीर, शेखुल इस्लाम या मुसलमानों का हाकिम कहलाएगा, क़ाज़ियों की नियुक्ति, प्रचार करने की तरह विभिन्न प्रान्तों के लिए होगी और पर्सनल लॉ की सीमा तक उसको फ़ैसले का अधिकार होगा लेकिन दूसरे सभी मामलों में उसे अधिकार प्राप्त न होगा।

एक ही शहर में एक से अधिक क़ाज़ी या दीनी ज़िम्मेदार की नियुक्ति अगर उसकी आवश्यकता हो तो वैध है. हम्बली फ़क़ीहों की किताबें इसको स्पष्ट करती हैं।

अगर शहर के दो भाग हों और क़ाज़ी की नियुक्ति पर एक ही भाग सहमत हो, दूसरा नहीं तो उस विशेष भाग में उसकी नियुक्ति उचित होगी और दूसरे भाग में ग़लत होगी. इसलिए कि दो भागों का अन्तर दो शहरों के अन्तर की तरह है. यदि सत्ता उचित होगी तो उसके आदेश लागू होंगे. चाहे अनचाहे सत्ता के लागू हो जाने के कारण वह आदेश अनिवार्य हो जाऐंगे।

(अल-मुग्नी 106/9, कशफुल कि़ना 288/6)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुस्लिम अल्पसंख्यक असंगठित जीवन व्यतीत कर रहे हैं अधिक से अधिक केंद्रों और इस्लामी कमेटियां और प्रचार केन्द्र अत्यन्त सम्मानजनक होने के बावजूद लगभग फ़की़हों से खाली हैं. और यदि हैं तो मात्र मुसलमानों के साधारण प्रश्नों का उत्तर देने योग्य नहीं हैं जब कि निकाह तोड़ने या अलगाव जैसे मामलों में फ़ैसला करने के लिए मुस्लिम अल्पसंख्यक की परेशानियां बढ़ती जा रही हैं. इस लिए मेरा परामर्श है:

मुसलमानों को अपने मामलात को संगठित रखने के महत्व की तरफ और साधारण समस्याओं के ज़िम्मेदार के रूप में किसी दूरदर्शी और दीनी व्यक्तित्व को चुनने और अपनाने की तरफ ध्यान दिलाया जाए और वह ज़िम्मेदार आवयकतानुसार एक से अधिक का़ज़ियों को चारों मसलकों की किताबों में लिखी हुई कुरआन व सुन्नत की दलीलों के अनुसार नियुक्त करें।

मुसलमानों के पर्सनल लॉ की सुरक्षा और दीनी पहचान के बचाव के लिए भारतीय मुसलमानों द्वारा स्थापित पर्सनल लॉ बोर्ड के अनुभव की पड़ताल की जाए।

विभिन्न देशों में जितनी भी स्वाधीनता प्राप्त हो उसमें रहते हुए का़ज़ियों की नियुक्ति और झगड़े और विवाद के निपटारे और फ़ैसलों को लागू करने में भारत के कुछ प्रान्तों में स्थापित इमारत-ए-शरईया के अनुभव से लाभान्वित होना चाहिए।

वह देश जहां प्रजातांत्रिक सरकारें हैं, और राजनीतिक गतिविधियों और

पार्टी बनाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, मुस्लिम फुक़हा पर अनिवार्य है कि एक शरअी संस्था स्थापित करें जो मुसलमानों को हिदायत दे और जो राजनीति की शरीअत का जानकार हो और उसमें उसे विशेष योग्यता प्राप्त हो और चुनाव व मतदान के सिलसिले में मुसलमानों को दिशा दे। मुसलमानों की हमदर्द पार्टियों के साथ समझौते की शरअी सीमाऐं और नियम निर्धारित करे और ग़ैर मुस्लिम कौमों के साथ शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के सिद्धान्त निर्धारित करे ताकि अवसरवादी राजनीतिज्ञों के बीच आकर यह महत्वपूर्ण कार्य नष्ट न हो जाए. मुसलमान अपने हितों के लिए एक पलड़े को दूसरे पर भारी कर देने में सक्षम हों. उनका इतना प्रभाव हो कि आने वाले ख़तरों और हानियों को दूर रख सकें और अपनी स्थितियों को अधिक से अधिक अपने क़ाबू में रख सकें यहां तक कि अल्लाह का फ़ैसला आ जाए।

अन्त में मैं कुवैत के वक्फ़ और इस्लामी मामलात के मंत्रालय का आभार व्यक्त करना अनिवार्य समझता हूँ कि उसने इस महत्वपूर्ण फ़िक्ही सेमीनार में भाग लेने का अवसर प्रदान किया, मंत्रालय ने इस्लामी फ़िक्ह अकेडमी के साथ प्रारंभ से ही बेहतरीन सहयोग दिया है अल्लाह उसके पदाधिकारियों को अच्छा बदला दे, जिनमें सर्व प्रथम महा महिम औक़ाफ़ और इस्लामी मामलों के मंत्री जनाब डा. अब्दुल्लाह मअतूक अल-मअतूक और औक़ाफ़ मंत्रालय के सचिव श्री आदिल अब्दुल्लाह अल-फ़ल्लाह है. अल्लाह तआला कुवैत को हर तरह की बुराई से सुरक्षित रखे।

☆☆☆

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में मुसलमानों की भागीदारी और उसके शरअ़ी आदेश

डा. नूरुद्दीन अल-खादिमी

(ट्यूनिशिया)

भूमिकाः

"गैर मुस्लिम देशों की राजनीति में मुसलमानों की भागीदारी और उसके शरअ़ी आदेश" की चर्चा बिल्कुल नई और ताज़ा है, जो ग़ैर मुस्लिम देशों में मुसलमानों के सामने आने वाली एक बिल्कुल नई समस्या से सम्बन्धित है, यह समस्या उस समय सामने आई जब इन ग़ैर मुस्लिम देशों में मुसलमानों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती गई और जीवन के विभिन्न मैदानों में इनकी मौजूदगी, सक्रियता और प्रभाव और पहुँच में स्पष्ट वृद्धि हुई. इस नई समस्या ने कई प्रश्न खड़े कर दिए जो इसकी क़ानूनी हैसियत और इस्लामी सिद्धान्त, आदेश, उद्देश्य और मूल्यों से सम्बन्धित थे।

इसलिए सामने आने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में जो विचार और फ़तवे मौजूद हैं वे दो बड़े मौलिक और परस्पर विरोधी रुझानों में बंटे हुए हैं इनमें एक रुझान वैधता का है, और दूसरा मनाही और अवैधता का है, दोनों रुझानों वाली पार्टियों में से हर एक अपने दृष्टिकोण के समर्थन और दूसरे के दृष्टिकोण का विरोध करने के लिए दलीलें और तर्क प्रस्तुत करते हैं।

मैं यहां इन तमाम विचारों और तर्कों को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत नहीं

करना चाहता हूँ क्योंकि वे प्रसिद्ध हैं और अगलों की किताबों में विस्तार पूर्वक लिखा हुआ है. फिर भी मैं इनमें से कुछ को इस लेख की आने वाली पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा. इस भूमिका में मौलिक रूप से मेरा उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि यह समस्या बहुत महत्वपूर्ण है और वर्तमान विकसित युग की देन है, इसके अतिरिक्त यह कि बहुत से मुसलमान विशेष रूप से ऐसे मुसलमान काफिरों के बीच जीवन व्यतीत कर रहे हैं इनकी महत्वपूर्ण धार्मिक आवश्यकता है।

यही कारण है कि इस समस्या से सम्बन्धित फ़िक़्ही आदेशों और नियमों को साधारण मुसलमानों के सामने लाने का प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण है. इससे गै़र मुस्लिम देशों में बसने वाले मुसलमानों के इन मामलों का स्पष्टीकरण और उन देशों में उनके अस्तित्व की स्थिरता और उनके जीवन के कारवां को उचित दिशा देने में सहायता मिलती है. इससे मौजूदा इज्तिहादी प्रयास (शोध विधि) की सक्रियता और फ़िक़्ही अकेडमीयों की क्षमता खुलकर सामने आ जाती है. और इसी के साथ इस्लाम की इस प्रकार की समस्याओं से जूझने की योग्यता और उसके आदेश शिक्षाओं के अन्तिम और अभरता सिद्ध करने में सहायता मिलती है। मैं इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी और इसके अभिभावकों और ख़ास तौर पर अकेडमी के जनरल सिक्रेट्री मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी का, उनके निमंत्रण और स्वागत के लिए धन्यवाद करता हूं।

इसी तरह हमें अपने स्वगीर्य भाई और शैख़ क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी (अल्लाह उन पर रहम फ़रमाए और उन्हें शहीदों और सदाचारियों के साथ में जगह प्रदान फ़रमाए) को भुलाना नहीं चाहिए। अन्त में मैं अपने

आदर्णीय भाइयों से उन ग़लतियों और कमियों के लिए क्षमा चाहता हूं जो इस लेख में आ गयी हों। इस लिए कि यह विषय संवेदनशील और कठिन है और इस संबंध से विमुखता संभव नहीं कि कोई भी स्कालर या पाठक हमारा सही मार्गदर्शन या हम से होने वाली ग़लतियों को बताए। अल्लाह तआला ने सच कहा है कि: وفوق كل ذى علم عليم (हर ज्ञानी के ऊपर उस से ज़्यादा जानने वाला है) और अल्लाह तआ़ला का इर्शाद है: وقل رب زدنى علما (और कह दीजिए कि ऐ अल्लाह हमारे ज्ञान में वृद्धि कर दीजिए)।

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागीदारी से क्या तात्पर्य है:

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागीदारी से तात्पर्य वहां की राजनीतिक सरगर्मियां या राजनीतिक प्राक्रिया पूरी करना, या राजनीतिक को व्यवहार में बरतना है, और विद्वानों की परिभाषा के अनुसार राजनीतिक सामान्य मामलों के प्रबन्ध और सार्वजनिक जीवन को ऐसा रुख़ देने और उस का इस तरह प्रबन्ध करने को कहते हैं जो उन्हें उद्देश्यों के निकट और बिगाड़ से दूर करने वाले हों। इब्ने नुजैम ने इस की परिभाषा इस तरह की है कि यह ऐसा काम है जो शासकों की तरफ़ से नज़र आने वाले किसी लाभ के लिए किया जाए। चाहे इस संबंध से कोई आंशिक तर्क पेश न किया जा सके। जब कि इब्ने अक़ील रह0 ने इस की परिभाषा यूं की है कि वह किसी भी ऐसे काम को कहते हैं कि जिस के अन्तर्गत लोग सलाह और बेहतरी से ज़्यादा निकट और फ़ित्ने व फ़साद से ज़्यादा दूर हो सकें चाहे स्वयं रसूलुल्लाह सल्ल0 से यह साबित न हो। इसके अलावा राजनीतिक भागीदारी उन तमाम मसाइल, हालात और हरकत व अमल

शामिल है जो राजनीति में शामिल या कार्यकर्ता के द्वारा होता है, इन संसाधनों व हालात और कार्यव्यन में से कुछ ये हैं:

☆ राजनीतिक पार्टी गठित करना, उस में शामिल होना, उस के लिए विज्ञापन और प्रोपैगन्डा करना, उस का बचाव करना और उसकी ज़िम्मेदारियां निभाना और उस के आसार व परिणामों को क़ुबूल करना।

☆ चुनाव में उम्मीदवार बनना या बनाया जाना, प्रोपगंडा करना, जनता की जांच परख करना ओर उसका अवलोकन करना।

☆ किसी दूसरी पार्टी के साथ गठजोड़ (एलाइंस) बनाए रखना, राजनीतिक बलाक बनाना और राजनीतिक दांव पेच अपनाना।

☆ आने वाली मुश्किलात का अवलोकन करना और उन के हल मालूम करना।

☆ व्यवस्था, शासन, मंत्रालय ओर संविधान से संबंध रखने वाले कामों में हिस्सा लेना।

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागी दारी के गुणों और विशेषताओं में से एक बात यह है कि इसका सम्बन्ध ग़ैर इस्लामी वातारण से होता है। इसी कारण से यह भागीदारी इस्लामी सिद्धान्तों और नियमों के अन्तर्गत और अनुकूल नहीं है बल्कि वह ऐसी चीज़ों से नियंत्रित और जुड़ी होती हैं जो अधिकतर हालात में इस्लाम के प्रतिकूल होती है. इस लिए राजनीतिक भागीदारी का यह कार्य साधारण अर्थों में इस प्रकार का केवल एक साधारण राजनीतिक कार्य नहीं होता जिसके अन्तर्गत पार्टियों से सम्पर्क, प्रचार की व्यवस्था, चुनावी अभियान के लिए अनिवार्य व्ययों की व्यवस्था

जैसी चीजें आती हैं बल्कि इसके अन्तर्गत वह सारे कार्य और गतिविधियां आती हैं जो उन पार्टियों के समर्थन पर आधारित और इस्लाम के प्रतिकूल और विरुद्ध होती हैं. ऐसे में इस प्रश्न की जटिलता बढ़ जाती है और इसका उत्तर भी जटिल और हर उत्तर के साथ एक नया प्रश्न खड़ा हो जाता है, इसीलिए मैंने यह बात कही थी कि यह समस्या बहुत अधिक जटिल है इस प्रश्न के सम्बन्ध में केवल आंशिक तर्क और एक आयत या हदीस और उपरी स्पष्टीकरण ही पर्याप्त नहीं है बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि इस पर शोध पूर्वक दृष्टि भी डाली जाए जिसमें साधारण स्तर पर दलीलों, महत्वपूर्ण और मौलिक सिद्धान्तों व नियमों के अतिरिक्त प्रमाण्कि शरअ़ी उद्देश्य भी सम्मिलित हों।

गैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागी दारी के सम्बन्ध में उलमा में दो रूझान पाए जाते हैं यहां हम दोनों के समर्थन तथा विरोध में दलीलों को प्रस्तुत करते हैं:

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागीदारी के समर्थन में तर्क:

इस रुझान के समर्थकों का विचार यह है कि पश्चिमी देशों में मुसलमानों की तरफ़ से राजनीतिक कार्य में भागीदारी में कोई बुराई नहीं है इनके इस विचार के पक्ष में विभिन्न तर्क हैं उनमें से कुछ निम्न हैं:

बहुत सी ऐसी क़ुरआन व सुन्नत की दलीलें हैं जिनसे ग़ैर मुस्लिमों में नेतृत्व की ज़िम्मेदारी निभाने की वैधता समझ में आती हैं जैसे-

एक ग़ैर मुस्लिम देश और वातावरण में यूसुफ (अलै0)का मंत्री पद की मांग करना और नज्जाशी जैसे भले व्यक्ति का ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार चलाना आदि. अल्लाह की तरफ़ दावत, सुधार व दिशा

निर्देश, प्रशिक्षण, निर्माणत्मक स्तर पर वातावरण पर प्रभाव को वास्तविकता और कार्य रूप देना, इस लिए कि राजनीतिक जीवन में पश्चिम वालों के साथ भागीदारी, और उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने, इस्लाम और इस्लामी मूल्यों और नैतिकता से उन्हें अवगत कराना, उन्हें इस्लाम स्वीकार कराने और मुसलमानों को सीमित रखने और सामाजिक बहिष्कार जैसी स्थिति को बदलने का अवसर मिलता है जो वास्तव में इस्लामी अस्तित्व को हाशिए पर ला खड़ा करता और वास्तविक चरित्र से बहुत दूर कर देता है।

* मुसलमानों की समस्याओं का समाधान और पश्चिमी देशों में उनकी बस्तियां बसाने को सरल बनाना और उन्हें उन चीजों से अवगत कराना जो उनके लिए लाभदायक हों. अत: स्पष्ट है कि उन देशों के राजनीतिक कार्य में भागीदारी के फलस्वरूप बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं जो मुसलमानों के पक्ष में होते हैं और वे उनकी आवश्यकता पूरी करते हैं।

* इस राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से इन देशों में बसे मुसलमानों की सहायता, इसका तरीक़ा वह है जिसे आजकल प्रेशर ग्रुप, राजनीतिक ब्लाक और लाबी कहा जाता है. अत: इन देशों में बसने वाले मुसलमान इस स्थिति में होते हैं कि वे उन देशों को इस बात पर मजबूर करें या सन्तुष्ट करें कि वे वहां के मुस्लिम समुदाय दुनिया के दूसरे क्षेत्रों में बसने वाले मुसलमानों के सामने आने वाली समस्याओं के सम्बन्ध में सकारात्मक रवैया अपनाऐं।

शरीअत की साधारण विशेषताएं (योग्यता, सच्चाई, सन्तुलन, व्यापकता और अनन्तला) पर बल देना और उनको सक्रिय बनाना, इस लिए है कि

राजनीतिक भागीदारी के कार्य को शरीअत के आधार पर गठन और आकार देना, इस बात का समर्थक और उसको सिद्ध करने का महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है कि इस्लामी शरीअत पश्चिम और संसार के दूसरे क्षेत्रों के लिए भी उचित और लाभदायक है, इसमें वर्तमान परिस्थितियां और समय को ध्यान में रखना सम्मिलित है, और इन परिस्थितियों और युग का सम्बन्ध दुनिया के सभी देशों और जनता से है. इसी प्रकार वे सभी परिस्थितियों के साथ मिलकर कार्य करती है. जिसमें पश्चिमी और दूसरे ऐसे इस्लामी देश भी सम्मिलित हैं जिनकी परिस्थितियां और राजनीतिक, क़ानूनी, चुनाव व्यवस्था और कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में शरअी हैसियत से बात की जा सकती है।

* वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए और रीति रिवाज के सिद्धान्त का पालन करते हुए फुकहा, मुज्तहिद, क़ाज़ी, सुधारक दावत का काम करने वाले, प्रशिक्षण और पालन करने वालों ने अपने ध्यान का केंद्र बनाया है, उन्होंने फ़तवा देना, इज्तिहाद करना, फ़ैसला करना और सुधार व पालन प्रशिक्षण और धार्मिक निर्देश के कार्य में इसे आवश्यक शर्त का दर्जा दिया है. जहां इन उलमा के अनुसार यदि ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में मुसलमान भागीदार न बनें तो यह वर्तमान आवशयकता से लापरवाही बरतने और एक आवश्यक शर्त से जान बूझ कर आंख मूंदने जैसा होगा।

राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी की मनाही के लिए दलीलें:

इस रुझान के समर्थक ग़ैर मुस्लिम देशों में मौजूद मुसलमानों को वहां की राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने से अनिवार्य रूप से रोकते हैं इसके लिए उनके पास कई दलीलें हैं:

* पवित्र क़ुरआन व सुन्नत की बहुत सी वे दलीलें जो ऐसे लोगों को जो अल्लाह की तरफ़ से उतारी गई शरीअत के अनुसार अपने फ़ैसले नहीं करते उसे कुफ़्र, बुराई और अन्याय की संज्ञा दी जाती है, जिनके अनुसार आदेश केवल अल्लाह के लिए विशेष है. वह अल्लाह की शरीअत को छोड़कर किसी और शरीअत को अपनाने, अत्याचारियों की तरफ झुकने, दोस्ती का सम्बन्ध मज़बूत करने और ग़ैर मुस्लिमों से सहायता मांगने जैसे कार्य से रोकती हैं।

* किसी से दोस्ती और दूरी, अल्लाह के लिए ही प्रेम और अल्लाह ही के लिए घृणा का और यह सिद्धान्त भी कि मुसलमानों की सहायता की जाए और ग़ैर मुस्लिमों का विरोध किया जाए. इस विचार के समर्थकों की दृष्टि में ग़ैर मुस्लिम देशों के राजनीतिक कार्य में मुसलमानों की भागीदारी इस नियम के बिल्कुल विपरीत है और काफ़िरों और अधर्मियों से मित्रता और उनके साथ सहयोग के कार्य में मुसलमानों को लीन करने वाला, और स्वयं मुसलमानों को मुसलमानों से दूर करने वाला कार्य है बल्कि कभी कभी काफ़िरों की तरफ़ से मुसलमानों के साथ दुश्मनी के रवैये पर चुप रहने, और मुसलमानों के विरुद्ध उनके दुश्मनों को सहयोग देने के फलस्वरूप मुसलमानों का कार्य स्वयं मुसलमानों के विरुद्ध और मुसलमानों के लिए ही हानिकारक होता है और अल्लाह की शरीअत में इन तमाम बातों से मना किया गया है।

* नेकी का आदेश देना और बुराई से रोकने का सिद्धान्त, इसलिए राजनीतिक भागीदारी इस्लाम के तरीक़ों और मूल्यों और उसके आदेश के विरुद्ध राजनीतिक व्यवस्थाओं का मानना और उन पर भरोसा करना और बिगाड़ पैदा करने वाले पहलुओं और ग़लत नीतियों से आंख मूंदने जैसा है.

और यह तमाम चीज़ें ''नेकी का आदेश और बुराई से रोकने'' के कर्त्तव्य के विरुद्ध हैं, इसलिए कि, जैसा कि हम जानते हैं कि यह सिद्धान्त जो अच्छी बातों को स्वीकार करने और लोगों को उसकी तरफ़ बुलाने और बुराई से रोकने और लोगों को उससे दूर रखने और बुरी चीज़ को दूर या कम करने पर आधारित है।

* यह सिद्धान्त कि मुसलमानों के व्यक्तित्व का ऐसा विकास करना चाहिए जो दूसरों की तुलना में विशेष गुणों के वाहक हों, इस आधार पर देखा जाए तो राजनीतिक भागीदारी, उनके व्यक्तित्व के ऐसे गुणों को नष्ट करने का कारण बनती हैं क्योंकि उस कार्य के फलस्वरूप एक बिल्कुल दूसरी दुनिया में घुल मिल जाती और वर्तमान राजनीतिक स्थिति के अधीन हो जाती है. इसके अन्दर भी अपने मित्रों का अनुसरण और राजनीतिक नारों और चिन्हों के पीछे भागने के अनुसरण की मानसिकता पैदा जाती है।

* राजनीतिक भागीदारी के लाभप्रद न होने की धारणा: जैसा कि देखने में आता है कि इसके नतीजे में लोगों का धन, समय और प्रयास अकारण ही नष्ट होता है और उसका कोई ऐसा लाभ नहीं जो उल्लेखनीय हो. इसकी हक़ीक़त उस समय खुलकर आती है जब राजनीतिक कार्य में भाग लेने वाले मुसलमान इस बात की शिकायत करते नज़र आते हैं कि दूसरी ग़ैर इस्लामी पार्टियां विशेष रूप से पश्चिमी देशों की राजनीतिक पार्टियों की तुलना में उनकी आर्थिक, संगठनात्मक और प्रचार प्रसार व तकनीकी क्षमता कितनी कम है।

राजनीतिक भागीदारी के फ़िक़्ही आदेश:

* इन दोनों रुझानों और मतों को सामने रखकर यह आवश्यक लगता है

कि समस्या के सम्बन्ध में कोई तय शुदा फ़िक़्ही मत अपनाया जाए और यह तब ही सम्भव है जब कि समस्या को तमाम शरअी नियमों और शरअी उद्देश्यों के प्रकाश में देखने का प्रयास किया जाए।

यह काम उस मत को सामने लाने में उचित ढांचे की हैसियत रखता है, विशेष रूप से इसलिए कि समस्या का सम्बन्ध उन इज्तिहादी समस्याओं से है, जिनसे सम्बन्धित स्पष्ट रूप से पवित्र कुरआन व सुन्नत में दलीलें मौजूद नहीं हैं. इसी प्रकार वह ऐसी समस्या है जिसमें मतभेद है. इसलिए कि यह समस्या बहुत जटिल है और इसके सम्बन्ध एक दूसरे से गुथे हुए हैं जिसके कारण इसका कार्यक्षेत्र, रिवायतें और निष्कर्ष और दूसरी चीज़ भिन्न है, इन रिवायतों और निष्कर्षों को सामने रख कर बात करना उचित फ़िक़्ही आदेश को प्राप्त करने में सहायक होगा।

इस लिए राजनीतिक भागीदारी के दायरे का स्पष्टीकरण अनिवार्य है क्योंकि फ़िक़्ही आदेशों का दारो मदार इसी पर है. इस सिलसिले में सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि पश्चिमी देशों के राजनीतिक कार्य में भागीदारी में संभावित क्षेत्र क्या हैं?

ग़ैर मुस्लिम देशों में राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी के क्षेत्रः

राजनीतिक कार्यों में भागीदारी स्वयं राजनीतिक कार्य के दायरे, देश और इसकी राजनीतिक व्यवस्था और इसके अपने राजनीतिक एंव सांस्कृतिक वातावरण के भिन्न भिन्न होने के कारण भिन्न भिन्न होती हैं. इन मैदानों में कुछ चीज़ें यह हैं:

* राजनीतिक पार्टियों और संगठनों के गठन का कार्यक्षेत्र।

* ग़ैर इस्लामी पार्टियों और संगठनों के साथ घुल मिल कर काम करने

का मैदान।

राजनीतिक पार्टियों और संगठनों के गठन का मैदानः

ग़ैर मुस्लिम देशों विशेषरूप से पश्चिमी देशों में लागू संविधान के अन्तर्गत वहां बसने वाले मुसलमानों के लिए ऐसी राजनीतिक पार्टी, संगठन या विधि संस्थाओं के गठन के माध्यम से राजनीतिक जीवन में भागीदारी संभव हो गई है, जिससे शांतिपूण और क़ानूनी तरीके पर वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सकें और अधिकार प्राप्त कर सकें, साथ साथ अपने विचारों का प्रचार प्रसार कर सकें और लोगों को उसकी तरफ़ बुला सकें।

पार्टी गठन के दायरे का फ़िक़्ही आदेशः

इस कार्य से सम्बन्धित आदेश की सीमा का निर्धारण और इसके प्रकार और प्रकृति और इसके लक्ष्यों और निष्कर्षों के आधार पर होता है. तो यदि यह कार्य लाभदायक हो तो उसे अपनाने और करने में कोई बुराई नहीं है बल्कि यह कार्य यदि मुसलमानों के पक्ष में लाभ का कारण हो और इसके कारण उन देशों में उनके अस्तित्व को बल मिले, उनकी एकता प्रबल हो और धार्मिक स्थिति में स्थिरता लाने में सहयोग मिलता हो तो साधारण रूप से इसके महत्व पर बल देना और समाज के कुछ लोगों की भागीदारी करना अनिवार्य (वजूबे-किफ़ाई) है।

इस अनिवार्यता का सम्बन्ध भी उन्हीं लोगों से होता है जो राजनीतिक भागीदारी के सम्बन्ध में विचार धारा स्थापित करना, योजना बनाना, संगठन बनाना और चलाना आदि का कर्त्तव्य निभाते है, जहां तक साधारण मुसलमानों का सम्बन्ध है तो उनका काम अपनी हैसियत और चरित्र के अनुसार इस कार्य में हाथ बटाना और उसको सफल बनाने का प्रयास करना

और यह इन नियमों पर आधारित है'' ऐसी चीज़ जिसके बिना अनिवार्य को पूरा न किया जा सके वह भी अनिवार्य हो जाता है और माध्यम के आदेश भी वही हैं जो उद्देश्यों के आदेश हैं।

पार्टी गठन फ़िक़्ही सिद्धान्त और उद्देश्य:

यह आदेश कुछ सिद्धान्तों और उद्देश्यों से सम्बन्ध रखता है।

* हितों को प्राप्त करना, उनको बढ़ाना, उनको पूरा करना, बुराइयों को दूर करना और उनको कम करने का सिद्धान्त, इस विचारधारा को देखा जाए तो राजनीतिक पार्टियों और संगठनों का गठन बहुत से हित और बहुत सी बुराइयों के दूर करने का कारण बनता है. इन हितों में इस्लाम के भविष्य और इसके विशेष अस्तित्व की रक्षा का कार्य है साथ-साथ राजनीतिक अधिकार सभ्यता, संस्कृति, समाज और आर्थिक व वित्तिय मामलों से सम्बन्धित बहुत से लाभ हैं जिनको प्राप्त करना सम्बन्धित देशों की राजनीतिक एंव सांस्कृतिक व्यवस्था में भागीदारी और व्यवाहारिक स्तर पर उन्हें बरतने से प्राप्त होती है।

* नेकी का आदेश और बुराई से रोकना, अल्लाह की तरफ बुलाना और हर संभव सुधार और मार्ग दर्शन की नीयत और प्रयास (हर सम्भव मैं सुधार चाहता हूँ-कुरआन) का सिद्धान्त, अतः मुसलमानों द्वारा गठित राजनीतिक दल, अल्लाह की तरफ़ बुलाना अच्छाई का आदेश और बुराई से रोकना, के अन्तर्गत लोगों के सुधार और मार्ग दर्शन के माध्यम से लाभदायक कार्य क्रम तय किए जाऐं, लाभ दायक विचारों को प्रकाशित किया जाए. लोगों के दिलों और हालात पर अपनी छाप छोड़ने वाले कार्य, चरित्र और गति विधियां अपनाई जाऐं, इस प्रकार राजनीति और विधि के

सुधार का प्रयास किया जाए, इसके फलस्वरूप बहुत सी बुराइयों का अन्त होगा और उनके स्थान पर उच्च चरित्र और पवित्र मूल्यों को त्वरित और विकसित करना संभव हो जाता है।

* दोस्ती और सहायता सिद्धान्त: इसके अर्न्तगत इस प्रकार की मुस्लिम राजनीतिक संस्था और संगठन बहुत से अरबी और इस्लामी मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं जैसे: फ़लस्तीन की समस्या उम्मत के विकास और उत्थान की समस्या इत्यादि। इस सम्बन्ध में सहयूनी (यहूदी) लाबी और विदेश नीति पर उनके प्रभाव और पहुँच हमारी निगाहों के सामने हैं।

* वर्तमान स्थिति को सामने रखकर इस्लामी शरीअत के आदेशों के अमली तौर पर लागू करने का सिद्धान्त: अत: साधारण स्तर पर मुस्लिम जनता, और विशेष स्तर पर उलमा और दावत का कार्य करने वालों की ज़िम्मेदारी है कि वह वर्तमान स्थिति को सामने रख कर शरई आदेश बनाऐं और उन्हें जीवन धारा में लाऐं. और यह उस अवस्था में संभव है जिसका उल्लेख अल्लामा शातबी ने किया है. क़ानून देने वाले अल्लाह के उद्देश्यों में अनुसरण और कर्त्तव्य पालन के लिए इस्लामी विधान बनाना है, इस आधार पर यह बात बिल्कुल दूर नहीं है कि राजनीतिक प्रक्रिया में लगातार भागीदारी के फलस्वरूप शरीअत का ज्ञान और उसके सम्मान से सम्बन्धित विभिन्न और सैकड़ों हित सामने आऐं और कुछ दिनों और पीढ़ियों के बाद इस्लामी शरीअत को फ़ैसला करने वाला बनाने और उसके अन्तर्गत राजनीतिक व्यवस्था को संकलित करने में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है. कौन जानता है कि पश्चिम की आने वाली पीढ़ी सबसे पहले अल्लाह की

कृपा और उसके बाद उस समय के मुसलमानों द्वारा किए जाने वाले इस प्रकार के प्रयास के फलस्वरूप मार्ग दर्शन पर आऐं और उस पर जम जाऐं।

ग़ैर इस्लामी दलों के साथ मेल जोल का दायराः

यह क्षेत्र पहले से अधिक पेचीदा है इसलिए कि इसमें कम से कम संगठनात्मक और मानवीय और वैचारिक स्वतन्त्रता को ध्यान में नहीं रखा जाता. लगभग यही स्थिति पहले दायरे और मैदान की है. अर्थात इस कार्य में मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम दोनों आपस में मिलते हैं, दोनों ही ऐसी राजनीतिक पार्टियों और संगठनों में भाग लेते हैं जो ग़ैर इस्लामी आधार पर स्थापित होते हैं, यहां यह प्रश्न उठता है कि मुसलमान किस सीमा तक ग़ैर इस्लामी विचार और सिद्धान्त का समर्थन कर सकता है? किस सीमा तक वह किसी ग़ैर मुस्लिम को चुनाव प्रत्याशी के रूप में चुन सकता है अथवा, लिब्रल, नेशनलिस्ट या ईसाई पद्धति को अपना सकता है, इस कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित आदेशों का निर्धारण उसका प्रयोग और परिणाम, नियम और शरीअत के उद्देश्य और न्यायिक प्रक्रिया के प्रकाश में किया जाता है।

इनके साथ मेल जोल का फ़िक़्ही आदेशः

इस कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित फ़िक़्ही आदेश और उसके लक्ष्यों और परिणामों अर्थात इसके अन्तर्गत होने वाले तमाम हित और बुराइयों और हानियों के प्रकाश में तय किया जाता है. इसलिए यदि यह मेल जोल मुसलमानों के पक्ष में वैध हित और लाभ हैं तो उनके प्राप्त करने और उन्हें कार्य रूप देने में कोई बुराई नहीं है लेकिन यदि बुराइयां हितों से अधिक हों या राजनीतिक या दीन व संस्कृति के सम्बन्ध में उनकी हानि लाभ से बढ़कर हो तो उसे बिल्कुल छोड़ दिया जाएगा और उसके विकल्प को

भलाई के रूप में तलाश किया जाएगा और यह कार्य कभी वैध और कभी मुसलमानों के एक समूह के लिए अनिवार्य होगा. इन दोनों हैसियतों का सम्बन्ध उनकी विभिन्न परिस्थितियों और परिणामों व तथ्यों से है जिन पर विचार विमर्श और अनुसरण व निष्कर्ष निकाला जाता है।

इस लिए हर राजनीतिक ब्लाक या इस्लामी गिरोह के लिए अनिवार्य होता है कि वह विचार विमर्श और परामर्श से काम करे ताकि यह कार्य जिस रूप में उचित है उस का निष्कर्ष निकाल सके।

यह फ़िक़्ही आदेश विभिन्न विश्वासपूर्ण और सिद्ध सिद्धान्तों और नियमों से सम्बन्धित है और इसी पर आधारित है जिसे फ़िक़्हुल-मुवाज़िनात (तुलनात्मक फ़िक़्ह) फ़िक़्हुल-उल्वियात (वरियता की फ़िक़्ह) नवाज़िल कहा जाता है इसलिए कि केवल क़ुरआन व सुन्नत की दलीलों से जो व्यक्त होता है या पूर्ववर्ती उलमा व फ़ुक़्हा के कहने पर भरोसा करते हुए राजनीतिक कार्य में भागीदारी पर कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है. इसलिए कि जैसा मैंने ऊपर उल्लेख किया, यह समस्या नए युग की पैदावार है और इस सिलसिले में कोई स्पष्ट क़ुरआन की दलील मौजूद नहीं है।

इस आदेश के शरअी नियम और उद्देश्य:

यह आदेश विभिन्न शरअी उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बयान किया गया है उनमें से कुछ निम्न हैं:

लाभ प्राप्त करना या उसको बढ़ाना और बुराइयों का अन्त करना या उनको कम करना।

चूंकि ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीतिक प्रक्रिया में मुसलमानों की

भागीदारी यदि बड़े पैमाने पर नहीं तो छोटे पैमाने पर ही सही. इससे मुसलमानों को अपनी हालत मज़बूत करने में मदद मिलेगी और अपनी राजनीतिक, वैधानिक स्थिति को मज़बूत करने में आसानी होगी, और उसके जीवन, संस्कृति और समाज से सम्बन्धित दूसरे महत्वपूर्ण मामलात पर अच्छी छाप पड़ सकती हैं. इस्लाम का लाभ इस रूप में सामने आता है कि आदमी राजनीतिक कार्य में भागीदारी के माध्यम से व्यवाहारिक तौर पर उससे जुड़ जाएगा जिसके फलस्वरूप लोगों को इस्लम की दावत देने और कुफ्र एंव बुराई से निकाल कर इस्लाम में लाने के कार्य में विशेष सहायता मिलती है।

इसी तरह इसके माध्यम से अधिक या कुछ बुराइयों को मिटाने का अवसर मिलता है जैसे दीनी कर्त्तव्यों के पालन से वंचित होना, नागरिक अधिकारों की गतिविधियों में अमली तौर पर भागीदार होने से वंचित होना. इसी तरह देश से निष्कासन, मुसलमानों पर राजनीतिक रूप से यह आरोप कि वे अपने आप में सिमटे रहने वाले अलगाव वादी और चरम पंथी हैं. और दूसरी सभ्यताओं से घृणा करते हैं।

* दो बुराइयों का टकराव हो तो उनमें से छोटी बुराई पर अमल करना और नियमानुसार छोटी बुराई के माध्यम से बड़ी बुराई की हानियों को मिटाना चाहिए।

राजनीति के मैदान में एक बुराई यह है कि, पहचान खो देना और दोस्ती और दुश्मनी के नियम को तोड़ना और उम्मत के दुश्मनों की सहायता करना. दूसरी बुराई राजनीति में भाग न लेने से पैदा होती है जैसे विभिन्न अधिकारों से वंचित होना, दावत व सुधार और अपने अस्तित्व को सम्बन्धित

देशों में मज़बूत करने के अवसर को खो देना. हालात को देखते हुए इन दोनों में से जो छोटी बुराई होगी उसे अपनाया जाएगा।

शरअी उद्देश्य कुछ हानियों से खाली नहीं होता लेकिन यह हानि थोड़ी होती है. इसी तरह शरीअत में बुराई के कुछ लाभ भी होते हैं लेकिन वे थोड़े और कम होते हैं. इसकी दलील जुवे और शराब से सम्बन्धित कुरआन की आयत में है:

واثمهما اكبر من نفعهما

''और उनकी बुराई या हानि उसके लाभ से अधिक बढ़कर है'' और दूसरी दलील क़िसास से सम्बन्धित है:

ولكم فى القصاص حياة

''और तुम्हारे लिए क़िसास में जीवन है'' क़िसास लेकर अपराधी की जान लेने से शिकार व्यक्ति को राहत मिलती है और बुराई करने के विरुद्ध वतावरण बनता है इसके मुक़ाबले क़िसास से जान जाने में कम हानि है।

ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीति में भागीदारी से बहुत से लाभ प्राप्त होते है, परन्तु यह कार्य हानियों से रिक्त नहीं है जैसे यह कि विश्वासघात और राजनीति से सम्बन्धित सिद्धान्तों पर चुप बैठ जाना जो कि इस्लामी शरीअत के विरुद्ध हों. लेकिन बड़े लाभों को प्राप्त करने के लिए इस नीति को अपनाया जाएगा. लेकिन वहां अनिवार्य होगा कि इस बुराई को बुरा जानें और इस्लामी शिक्षाओं को अपने दिल से लगाए रखें. राजनीति को पद और धन प्राप्त करने का माध्यम न बानऐं बल्कि यह कार्य क्षणिक रूप से करें और अल्लाह तआला से बदले की आशा रखें।

इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि राजनीति में भागीदारी के

कारण मुसलमान छोटा लाभ प्राप्त करने के साथ साथ बड़ी हानि में लिप्त हो जाएं जैसे इस भागीदारी को लेकर मुसलमानों में मतभेद हो जाए और इससे बिखराव बढ़ जाए जिसके फलस्वरूप आपस में ईर्ष्या घृणा पैदा हो जाए और कभी कभी इससे खून बहने की नौबत आ जाती है, इस लड़ाई झगड़े के साथ व्यवस्थापकों और जिम्मेदारों को आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है, फिर भी यह लाभ कम और इसकी तुलना में हानि अधिक है. बड़ा लाभ वह है जो मुसलमानों की एकता अखण्डता और निकटता के रूप में प्राप्त होता है इसलिए ऐसी दशा में इस राजनीति को छोड़ दिया जाएगा और इसमें भाग लेना वर्जित माना जाएगा।

ग़ैर मुस्लिम देश दारुद्दावा (दावती काम करने की जगह) है और दारुल हर्ब (युद्ध क्षेत्र) नहीं है इसलिए कि इन देशों में मुसलमान एक समझौते के अन्तर्गत रह रहे हैं, जिन पर इनकी पार्टी की ओर से हस्ताक्षर किया गया है. और वे उस समझौते की धाराओं और शर्तों को स्वीकार करने पर सहमत हुए हैं. इसी कारण ऐसे देशों को दारुल हर्ब नहीं कहा जा सकता इसके बजाय वह ऐसा स्थान है जिससे विवेक, उपदेश और दलील से दूसरों को सहमत करने के साथ साथ इन देशों में प्रचलित राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए और उसका सम्मान करते हुए अल्लाह की तरफ़ बुलाने और इस आधार पर भावना और समाज का सुधार करने और अपना प्रभाव डालने के बहुत से अवसर उपलब्ध होते हैं. इसके अतिरिक्त इन देशों में मुसलमानों को अपने दीन और धर्म पर चलने और मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतन्त्रता है।

राजनीतिक भागीदारी के सिद्धान्त और अनिवार्य सीमाऐं:

राजनीतिक दलों और संगठनों के साथ मिलकर काम करने के मैदान से सम्बन्धित फ़िक़्ही आदेश अपने लागू होने में पूर्णतः सामान्य नहीं हैं बल्कि वे ऐसे मामलों से सम्बन्धित हैं जो उनको नियमित और उचित रूप से गठित करते हैं. यहां तक कि वे उद्देश्य और नियम जिनका सम्बन्ध इस आदेश से है वे भी शरअी, नैतिक, और मानवीय रूप से पूर्ण नहीं कहे जा सकते. इन नियमों और सिद्धान्तों को ध्यान में रखना, इस राजनीतिक भागीदारी की शरअी और नैतिक विशेषताओं को प्रकाश में लाना और उनकी महत्वपूर्ण सफलताओं और हितों की ज़मानत देना है, सन्देह और झिझक का रवैया रखने वालों की झिझक को दूर करता है और जो उसके मानने वाले हैं उनके सन्तोष और उत्साह वर्धन का कारण बनता है।

राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के नियमः

स्वयं शरअी उद्देश्यों के नियम जैसा कि हम राजनीतिक भागीदारी के सिलसिले में उल्लेख कर चुके हैं, फ़िक़्ही आदेशों का आधार लाभ प्राप्त करने पर है. चाहे हम यह कहें कि यहाँ उद्देश्य का नाम है बड़े लाभ की प्राप्ति और बड़े बिगाड़ को दूर रखने का, और यह हित जिसकी प्राप्ति अपेक्षित है वह नियमित और शर्तों के साथ है. न तो सामान्य और पूर्ण है और न ही स्वार्थों और बदलते हालात के अधीन है. इन शर्तों और सिद्धान्तों के पालन के आधार पर राजनीतिक भागीदारी का यह आदेश उचित है. और राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने वालों को मार्ग दर्शन और दृढता पैदा करता है।

उद्देश्य और लाभ के नियमों का निचोड़ः

उद्देश्य और लाभ का सम्बन्ध दुनिया व आखिरत (परलोक) दोनों से

है इसलिए यह उचित नहीं होगा कि इसे मात्र संसार के लाभ पर ही निर्भर रखा जाए और इसका आधार यह है कि यह संसार और परलोक की घोषणा है. यह सभी सांसारिक कार्य इसलिए बनाए गए हैं कि इनके माध्यम से जन्नत में सर्वदा रहने वाली सफलता प्राप्त हो. इसी आधार पर भागीदारी को केवल ऐसे फ़िक़्ही लाभों की प्राप्ति के लिए जो केवल हमारे स्वाद और मनोरंजन की पूर्ति करते हैं और सर्वदा रहने वाले तथ्यों और निष्कर्षों को छोड़ने पर आधारित होते हैं जो आत्म सुधार और जीवन को ग़लत धारे पर ले जाने से बचाने के रूप में सामने आते और अल्लाह की प्रसन्नता और मुक्ति और जन्नत प्राप्त होने का माध्यम बनते हैं।

* उद्देश्यों और हितों के अन्तर्गत में बन्दगी, चरित्र और मानवीय मूल्यों का अर्थ निहित है. इसलिए गैर मुस्लिम देशों में राजनीतिक भागीदारी के लिए चाहिए कि वह संकल्प नीयत और पुण्य के साथ साथ, विधाता की इच्छा, उसकी शिक्षाओं और निर्देशों को देखते हुए बन्दगी के गुणों से सुशोभित हो. इस तरह नैतिक गुणों और मानवीय मूल्यों के सम्मान को देखते हुए उसे नैतिक और मानवीय गुणों से भरपूर होना चाहिए. ऐसा न हो कि वह आर्थिक लाभ और भौतिक शोषण पर आधारित हो जिनमें न तो दीन को ध्यान में रखा गया हो न नैतिकता और सम्मान और सहानुभूति को।

* हित महत्वपूर्ण, वरीयता प्राप्त, जन साधारण के लिए, और अन्तिम होते हैं. पुराने और नए युग के उलमा के अनुसार हितों अथवा लक्ष्यों के महत्वपूर्ण और वरीयता प्राप्त होने से तात्पर्य उनका अशुद्ध या दूसरे शब्दों में कुछ हानियों, कष्टों, और बिगाड़ के साथ मिला हुआ होना है. इसलिए वास्तविक अर्थों में शुद्ध हितों और शुद्ध बुराइयों का पाया जाना कठिन है.

उन उलमा ने उल्लेख किया है कि हितों के साधारण होने से तात्पर्य उनका जीवन के सीमित कार्य क्षेत्र पर आधारित न होना है, मामले पर निगाह डालने में सर्वव्यापी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए. इसी तरह राजनीतिक भागीदारी के लाभों को प्राप्त करने के सिलसिले में सभी या अधिकतर मुसलमानों को ध्यान में रखना चाहिए, उदाहरण के लिए राजनीतिक भागीदारी के लाभों को मात्र इस कार्य से सम्बन्धित कुछ लोगों अथवा किसी एक राजनीतिक या चुनावी दल अथवा गिरोह पर आधारित होना वैध नहीं होगा कि उस स्थिति में वहां के सारे मुसलमान और मुस्लिम दलों की हाानि हो जाए।

* इस्लामी बुनियादों से विचलित न होना, जैसे दीन की किसी आवश्यक चीज़ का इन्कार कर देना या मुसलमानों के मुक़ाबले में ग़ैर मुस्लिमों के साथ सहयोग करना. इसी तरह मुसलमानों के लिए यह भी वैध नहीं है कि वह एक मुसलमान के मुक़ाबले किसी ग़ैर मुस्लिम का समर्थन और सहायता करे सिवाय इसके कि मुसलमान अत्याचारी हो. मुस्लिम दलों के लिए यह भी वैध नहीं है कि वह दोहरी वफ़ादारी निभाने का प्रयास करें अर्थात वह क्षेत्र, जाति, देश, रिश्तेदारी और निकटता के आधार पर किसी को महत्व या वज़न दें. इसलिए कि तमाम मुसलमानों के लिए एक ही पैमाना होना चाहिए और वह इस्लाम है।

राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के अनिवार्य मामले:

अनिवार्य मामलों से तात्पर्य वे सभी मामले हैं जिनको ध्यान में रखना ग़ैर मुस्लिम देशों की राजनीतिक प्रक्रिया या गतिविधियों में भागीदारी के लिए आवश्यक है. और यह अनिवार्य मामले वैध व प्रभावी राजनीतिक

भागीदारी को अस्तित्व में लाने वाली शार्तों और नियमों के साथ मिलकर पूरे होते हैं।

इन अनिवार्य मामलों में से कुछ ये हैं:

* राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के मामले और इससे सम्बन्धित बातों, उसके लाभ और प्रभाव पर अच्छी तरह विचार करना ताकि उस प्रक्रिया में लीन होने या करने या उससे बचे रहने के बारे में कोई बिल्कुल स्पष्ट या अन्तिम फ़ैसले तक पहुँचा जा सके. यहाँ फ़ैसला या तो दृढ़ विश्वास के साथ होगा या विश्वास योग्य संभावना पर।

* प्रबल संभावना होने का फ़िक्ह, इज्तिहाद और शरअी आदेशों के अध्याय में मान्य होती है. इस मामले में वहां बसने वाले लोग, दलों, संगठनों और इस्लामी केन्द्रों के बीच परामर्श के माहौल को बल देना और विकसित करना पर्याप्त रूप से सहायक हो सकता है. इसी तरह इस्लामी देशों के उलमा शोध अकादमियों, फ़िक्ह के केन्द्रों और संस्थाओं के साथ आपसी विचार विमर्श भी इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सहायक भूमिका निभा सकता है।

* राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के लिए सबसे अधिक दूर दृष्टि और योग्यता रखने वाले सक्रिय व्यक्ति का चुनाव करना, इसलिए कि साधारण स्तर पर राजनीति में भाग लेना और विशेष रूप से जब उसका सम्बन्ध ग़ैर मुस्लिम देशों से हो, विचारधारा बनाने और कार्य करने की प्रतिज्ञा के अनुसार उच्च योग्यता की आवश्यकता होती है. इन सभी चीज़ों का उद्देश्य यह है कि उन देशों की राजनीति में भागीदारी की प्रक्रिया अच्छी तरह कार्य रूप ले सके और उसके अपेक्षित लाभ को प्राप्त किया

जा सके और उसकी हानियों से बचा जा सके।

* बौद्धिक, व्यवस्था और राजनीतिक संस्था का गठन, जिसकी ज़िम्मेदारी यह हो कि वह राजनीतिक भागीदारी की प्रक्रिया में आवश्यक संगठनात्क, और शैक्षणिक कर्त्तव्य पूरा करे. साधारण मुसलमानों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें इस सकारात्मक और प्रभावी राजनीतिक भागीदारी के अनुकूल और लाभप्रद होने के बारे में सन्तुष्ट कर सके।

* इस्लाम की तरफ़ बुलाने और राजनीतिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में मुस्लिम दलों और उनकी कार्य विधि तथा संगठन और व्यवस्था के माध्यम से उनकी सुरक्षा की वैधता और इन वैध लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए दूसरे दलों के साथ गतिविधियों में भागीदारी और सहयोग में बाधक नहीं है।

* इस्लामी शरीअत को वास्तविक फ़िक्ही आत्मा और रुझान का प्रचार प्रसार विश्वसनीय और प्रामाणिक इज्तिहादी, तार्किक और सुधारात्मक ज्ञान और संस्कृति का विस्तार तथा लोगों की मानसिकता को इस तरह विकसित करना, और तैयार करना कि वे इस सामयिक इज्तिहाद की विधि को स्वीकार कर सकें जो वर्तमान युग और रीतिरिवाज और वरीयताओं, तुलनात्मक फ़िक्ह को लागू करना, सामान्य और उपरी बनावट पर सीमा से अधिक भरोसा करने से बचना और उद्देश्य की तरफ़ झुकाव पर आधारित है, और जिसमें अस्पष्ट भावनाओं और सिद्ध व अन्तिम को भी निगाह से ओझल नहीं होने दिया जाता. निलम्बन आधुनिकीकरण और बदलाव को स्वीकार नहीं किया जाता. उलमा ने इसको स्पष्ट किया है कि शरीअत में उद्देश्य का महत्व होता है शब्द और उनके प्रकट रूप का नहीं. आदेशों के शरअी होने का सम्बन्ध दुनिया व परलोक दोनों के लाभों से है. स्थान,

समय और हालात के बदलने से फ़तवा बदल जाता है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता. इसी तरह उलमा ने यह भी स्पष्ट रूप से बताया है कि इस्लामी क़ानून की दो किस्में हैं- साबित और कतई (सिद्ध और अन्तिम) और ज़न्नी व तगय्युर पज़ीर (काल्पनिक व परिवर्तनशील) और यह कि माध्यम और उद्देश्य के आदेश समान हैं.......ज्ञान, संस्कृति, इज्तिहाद और तर्क से सम्बन्धित समझ और चेतना को मुसलमानों में विकसित करना, उन्हें इस्लाम की सच्ची समझ से निकट करना, उस वास्तविक इस्लामी प्रक्रिया और गतिविधि को अस्तित्व में लाना है जिसमें मौजूदा दुनिया के मुताबिक अपने आप का विकास और बल व स्थिरता की प्राप्ति की योग्यता पाई जाए, और इसी तरह इसके फलस्वरूप राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के सिलसिले में स्वीकार्यता और उसके लाभों को मान लेने का रुझान पैदा होता है।

☆☆☆

ग़ैर इस्लामी देशों में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध

मुफ़ती सय्यद असरारुल हक़ सबीली
हैदराबाद

पहला कक्ष

क,खः मुसलमानों का चुनाव में हिस्सा लेना और उम्मीदवार बननाः

चुनाव पर बहस करने से पहले प्रजातंत्र की व्याख्या और उस के आकार बयान करना उचित मालूम होता है, प्रजातंत्र को अंग्रेज़ी ज़बान में (Democracy) कहा जाता है, यह यूनानी शब्द Kratos और Demos से साभार है, Demos का अर्थ है: जनता और Kartos का मतलब है: सत्ता, इस तरह डेमोक्रेसी या प्रजातंत्र का भावार्थ होता है कि सभ्प्रभु जनता के लिए है, दूसरे शब्दों में इसे ''जनता की हुकूमत'' भी कहा जा सकता है, प्रसिद्ध प्रजातांत्रिक नेता इबराहीम लिंकन ने प्रजातंत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह जनता द्वारा बनाई गई, जनता के लिए और जनता की सरकार है। Govt of People, by the people and for the people

आम तौर पर दो प्रकार की प्रजातंत्र बयान की गई है:

1-परोक्ष रूप में प्रजातंत्र (Direct Democracy)

2-प्रत्यक्ष रूप में प्रजा तंत्र (Indirect Democracy)

जिस हुकूमत में तमाम शहरी परोक्ष रूप से भागीदार होते हैं, वह परोक्ष प्रजातंत्र कहलाती है, यह प्रजातंत्र एस्पारटा और एथेंस (यूनान) आदि में थी, आज देशों में आबादी और व्यापकता वद्धि को देखते हुए परोक्ष प्रजातंत्र संभव नहीं, इस लिए प्रत्यक्ष प्रजातंत्र को अपना लिया गया है, जिस में हुकूमत की बाग डोर जनता के चुने हुए प्रति निधियों के हाथों में होती है, इस लिए उस को प्रत्यक्ष प्रजातंत्र या नुमाइन्दा प्रजा तंत्र Representative Democracy कहा जाता है, इस हुकूमत में भी सत्ता जनता के हाथों में होती है, लीडरशिप अर्थात राजनीतिक कार्य प्रणाली में मार्गदर्शन की ज़रूरत होती है, जनता उस मार्गदर्शन का हक़ अपने चुने हुए सदस्यों को देती हैं, अत: लोक तांत्रिक देशों में जनता में अच्छे मार्गदर्शन की क्षमता को बढ़ावा देना और उन की राजनीतिक सूझ बूझ को जगाना ज़रूरी है।

इस दृष्टि से वोट की हैसियत वकील मनोनीत करने की है, कि जनता वोटों द्वारा अपनी राजनीतिक और राष्ट्रीय समस्याओं को भली प्रकार अंजाम देने के लिए राजनेताओं को अपना वकील और प्रतिनिधि चुनती है, (अगर चुनाव के मामले में हम ने किसी संकीर्णता और अन्याय का प्रदर्शन किया, व्यक्तिगत हितों को सामने रखा और योग्य और अत्याचारी व्यक्ति पार्टी को चुना तो उस का गुनाह उस को चुनने वाले लोगों को भी होगा) अत: एक ऐसी क़ौम जिस की ज़िन्दगी का उद्देश्य बिगाड़ को दूर करके सुधार लाना, सामाजिक अन्याय को समाप्त करके न्याय व्यवस्था स्थापित करना, सामाजिक ऊंच नीच और पक्षपात को समाप्त करे, समानता और भाई चारा का माहौल पैदा करना, और इसी के साथ अपनी सामुदायिक पहचान और भेदभाव बाक़ी रखना है, इस के लिए लोक तांत्रिक देशों में इलैकशन

में हिस्सा लेने, योग्य व क्षमता रखते हुए इलैकशन में उम्मीदवार बनने और किसी हमदर्द, निष्ठावान और न्याय प्रिय सेवक के लिए चुनावी अभियान चलाने के सिवा कोई दूसरा शान्तिपूर्ण रास्ता प्रत्यक्ष में नज़र नहीं आता, और यह उन के लिए न सिर्फ़ वैध है, बल्कि मुसलमानों को इलैकशन के महत्व उस के दूरगामी नतीजों और इलैकशन के लिए उन के दायित्व की समझ पैदा करने की ज़रूरत है, ताकि वे लोकतांत्रिक देश में शान्तिपूर्ण जीवन व्यापन के योग्य हों, वे अपनी धार्मिक, सांसारिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को बेहतर तरीक़े पर हल करवाने लिए तैयार हों, और वे एक प्रगति शहरी की तरह देश में जीने और देश वासियों के कांधे से कांधा मिलाकर प्रगति की राहों पर गतिमान होने के योग्य हों।

वोट की शरअी हैसियत बयान करते हुए कुछ विद्वानों ने उस को गवाही के दर्जा में रखा है कि वोट देने वाला किसी उम्मीदवार के पक्ष में गवाही देता है कि उस के निकट यह व्यक्ति हुकूमत के कामों में भागीदार होने के योग्य और राष्ट्र व समुदाय के पक्ष में लाभकारी है, इस पर उसे भरोसा है, अगर वोट की हैसियत इस तरह मान ली जाए तो क़ुरआन करीम की आयात से इस की वैधता साबित की जा सकती है।

"ولا يأب الشهداء إذا مادعوا" (سورۂ بقرہ: ۲۸۲)

और गवाह इन्कार न किया करें जब (गवाही के लिए) उन्हें बुलाया जाए। (सूरः बक़रा 282)

"ولاتكتموا الشهادة ومن يكتمها فإنه آثم قلبه" (سورۂ بقرہ: ۲۸۳)

और गवाही को न छुपाओ और जो उस को छुपाए उस का दिल गुनहगार है। (सूरः बक़रा 283)

"وأقيموا الشهادة لله"

अल्लाह के लिए गवाही की स्थापना व्यवहार में लाओ।

अगर वोट की हैसियत वकालत मानी जाए, जो कि लोकतंत्र की व्याख्या से स्पष्ट होती है, तो उस की वैधता कु़रआन पाक की उन आयात से साबित होगी, जिन में न्याय स्थापित करने, सुधार का काम करने, भलाई और डरने में एक दूसरे का सहयोग करने, भलाई फै़लाने और बुराई मिटाने आदि बहुत से आदेश दिए गए हैं, अगर सामर्थ्य हो तो यह स्वयं करना चाहिए, नहीं तो गवाही के तौर पर यह कर्तव्य अंजाम देना चाहिए, लोक तांत्रिक देशों में जनता के लिए इसी का अवसर है, अतएव इस सिलसिले में कु़रआन करीम की निम्न आयतें देखी जाएं: (सूरा निसा: 114,135- सूरा माइदा/ 2,8- सूरा अंफ़ाल: 1- सूरा हज: 77- सूरा हुजरात: 9,10 और इन हदीसों को भी देखें: मुस्लिम: 49, 258, 2699, 1893- बुख़ारी: 5/70, 3/240)।

अब उम्मीदवार बनने के बारे में कहना यह है कि इस्लाम में पद तलब करने की मनाही की गई है, जैसा कि हदीस में है:

"إنكم ستحرصون على الإمارة، وستكون ندامة يوم القيامة"

(بخاری ۱۳/ ۱۱۱)

(शीघ्र ही तुम लोग हुकूमत का लालच करोगे, और यह शीघ्र ही परलोक में लज्जित होने का कारण होगा)।

दूसरी रिवायत है: ''सय्यदना अबू मूसा रज़ि० कहते हैं कि मैं और मेरे चाचा के दो बेटे नबी सल्ल० के पास गए, एक ने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल! हमें अपनी हुकूमत में कोई पद प्रदान कीजिए, दूसरे ने भी यही बात कही, नबी सल्ल0 ने फ़रमाया: ''अल्लाह की क़सम! हम ऐसे आदमी को

पद नहीं देते जो उस की मांग करे और उस का लालच रखे''

(बुख़ारी 13/112, मुस्लिम 3/1456)

लेकिन लोक तांत्रिक देशों में बिना पद मांगे पद मिलना संभव नहीं, और जब पदों पर अयोग्य, गै़र ज़िम्मेदार, अपहारक, अत्याचारी और पक्षपाती लोग पदासीन हो जाएं तो ऐसी हालत में योग्य, ज़िम्मेदार और न्याय प्रिय लोगों के लिए अल्लाह की स्रष्टि को अत्याचार, अन्याय, पिछड़ेपन और निर्धनता से छुटकारा दिलाना अनिवार्य हो जाता है, जैसा कि सय्यदना यूसुफ़ अलै० ने मिस्र के राजा से कहा था।

अगर सय्यदना यूसुफ़ अलै० बादशाह से पद की विनती नहीं करते तो यह पद और अल्लाह की नेमत (रहमत) की प्रारित की संभावना प्रत्यक्ष में लुप्त थी, क्योंकि मिस्र में ख़ानदानी बादशाहत वंश परम्परा के रूप में चली आ रही थी।

आज कम से कम हिन्दुस्तान की परिस्थिति इस से कहीं ज़्यादा बुरी नज़र आती है, शासक और नौकर शाही वर्ग वित्तीय स्थिरता में बहुत ज़्यादा लिप्त है, देश में एक बड़ी संख्या भूखे रहने करने वालों और बेरोज़गारों की है, आर्थिक परेशानी से तंग आकर बहुत से लोग मुख्यता किसान वर्ग आत्म हत्या पर मजबूर हो रहा है, लाभकारी राष्ट्रीय धरोहर को बेचा जा रहा है, पूंजी की कमी के लिए स्थाई रूप से कैन्द्रीय मंत्रालय स्थापित किया गया है, इस तरह देश की अर्थ व्यवस्था खोखली की जा रही है।

इस लिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों को जो भारतीय लोक तांत्रिक में आधी सदी से अधिक समय बिता देने के बाद भी इलैकशन को बहुत ही मामूली चीज़ समझे हुए हैं, और उस के धार्मिक और सामुदायिक प्रभाव से अनभिज्ञ

हैं, उन को इलैकशन के धार्मिक, सामुदायिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, सुरक्षा संबंधी और औद्योगिक प्रभावों से परिचित कराने और चेतना पैदा करने की बड़ी सख़्त ज़रूरत है।

ग- इस्लाम विरोधी पार्टियों में भागीदारी व सहयोगः

ऐसी राजनीतिक पार्टियां जिन्होंने राष्ट्रवाद और सामुदायिकता की भावनाओं, पक्षपात और नफ़रत को बढ़ावा दिया है, और वे इस्लाम, मुसलमानों और ईसाइयों के विरुद्ध नफ़रत का प्रचार करके देश की बहु संख्यक को अपना समर्थक बनाने के लिए प्रयासरत हैं, और वह वंशीय विनाश, ख़ून ख़राबा, और दंगों की आग भड़का कर हुकूमत में बहुमत हासिल करने का नापाक इरादा रखती हैं, ऐसी पार्टियों को वोट देना और उस में भागीदार होना कदापि वैध नहीं होगा, बल्कि हराम होगा, अल्लाह तआला का इर्शाद है:

"ولاتعاونوا على الإثم والعدوان واتقوا الله إن الله شديد العقاب"

(سورۂ مائدہ/٢)

(गुनाह और उद्दंडता के कामों में एक दूसरे का सहयोग न करो, अल्लाह से डरो, नि:सन्देह अल्लाह सख़्त कठोर यातना देने वाला है)।

(सूरः माइदा 2)

यहां यह सन्देह पैदा हो सकता है कि ऐसी पार्टियों के कुछ उम्मीदवार जो व्यक्तिगत रूप से भले आचरण वाले हों और मुसलमानों के साथ उन का रवैया ठीक ही हो, तो उन को वोट देने में क्या आपत्ति है, तो यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि ऐसे उम्मीदवार को वोट देने से उन का बड़ा महत्व होता है, एक वोट घटने बढ़ने से अत्याचारों की हुकूमतें बनती

और टूटती हैं, ऐसे उम्मीदवार को वोट देने में हो सकता है कि क्षेत्रीय स्तर पर मुसलमानों को कुछ लाभ हो, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर मुसलमानों की राष्ट्रीय हानि होगी, फ़िक़्ह का मशहूर नियम है:

"درء المفاسد أولى من جلب المصالح" (الاشباه والنظائر للسيوطی: ۷۸)

(बिगाड़ को दूर करना उद्देश्य को प्राप्त करने से बेहतर है)।

ड-सैक्युलर पार्टियों से समझौता:

चुनाव के अवसर पर ग़ैर मुस्लिम सैक्युलर राजनीतिक पाटियों से समझौता, सन्धि, उन में भागीदारी, उन के समर्थन और मुस्लिम हितों की बुनियाद पर उन से सन्धि करने की शरीयत में गुन्जाइश है, आज के हलात में हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अलग से राजनीतिक पार्टी बनाने के बजाय सैक्युलर पार्टियों से सामुदायिक हितों की बुनियाद पर समझौते को वरीयता देना चाहिए, अल्लाह के रसूल सल्ल० ने मदीना प्रवास करने के बाद मदीना के यहूदी और आस पास के ग़ैर मुस्लिम क़बाइल से सन्धि की थी, जिसे "मीसाक़ मदीना" के नाम से याद किया जाता है, कि वह बाहरी आक्रमण कारियों का संगठित होकर मुक़ाबला करेंगे, और हर धर्म वाले को अपने धर्म पर चलने की आज़ादी होगी, अर्थात राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी क़िस्म की सन्धि थी, आज के हालात को देखते हुए शरई दृष्टिकोण यह ज़रूरी है।

ह-संयुक्त कल्याणकारी संस्थानों की स्थापना:

मुसलमान अगर ऐसे संस्थान और संस्थाएं बनाएं जिन के अन्तर्गत समाज सेवा का कार्य किया जाए, समाज में न्याय और शान्ति का वातावरण

बनाया जाए, अच्छी बातों को बढ़ावा दिया जाए और बुरी बातों से रोका जाए, तो ऐसे संस्थान और संस्थाओं में ग़ैर मुस्लिम भाइयों को सम्मिलित करने में कोई हरज नहीं, पैग़म्बर मोहम्मद की जीवनी में इस की मिसाल नबी बनाए जाने से पहले हल्फ़ुल फ़ुज़ूल में रसूलुल्लाह सल्ल० की भागीदारी की सूरत में मिलती है, जिस में मक्का के पीड़ित व दुखी की फ़रियाद सुनी जाती और शान्ति को विश्वसनीय बनाने की सन्धि की गयी थी, नबी बन जाने के बाद अन्तिम ज़माने में आप सल्ल० ने फ़रमाया था कि आज तक मैं इस सन्धि पर क़ायम हूं, अगर आज भी मुझे इस के लिए बुलाया जाए तो मैं उसके लिए तैयार हूं।

"**ولو أدعى به فى الإسلام لأجبت**" (سيرت ابن هشام ۱/۱۳۴)۔

दूसरा कक्ष

क- प्रथक मुस्लिम आबादी में आबाद होना:

(हिन्दुस्तानी) मुसलमानों के लिए प्रथक मुस्लिम आबादी, मुस्लिम मुहल्ला और क्षेत्रों में रहना मिश्रित आबादियों में रहने से ज़्यादा बेहतर है, अल्लाह के रसूल सल्ल0 का इर्शाद है:

"**أنا برئ من كل مسلم يقيم بين المشركين**"، **رواه الثلاثة وإسناده صحيح**" (سبل اسلام ۴/۷۹)

(मैं उन तमाम मुसलमानों से विरक्त हूं जो मुश्रिकों के बीच रह रहे हैं)।

लेकिन यह हदीस युद्ध क्षेत्र में रहने वाले मुसलमानों के बारे में है,

जिन पर प्रवास अनिवार्य है। (सुबुलुस्सलाम 4/79)

प्रथक आबादी में रहने से मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के सांस्कृतिक प्रभावों से ज़्यादा सुरक्षित रह सकेंगे, और दंगों के अवसर पर भी मुसलमानों की जान व माल और इज़्ज़त व सतीत्व की ज़्यादा सुरक्षा संभव है, मिली जुली आबादी में रहने से इस बात की कम संभावना है कि वे ग़ैर मुस्लिमों को इस्लामी आचरण व चरित्र से प्रभावित करेंगे, बल्कि ग़ैर मुस्लिामें के सांस्कृतिक प्रभावों को स्वीकार करने की ज़्यादा संभावना है, और इस बात की भी पक्की आशंका है कि वे ग़ैर मुस्लिमों के बीच इस्लाम के प्रति नकारात्मक विचारों को परवान चढ़ाऐंगे, अपने दुराचार और लड़ाइयों के द्वारा इस्लाम की बदनामी का कारण बनेंगे।

ख-ग़ैर मुस्लिमों की शव यात्रा में सम्मिलित और उन के लिए पुण्य पहुंचानाः

किसी ग़ैर मुस्लिम पड़ौसी या दोस्त का देहान्त हो जाए तो उस के घर जाकर उस को देखना और उस के घर वालों से शोक किया जा सकता है, लेकिन उसकी शव यात्रा में भाग लेना और अन्तिम संस्कार के समय शव के पास रहना वैध नहीं होगा, अल्लाह तआ़ला का इर्शाद है:

”ولاتصل على أحد منهم مات أبدا ولاتقم على قبره، إنهم كفروا بالله ورسوله وماتوا وهم فاسقوا“ (سورۂ توقه: ۸۴)

(उन में से कोई मर जाए, तो उस (के जनाज़े) पर कभी नमाज़ न पढ़िए, और न (दफ़न के लिए) उस की क़ब्र पर खड़े होइए, क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उस के रसूल के साथ कुफ़्र किया है, और कुफ़्र की हालत में मरे हैं)।

इसी तरह उन के लिए पुण्य की दुआ करना भी वैध नहीं होगा, अल्लाह तआ़ला का स्पष्ट इर्शाद है:

"ماكان للنبي والذين آمنوا أن يستغفروا للمشركين ولو كانوا أولى قربى من بعد ماتبين لهم أنهم أصحاب الجحيم" (التوبه/١١٣)

(पैग़म्बर और दूसरे मुसलमानों को वैध नहीं कि मुश्रिकों के लिए क्षमा की दुआ मागें, यद्यपि वह रिश्तेदार ही क्यों न हो, इस बात के उन पर स्पष्ट हो जाने के बाद कि वे लोग जहन्नमी हैं)।

ग-ग़ैर मुस्लिमों के उत्सवों की मिठाइयां:

ग़ैर मुस्लिमों के ग़ैर मज़हबी उत्सवों जैसे शादी आदि की मिठाइयां इस्तेमाल करने में कोई आपत्ति नहीं, बशर्तेकि वे हलाल और पाक हों, अलबत्ता धार्मिक उत्सवों की मिठाइयां आदि जिन्हें ''प्रसाद'' कहा जाता है, और जिन्हें मूर्तियों पर चढ़ाया जाता है या उन के सामने रख कर धार्मिक रस्में पूरी की जाती हैं उन का खाना अवैध होगा। यह अपनी आत्मा और उद्दश्य के हिसाब से:

"وماذبح على النصب" (سورۂ مائده/٣)

(और जो पूजा स्थलों पर ज़बह किया जाए) (हराम है) में दाख़िल है।

इस्लाम में इस तरह की मिठाइयां खाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, और न किसी तौर इस की अनुमति दी जा सकती है।

ग-पूजा में चन्दा देना:

मुसलमानों के लिए ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक उत्सवों और पूजा स्थलों के निमार्ण में चन्दे देना जाइज़ नहीं होगा, यह शिर्क और मूर्ति पूजा का

प्रत्यक्ष में आर्थिक सहयोग है।

इसी तरह मुसलमानों के लिए भी उचित नहीं है कि वे मस्जिदों, मदरसों और धार्मिक जल्सों के लिए ग़ैर मुस्लिमों का चन्दा स्वीकार करें।

और अगर ग़ैर मुस्लिमों से चन्दे वसूल किए जायें तो वे भी मुसलमानों से चन्दा देने की इच्छा करेंगे।

ड- : त्यौहारों में सम्मिलितः

मुसलमानों के लिए दूसरे धार्मिक गिरोहों के त्यौहारों और धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होना वैध नहीं होगा, मुसलमानों को कुफ़्र और शिर्क के मामला में कोई समझौता करने की ज़रूरत नहीं है, मुसलमानों के लिए सिर्फ़ यही ज़रूरी नहीं कि वह अल्लाह की उपासना करें, बल्कि उन के लिए यह भी ज़रूरी है कि वह शिर्क से नफ़रत व्यक्त करें, और मुश्रिकाना रीति व रिवाज से दूर रहें, सयैदना इब्राहीम अलै० ने अपनी क़ौम से कहा था:

"ياقوم إنى برئ مما تشركون، إنى وجهت وجهى للذى فطر السموات والأرض حنيفاوما أنا من المشركين" (سورۂ انعام: ۷۹،۸۰)

(ऐ मेरी क़ौम! मैं तुम्हारे मुश्रिकाना कामों से विरक्त हूं, मैं एकाग्र होकर अपना रुख़ उस की तरफ़ करता हूं जिस ने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया, और मैं शिर्क करने वालें में से नहीं हूं)।

ब-ग़ैर मुस्लिमों को त्यौहारों की बधाई देनाः

ग़ैर मुस्लिमों को उन के त्यौहारों के अवसर पर बधाई देना सही नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो धर्म इस्लाम की निगाह में असत्य हैं, जिन के

त्यौहारों में मुश्रिकाना रस्में अदा की जाती हैं, अशलीलता, फ़ुज़ूल ख़र्ची और खेल कूद का प्रदर्शन किया जाता है, ऐसे कामों पर उन्हें बधाई देना क्योंकर सही हो सकता है?

तीसरा कक्ष

अ-राष्ट्रीय झंडे को सलामी देनाः

हिन्दुस्तान एक सैक्यूलर देश है, सरकारी मदरसों और सरकारी संस्थानों में धार्मिक रस्में अदा करने की क़ानूनी तौर पर अनुमति नहीं है, यद्यपि आज सैक्यूलर हिन्दुस्तान को एक मात्र धार्मिक देश में परिवर्तित करने की कोशिश की जा रही है, और शायद इसी भावना के अन्तर्गत ''वन्दे मातरम'' को राष्ट्रीय गीत ठहराया गया है, आज कल स्वतंत्रता दिवस और लोक तंत्र दिवस के अवसर से ज़मीन पर हिन्दुस्तान का नक़्शा बनाया जाता है, उस पर झंडे की लकड़ी लगायी जाती है, झंडा लहराने से पहले किसी पंडित को बुलाकर अगरबत्ती जलाई जाती है, नारियल फोड़ा जाता है, नारियल के पानी का छिड़काव हिन्दुस्तान के नक़्शा, गांधी की तस्वीर और झंडे पर किया जाता है, ध्वजा रोहण किया जाता है, इस के साथ ही भारत के नक़्शा पर फूल की बारिश होती है, परचम को सलामी दी जाती है, भारत का तराना पढ़ा जाता है, आख़िर में भारत माता की जय, सरस्वती माता की जय का नारा लगाया जाता है।

स्पष्ट है इस्लाम इन तमाम चीज़ों की अनुमति कैसे दे सकता है? ये सारे काम हिन्दूओं ने अपने अक़ीदे (विश्वास) के अनुसार गढ़ लिए हैं,

और सैक्यूलर देश हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय त्यौहार (स्वंतत्रता दिवस, लोक तंत्र दिवस) का उत्सव को अपने अक़ीदे के अनुसार रंग दिया है, उन के अक़ीदे के अनुसार भारत की धरती उन की मां (माता) है, उत्तर का भाग सिर है, दक्षिण का पावं, पूर्व व पश्चिम दोनों हाथ हैं, अतएव दुर्गा देवी की तस्वीर कुछ जगहों में हिन्दुस्तान के नक़्शा के अन्दर दिखाई देती है, जबकि हिन्दुस्तान को आज़ादी दिलाने वाले सिर्फ़ हिन्दू ही नहीं, बल्कि सिख और ईसाई के अलावा मुसलमानों का बहुत बड़ा हिस्सा है।

इस लिए मुसलमानों को अपने संस्थानों में उन तमाम रस्मों के बिना ध्वजा रोहण का कार्य करना चाहिए, अगर ध्वजा रोहण की जगहों में ग़ैर मुस्लिमों की बहुसंख्या हो तो मुसलमानों को उन रस्मों से अलग रहना चाहिए, और दिल ही दिल में शिर्क से अप्रसन्ता व्यक्त करना चाहिए, ज़्यादा से ज़्यादा इस अवसर पर खड़े होने की और राष्ट्रीय तराना ''जन गन मन'' पढ़ने की गुन्जाइश हो सकती है, मुसलमानों को झंडे को सलामी देने की भी ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ खड़ा रहना काफ़ी है, मुसलमानों के सलामी न देने पर कोई ध्यान भी नहीं देता, लेकिन अगर कहीं मजबूर किया जाए तो न चाहते हुए सलामी दी जा सकती है, क्योंकि यह शिर्क के क्षेत्र में नहीं है, अलबत्ता इन के अलावा दूसरे मुश्रिकाना कार्य करने की अनुमति नहीं होगी।

ब-वन्दे मातरम पढ़नाः

हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय गीत के तौर पर मुसलमानों का ''वन्दे मातरम पढ़ना'' या किसी भी सैक्यूलर देश में मुसलमानों का ऐसा राष्ट्रीय गीत पढ़ना जिस में धरती को उपास्य का दर्जा दिया गया हो, वैध नहीं होगा, मुसलमानों को स्वयं इसे पढ़ने से बचना चाहिए, और अपने घर वालों को

इस के न पढ़ने की ताकीद करनी चाहिए, क्योंकि इस का पढ़ना कलिमा शिर्क ज़बान से अदा करने के बराबर है, अगर मुसलमान अपने तौर पर किसी राजनीतिक कार्यक्रम का आयोजन करें तो उन को यह गीत अपने प्रोग्राम में नहीं रखना चाहिए, अगर ग़ैर मुस्लिम, राजनीतिक या सरकारी उत्सवों में पढ़ रहे हों, तो अगर गुन्जाइश हो तो बैठ कर अपना विरोध व्यक्त करना चाहिए, वर्ना कम से कम ख़ामोश खड़े रहना चाहिए, और दिल में कलिमा ईमान अदा करते रहना चाहिए।

ज-हिन्दुस्तानी अदालत का फ़ैसलाः

जिन समस्याओं में सबब शरअी का वजूद काफ़ी नहीं, बल्कि क़ाज़ी का फ़ैसला और हुक्म ज़रूरी है, उन समस्याओं में ग़ैर मुस्लिम जजों का फ़ैसला विश्वसनीय नहीं होगा, क़ाज़ी का फ़ैसला ज़रूरी होगा, मिसाल के तौर पर ग़ैर मुस्लिम जज का निकाह निरस्त करना नहीं होगा, बल्कि शरअी दारुल क़ज़ा से जाना पड़ेगा, इस लिए मुसलमानों को चाहिए कि वह घरेलू मामलात को हिन्दुस्तानी अदालत के पास ले जाने के बजाए दारुल क़ज़ा में शरीअत के अनुसार हल कराएं। हिन्दुस्तानी मुसलमानों विशेषकर आल इण्डिया मुस्लिम पसर्नल ला बोर्ड को चाहिए कि संवैधानिक रूप से अपने देश में अपने धर्म और निजी धार्मिक मामलों व सभ्यता के अस्तित्व के तौर पर (Recognised Religious and Cultural Entity) मनवालें, और अपने घरेलू क़ानून जैसेः निकाह, तलाक़, विरासत आदि और अन्य धार्मिक मामलों में देश के सवैधानिक ढांचा के अन्दर सांस्कृतिक व धार्मिक स्वंतंत्रा।

(Religious and cultural autonomy) के हामिल बन जाएं, इस तरह सवैधानिक व क़ानूनी प्रबन्ध के बाद देश की अदालतों में मुस्लिम

पर्सनल ला आफ़ कोर्ट स्थापित कराने की गुन्जाइश हो सकती है, और इस में मुस्लिम क़ाज़ी और इस्लामी क़ानून विद्वान नियुक्त किए जा सकते हैं।

चौथा कक्ष

अ-इस्लाम ही मुक्ति का रास्ताः

आज बहुत से न्याय प्रिय ग़ैर मुस्लिम यह कहते हुए मिलते हैं कि सारे धर्म अल्लाह तक पहुंचने के अलग अलग रास्ते हैं, सब की मंज़िल एक ही है, बहुत से मुसलमान भी उन की हां में हां मिलाते हैं, कुछ मुसलमान यह भी कहते हैं कि आपसी एकता व भाइचारे को बाक़ी रखने और दंगों से बचने के लिए इस तरह की बात कही जा सकती है, लेकिन सच्चाई यह है कि इस तरह की बात करना एक मुसलमान के लिए वैध नहीं, इस तरह की बात करने वाले सांस्कृतिक प्रबन्धों की सोच के एजेंन्ट बने रहे हैं, साम्प्रदायिक मेल जोल के लिए इस्लामी उसूलों को निरस्त नहीं किया जा सकता।

इस्लाम सब से अलग, मानवता का मुक्तिदाता और सत्य धर्म है, दूसरे धर्म असत्य और अल्लाह के निकट अस्वीकार्य हैं, इस्लाम का रास्ता जन्नत की तरफ़ ले जाने वाला और अल्लाह तक पहुंचने वाला है, दूसरे धर्मों के रास्ते जहन्नम की तरफ़ जाने वाले और शैतान तक पहुंचने वाले हैं, इस बारे में क़ुरआन व हदीस के आदेश स्पष्ट हैं।

सयैदना अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० से रिवायत है, उन्होंने फ़रमाया कि नबी करीम सल्ल0 ने हमारे सामने एक रेखा खींची और फ़रमायाः

''यह अल्लाह का रास्ता है'' फिर उस रेखा की सीधी और बाईं ओर कुछ रेखाएं खींची और फ़रमाया: यह कुछ रास्ते हैं, इन में से हर एक रास्ते पर एक शैतान है जो अपनी तरफ़ बुलाता है, फिर यह आयत पढ़ी:

"**وإن هذا صراطی مستقیما فاتبعوه**" (رواه احمد والنسائی، الدارمی بحواله مشکاة).

(यह मेरा सीधा रास्ता है, इसी का अनुसरण करो)।

ब-पिछड़े वर्गों के प्रति मुसलमानों का रवैया:

पिछड़ा वर्ग जिन को ब्राहमण समाज में अछूत का दर्जा प्राप्त है, और आज भी उन्हें अत्यन्त नीच समझा जाता है, मुसलमानों को ऐसे वर्गों के साथ नर्मी, हमदर्दी और भाईचारे का रवैया अपनाना चाहिए, मुसलमानों को उन का अपमान करने से बचना चाहिए, इस्लाम ने मानव समानता का जो पाठ दिया है, और समाज में हर एक वर्ग को समान रूप से ज़िन्दगी गुज़ारने का जो अधिकार दिया है उस से उन्हें अवगत कराना चाहिए, ज़रूरत पड़ने पर उन की मदद और हिमायत करनी चाहिए, कल्याण कारी कामों में उन्हें सम्मिलित करना चाहिए, उन्हें इस्लाम से क़रीब करने की कोशिश करनी चाहिए, और विवेकपूर्ण अंदाज़ में उन्हें इस्लाम की दावत देनी चाहिए, अर्थात हुकूमत न होने के बावजूद मुसलमानों में जितनी शक्ति हो ऐसे वर्गों को न्याय दिलाने की कोशिश करनी चाहिए, उन के साथ नर्मी, हमदर्दी और सद व्यवहार का मामला करना चाहिए, अल्लाह तआला का इर्शाद है:

"**لاینهاکم الله عن الذین لم یقاتلوکم فی الدین ولم یخرجوکم من دیارکم أن تبروهم وتقسطوا إلیهم، إن الله یحب المقسطین**" (سورۂ ممتحنه:۸)

(अल्लाह तआला तुम को उन लोगों के साथ भलाई और न्याय का व्यवहार करने से मना नहीं करता, जो तुम से दीन के बारे में नहीं लड़े,

और तुम को तुम्हारे घरों से नहीं निकाला, नि:सन्देह अल्लाह तआ़ला न्याय का व्यवहार करने वालों से मुहब्बत रखते हैं)।

हदीस में है:

"عن أبی هريرة عن النبی ﷺ: الساعی علی الأرملة والمسكين كالمجاهد فی سبيل الله، وأحسبه قال: وكالقائم الذی لايفتر وكالصائم لايفطر"

(بخاری ١:٣٦٦، مسلم: ٢٩٨٢)

(सय्यदना अबू हुरैरा रज़ि० नबी सल्ल० से रिवायत करते हैं कि आप सल्ल० ने फ़रमाया: ''ज़रूरतमन्द और मिस्कीन के लिए दौड़ धूप करने वाला अल्लाह के रास्ता में जिहाद करने वाले की तरह है'', मैं समझता हूं कि आप सल्ल० ने यह भी फ़रमाया: और वह ऐसे नमाज़ी की तरह है जो कभी नमाज़ ख़त्म न करे, और ऐसे रोज़ेदार की तरह है जो इफ़तार न करे)।

ज-समाज सेवा की संस्थाएं:

समाज सेवा की संस्थाओं को मुसलमानों के लिए ख़ास रखना बेहतर नहीं है, बल्कि बिना भेद भाव धर्म व जाति सारे लोगों के लिए सेवा व मदद के दरवाज़े खुले रखना चाहिए, अल्लाह तआला ने मोमिनों की विशेषता बयान की है:

"ويطعمون الطعام علی حبه مسكينا ويتيما وأسيرا، إنما نطعمكم لوجه الله لانريد منكم جزاء ولا شكورا" (سورۂ دهر:٩)

(और वे लोग (मात्र) अल्लाह की मुहब्बत में मिस्कीन, यतीम और क़ैदी को खाना खिलाते हैं, (और कहते हैं) कि हम तुम को मात्र अल्लाह की प्रसन्नता के लिए खाना खिलाते हैं, न हम तुम से बदला चाहते हैं और

न (ज़बानी) शुक्रिया)।

अगर हम ग़ैर मुस्लिम ज़रूरत मन्दों के लिए मदद का दरवाज़ा बन्द करदें, तो यह हमारे लिए उचित नहीं होगा, और यह मोमिन की विशेषताओं के विरुद्ध होगा।

द-आसमानी आपदा के समय कल्याणकारी कार्यः

आसमानी आपदा जैसे भूकम्प, बाढ़ और सक्रांमक रोगों जैसी आम मुसीबत के समय भी कुछ साम्प्रदायिक तत्व इमदाद और कल्याण कारी कामों का प्रदर्शन करते हुए पाए गए हैं, ऐसे अवसर पर मदद व कल्याण कारी काम करने वाली मुस्लिम संस्थाओं को चाहिए कि वह पक्षपात का प्रदर्शन तो न करें, मगर इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि जो लोग पक्षपात का शिकार हुए हैं और मदद से पूरी तरह वंचित रहे हैं, पहले उन तक मदद पहुंचाने की कोशिश करें।

☆☆☆

ग़ैर इस्लामी देशों में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध शरई दृष्टिकोण

मौलाना राशिद हुसैन नदवी
मदरसा ज़ियाउल उलूम, राय बरेली

1-(अ) इस बात का पूरा विश्वास रखते हुए कि शासक और वास्तविक उपास्य सिर्फ़ अल्लाह तआला है, इस्लामी हुकूमत जो किताब व सुन्नत से साबित है परलोक के लिए इन्सानी सफ़लता उसी की स्थापना में है, शरीअत से टकराने वाले सारे गढ़े हुए क़ानून दोषपूर्ण और अधूरे हें जो कि मनुष्य की अल्प बुद्धि का नतीजा हैं। इन तमाम अक़ाइद (विश्वास) और संकल्पों के साथ मेरे निकट इलैकशन के अमल में मुसलमानों की भागीदारी वैध है, लेकिन इस में उपरोक्त उल्लिखित अक़ीदे (विश्वास) व इरादे के साथ निम्न शर्तों की पाबन्दी भी ज़रूरी होगी:

1-वोट देना एक तरह की गवाही है कि फ़लां व्यक्ति मेरे निकट प्रतिनिधित्व का सब से ज़्यादा हक़दार है, अत: वोट देते समय प्रितिनिधि के बारे में यह देखना होगा कि उस के अन्दर प्रतिनिधि बनने की योग्यता के साथ साथ ईमानदारी का गुण भी पाया जा रहा हो, और वह दूसरों के मुक़ाबले मुसलमानों के लिए लाभकारी हो।

2-चुनावी अभियान में इस बात का ध्यान रखना होगा कि कोई भी सत्य के विरुद्ध बात न की जाए, न मुक़ाबले में खड़े प्रत्याशी पर ग़लत

आरोप लगाए जाऐं, न अपनी झूठी प्रशंसा की जाए, न ऐसे वायदे किए जाऐं जिन का पूरा करना असंभव हो, सारांश यह कि इलैकशन की सारी प्रक्रिया में इस शर्त के साथ भाग लेने की अनुमति है कि कोई ग़ैर शरअी काम न करे।

ब-वोट देना अनिवार्य है:

मेरे निकट उल्लिखित हितों की प्राप्ती के लिए ऐसे प्रतिनिधि को वोट देना अनिवार्य ठहराया जा सकता है जिस में इस की योग्यता हो।

ज-मुस्लिम विरोधी पार्टी में सम्मिलित होना और उस के प्रत्याशी को वोट देना:

राजनीतिक पार्टियों का मामला कुछ ऐसा है कि एक ही व्यक्ति पार्टी के सामान्य रुख़ और दृष्टिकोण पर किसी भी अवसर पर प्रभावी नहीं हो सकता, अत: अगर एक व्यक्ति मुसलमानों से हमदर्दी रखता है, उन की समस्याओं को हल करना चाहता है, लेकिन उस की पार्टी का दृष्टिकोण उस के दृष्टिकोण से अलग है तो ऐसे व्यक्ति को वोट देना मेरे निकट सही नहीं होगा, इस लिए उस को वोट देना मानो एक अत्याचारी जमाअत को शक्तिशाली बनाना और स्वयं अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारना है।

अलबत्ता अगर किसी व्यक्ति के बारे में विश्वास है कि वह इतनी ज़्यादा हमदर्दी और भलाई रखता है कि चाहे अपनी सीट गंवानी पड़े लेकिन मुसलमानों के विरुद्ध आने वाले किसी विधेयक का समर्थन नहीं करेगा तो बशर्ते योग्यता उसी को वोट दिया जाए।

ऐसी पार्टी में मुसलमानों की भागीदारी भी मेरे निकट किसी भी सूरत

में सही नहीं है, इस लिए कि ये पार्टियां मुसलमानों के विरुद्ध प्रदर्शन करती हैं, क़ानून पास करती हैं, और हर चरण पर उन को परास्त कमज़ोर करने को तत्पर रहती हैं, अतः उस में सम्मिलित होना गुनाह के काम में मददगार होने के साथ साथ सामुदायिक व स्वभिमान के भी विरुद्ध है।

द-ग़ैर मुस्लिम पार्टियों से सन्धि करना सही है:

अगर किसी राजनीतिक पार्टी से सन्धि करने में मुसलमानों का हित जुड़ा है तो मेरे निकट उन से सन्धि करना, उन की हिमायत करना और उन को सफ़ल करने की कोशिश करना वैध बल्कि सराहनीय होगा, और जब तक वह सन्धि की पाबन्दी करें उस समय तक स्वयं भी सन्धि का पाबन्द रहना ज़रूरी होगा।

इस की दलील यह है कि नबी करीम सल्ल0 ने मक्का वालों के ख़िलाफ़ क़बीला ख़ुज़ाआ से सन्धि की थी, सीरत इब्ने हिशाम में है:

"ودخت خزاعة فی عهد رسول الله ﷺ وعهده اله"

(سیرت ابن هشام ۲:۳۹۰)

(ख़ुज़ाआ नबी करीम सल्ल० की सन्धि व समझौते में दाख़िल हुए)।

और मदीना में यहूद से सन्धि की, इस सन्धि का पूरा विवरण सीरत इब्ने हिशाम में मौजूद है, वहां देखा जाए।

साफ़ सी बात है कि मौजूदा विश्व में मुसलमान और इस्लाम बहुत ही कमज़ोर हो चुके हैं, अतः मेरे निकट ऐसी सन्धियों की गुन्जाइश है।

ह-मानव जाति की भलाई के लिए ग़ैर मुस्लिम से सहायता लेना:

इस का जवाब भी मेरे निकट स्वीकार्य में है, इस की दलील यह है

कि नबी सल्ल0 ने हलफ़ुल फ़ुज़ूल में शिर्कत की, इस पार्टी के उद्देश्य क़रीब क़रीब वही थे जिन का सवाल में ज़िक्र किया गया है, और इस के सदस्य ज़ाहिर है सब के सब काफ़िर थे, लेकिन नबी सल्ल० पैग़म्बर बनने के बाद उल्लेख किया करते थे कि आज भी अगर इस तरह की संस्था में सम्मिलित होने की दावत दी जाए तो स्वीकार करूंगा।

(देखिए: अस्सेयरन्नुबूवा लिन्नदवाद्व 113)

ग़ैर मुस्लिमों से संबंधों की समस्या

-अ- मिली जुली आबादी के मुक़ाबला में प्रथक आबादी बसाना बेहतर है:

इस मामला में अनुभव यह बताता है कि जिस जगह क़ौम का बहुबल होता है उसी के सांस्कृतिक प्रभाव छाए रहते हैं, अल्प संख्यक आम तौर से उन से प्रभावित हो जाती है, इसके अलावा यहां हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक दंगे के अवसर पर बार बार देखा गया कि जिन मुहल्लों में मुसलमानों की मज़बूत आबादी रही वह शरारतों से बची रहे और जहां वे कम संख्या में थे उन्हें वहां भारी हानियां से दोचार होना पड़ा, अत: मेरे निकट बेहतर यही है कि मुसलमान अलग महलों और बस्तियों में आबाद हों, या ऐसे मुहल्लों में रहें जहां की अधिक और बड़ी आबादी मुसलमानों की है।

रद्दुल मुहतार में है: सरख़सी ''शरहुस्सेयर'' में फ़रमाते हैं: अगर ख़लीफ़ा ज़िम्मियों की ज़मीन में मुसलमानों के लिए शहर बसाए, जैसा कि हज़रत उमर रज़ि० ने बसरा और कूफ़ा आबाद किया, और ज़िम्मी वहां पर

घर ख़रीदें और मुसलमानों के साथ रहना पसन्द करें तो उन को इस से मना नहीं किया जाएगा, इस लिए कि हम ने उन से ज़िम्मियों का होना स्वीकार ही इस लिए किया है ताकि वह इस्लाम से अवगत हों कि उन से इस्लाम स्वीकारने की उम्मीद रहे, और मुसलमानों के साथ उन का मेल जोल और आवास यह उद्देश्य पूरा करते हैं, शैख़ शमसुल अइम्मा हलवानी फ़रमाते थेः यह इस सूरत में है जब ज़िम्मी कम हों और इस तरह से हो कि उन के इस तरह आवास से मुसलमानों की कुछ जमाअतों में न रुकावट पैदा हो न जमाअ़त में कमी आए, अतएव अगर वह इतने ज़्यादा हों कि कुछ जमाअतों में अवरोध या कमी का कारण बन जाऐं तो उन्हें इस से रोक दिया जाएगा, और उन्हें ऐसे किनारे रहने का आदेश दिया जाएगा जहां मुसलमानों की कोई जमाअत न हो, यह विवरण इमाम अबु हनीफ़ा रह० की अमाली से महफ़ूज़ है। (3/301)

और रद्दुल मुहतार में हैः ''और शहरों से ज़िम्मियों को रोकने का मतलब यह है कि शहर में आवास के लिए उन का विशेष मुहल्ला हो जिस में मुसलमानों की तरह बाधक होने वाली जमाअत रखते हों, जहां तक अधीनस्थ होकर मुसलमानों के बीच उन के आवास का संबंध है तो इस का यह आदेश नहीं होगा, (3/203,303)।

ब-ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लेनाः

एक मुसलमान उदारता के अन्तर्गत अपने ग़ैर मुस्लिम पड़ौसी ओर दोस्तों के साथ ऐसे सारे काम अंजाम दे सकता है जिन में शिर्क और कुफ़्र के कार्य व रस्मों की मिलावट नहीं है, जिन कामों में शिर्किया रस्मों में

सम्मिलित की सूरत पाई जा रही हो उन से दूर रहना ज़रूरी होगा, इस लिए कि शिर्क बड़ा भारी पाप है:

"إن الشرک لظلم عظیم" (سورہ لقمان: ۱۳)

अतएव अगर कोई मिलने वाला ग़ैर मुस्लिम बीमार है तो उस का हाल चाल पूछना वैध है, नबी करीम सल्ल० से अपने चचा अबू तालिब (ज़ादुल मआ़द 1/494) और एक यहूदी लड़के (बुख़ारी: किताबुल जनाइज़, बाब इज़ा असलमस्सबी फ़मात:) का हाल पूछना साबित है, फ़िक़्ही किताबों में भी इस को वैध ठहरा गया है (हिन्दिया 5/248)

इसी तरह काफ़िर का शोक करना भी जाइज़ है।

(हिन्दिया 5/248, शामी 5/274)

लेकिन जहां तक शव यात्रा और आख़िरी रस्मों में भाग लेने का संबंध है तो मसला यह है कि उन अवसरों पर शिर्किया नारे बुलन्द होते हैं, और विभिन्न देवी देवताओं की जय आदि बोली जाती है, मुसलमानों के बारे में यह दुर्भावना नहीं की जा सकती कि वह इन कामों को पसन्द करेगा फिर भी उस के भाग लेने से स्वेच्छा की सूरत अवश्य मालूम होती है, अत: मेरे निकट आम हालात में इन मामलों में शिर्कत मकरूह (घृणित) है, अलबत्ता अगर किसी ज़रूरत का तक़ाज़ा हो और भाग न लेने से किसी विशेष प्रकार की हानि हो सकती हो तो ऐसे विशेष हालात में भाग लेना पसन्दीदा, वर्त्तमान दौर के उलमा के फ़तावों में इस सिलसिले में कुछ मतभेद है, और इस मतभेद ही को देखते हुए उपरोक्त उल्लिखित राय हम ने प्रस्तुत की है (देखिए: फ़तावा रहीमिया 8/180, अहसनुल फ़तावा 4/233, मुंतख़बात निज़ामुल फ़तावा 2/375 और किफ़ायतुल मुफ़्ती 4/191)।

ग़ैर मुस्लिमों के लिए पुण्य की दुआः

जहां तक काफ़िरों के लिए पुण्य की दुआ का सवाल है तो यह भी इस्तिग़फ़ार (तोबा करने) और दुआ ही का एक अंदाज़ है जिस के सिलसिले में क़ुरआन में खुलकर मनाही आई है, इर्शाद हैः

"ما كان للنبى والذين آمنوا أن يستغفروا للمشركين ولو كانوا أولى قربى من بعد ماتبين لهم أنهم أصحاب الجحيم" (سورۂ توبہ: ۱۱۳)

(लाइक़ नहीं नबी को और मुसलमानों को कि क्षमा चाहें मुश्रिकों की, और यद्यपि वे हों निकट के रिश्ते वाले जबकि खुल चुका उन पर कि वे हैं दोज़ख़ वाले)।

आयत के इस स्पष्टीकरण के बाद मेरे निकट कुफ़्फ़ार के लिए पुण्य की दुआ करने की कोई गुन्जाइश नहीं है।

ज-ग़ैर मुस्लिमों से प्रसाद आदि लेने का हुक्मः

जहां तक आम उपहार का संबंध है (जिन को नज़्र व नियाज़ के तौर पर बुतों पर चढ़ाया न गया हो) उन को स्वीकार करने और इस्तेमाल करने की फ़ुक़हा ने अनुमति दी है (देखिएः फ़तावा रशिदिया/488, इमदादुल फ़तावा 2/554)।

कुफ़्फ़ार से उपहार स्वीकार करने के मसला को पुराने फ़तावा देने वालों ने भी छेड़ा है, अतएव ''फ़तावा हिन्दया'' में यह उल्लेख करने के बाद कि इमाम मुहम्मद ने ''अस्सेयरुल कबीर'' में विभिन्न रिवायतों का उल्लेख किया है जिन में से कुछ से मालूम होता है कि नबी करीम सल्ल0 ने मुश्रिकों से उपहार स्वीकार किया और कुछ से स्पष्ट होता है कि

स्वीकार नहीं किया। लिखा है कि इस में जाअफ़र हिन्दिवानी ने इस तरह अनुमति दी है कि जिस के बारे में आप का गुमान होता था कि वह जिहाद करने को माल व दौलत जमा करने का लालच समझता है इस से स्वीकार नहीं करते थे और जिस का गुमान यह समझते थे कि वह जिहाद को अल्लाह का कालिमा बुलन्द करने के लिए समझता है उस से स्वीकार कर लेते थे, पहले व्यक्ति से आज भी उपहार स्वीकार करना सही नहीं:

"ولايجوز قبول الهدية من مثل هذا الشخص فى زماننا"

(فتاوى هنديه ۳۴۷/۵)۔

और दूसरे के जैसे से आज भी उपहार लेना जाइज़ है।

"وقبول الهدية من مثل هذا الشخص جائز فى زماننا أيضا"

(فتاوى هنديه ۳۴۸/۵)۔

कुछ मशाइख़ ने दूसरे अंदाज़ से अनुमति दी है (ऐज़न)।

बुतों का चढ़ावा सही नहीं:

जहां तक बुतों पर या देवी देवताओं पर नज़्र व नियाज़ के रूप में चढ़ाई गई चीज़ों का संबंध है तो उन का लेना और इस्तेमाल करना अवैध है:

"للاجماع على حرمة النذر للمخلوق ولاينعقد ولا يشتغل الذمة به ولأنه حرام بل سحت. (الى) وأخذه أيضا مكروه مالم يقصد الناذر التقرب إلى الله"

(البحر الرائق بحواله فتاوى مولانا فرنگى محلى: ص ۴۳۶)

(इस लिए कि सृष्टि के लिए नज़्र की हुरमत पर सहमति है, यह नज़्र पूरी नहीं होती और न दायित्व उस से पूरा होता है और इस लिए कि यह हराम बल्कि कुरुप है (फिर फ़रमाया) और उस का लेना भी घृणित है जब

तक नज़्र मानने वाला अल्लाह की समीपता का इरादा न करे) (अधिक विवरण के लिए देखिए: मआ़रिफ़ुल कु़रआन 1/424, इमदादुल फ़तावा 4/97, आप के मसाइल और उन का हल 1/71)।

''बुतों के नाम की नज़्र की हुई चीज़ शरअन हराम है; किसी मुसलमान को उस का खाना जाइज़ नहीं''

(आप के मसाइल और उन का हल 1/71)

सारांश यह कि बुतों का चढ़ावा (प्रसाद) लेना या इस्तेमाल करना सही नहीं है, अन्य उपहार लेने की गुन्जाइश है।

द-ग़ैर मुस्लिमों से मस्जिदों आदि के निर्माण में सहायता लेना:

इस मसले में विवरण यह है कि अगर ग़ैर मुस्लिम उपरोक्त कामों में उत्सव और सवाब समझ कर मदद करता है तो उस से मदद लेना सही है, अतएव हिदाया की ''किताबुल वसीयत'' में है:

"ومنها إذا أوصى بما يكون قربة فى حقنا وفى حقهم (الى) وهذا جائز"

(هدايه ۴/ ۲۸۹–۲۹۰)

(इसी में एक शक्ल यह है कि उस चीज़ की वसीयत करे जो हमारे लिए भी समीपता हो और उन के लिए भी ...... और यह जाइज़ है)।

और शामी में है:

"(وأن يكون قربة فى ذاته) ...... بخلاف الذمى لما فى البحر وغيره إن شرط وقف الذمى أن يكون قربة عندنا وعندهم" (شامى ۳/ ۳۹۴)۔

(और यह कि फ़ी ज़ातिहि कु़रबत हो) ...... इसके विपरीत ज़िम्मी के, इसलिए कि बहर आदि में है कि ज़िम्मी के वक़्फ़ की शर्त यह है कि वह हमारे यहां भी समीप हो और उन के निकट भी) (और देखिए: इमदादुल

फ़तावा 2/665,668, फ़तावा रहीमिया 9/189, फ़तावा रशीदिया/ 410, किफ़ायतुल मुफ़्ती 7/81)।

लेकिन ग़ैर मुस्लिम का चन्दा लेना और उस का इस्तेमाल करना उसी समय सही होगा जब यह ख़तरा न हो कि वह बाद में एहासन जतलाएगा, या अपनी धार्मिक रसमों के लिए चन्दा मांगेगा, दूसरी सूरत में चन्दा न लेना चाहिए।

ह-ग़ैर मुस्लिमों के उत्सवों में सहयोगः

ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक उत्सवों में सहयोग करना अवैध है।

(अ) मिली जुली इफ़्तार पार्टी में भाग लेनाः

जहां तक ग़ैर मुस्लिम की दावत स्वीकार करने का संबंध है तो वह वैध हैः

"**ولا بأس بالذهاب إلى ضيافة أهل الذمة، هكذا ذكره محمد** رحمه الله"

(هنديه ۵/۳۴۷)

(इमाम मुहम्मद रह० ने उल्लेख किया है कि ज़िम्मियों की दावत में जाने में कोई हरज नहीं है)।

कभी कभार उन के साथ बैठ कर खाने में भी कोई हरज नहीं है, लेकिन स्थाई रूप से आदत न बनाए। (देखिएः फ़तावा हिन्दिया 5/347)

स्वयं ग़ैर मुस्लिमों की दावत करना भी जाइज़ हैः

"**ولا بأس بضيافة الذمى وإن لم يكن بينهما إلا معرفة كذا فى الملتقط**"

(هنديه ۵/۳۴۷)

(ज़िम्मी की दावत करने में कोई हरज नहीं है, यद्यपि दोनों में सिर्फ़

परिचय हो)।

और दावत इफ़्तार भी एक दावत ही है, इसलिए इस की भी गुन्जाइश मालूम होती है, लेकिन इस अनुमति के बावजूद मेरे निकट बेहतर यही है कि इस तरह की दावतों से बचा जाए, इस लिए कि इन में रोज़ादारों और ग़ैर रोज़ादारों की भीड़ होती है, बल्कि आम तौर पर ग़ैर रोज़ा दारों की अधिकता रही है जिस की वजह से रोज़ा दारों को कई परेशानियां सामने आती हैं।

ईद के उत्सव में भाग लेना:

दावत की वैधता के बारे में विस्तार से ऊपर आ चुका है, दावत इफ़तार वाली ख़राबियां इस में नहीं हैं, अलबत्ता इस में सम्मिलित होने के बाद उस से आशा रखी जाएगी कि वह भी होली व दीवाली की ऐसी ही संयुक्त पार्टी का आयोजन करे या उन में भाग ले, इस लिए आम हालात में उस में भी भाग नहीं लेना चाहिए, हालात और स्थान की विशेष ज़रूरतों की वजह से भाग लेना पड़े तो कोई हरज नहीं है, बल्कि विशेष हालात में बेहतर और पसन्दीदा भी ठहराया जा सकता है, लेकिन आम हालात में उस को बढ़ावा न देना ही बेहतर है।

ब-ग़ैर मुस्लिमों को उन के त्यौहारों पर बधाई देना:

ग़ैर मुस्लिमों के किसी मामले की सराहना करना कुफ़्र है:

”(**ويكفر) تحسين أمر الكفار اتفاقا**“ (هنديه ٢/٢٧٧)۔

(कुफ़्फ़ार के किसी भी मामले की सराहना व प्रशंसा करना सर्व सहमति से कुफ़्र है)।

और बधाई देने में इस से समानता है, इस लिए मेरी राय में आम हालात में उस से बचना चाहिए।

अलबत्ता अगर ज़रूरत पड़ जाए, और आपसी संबंध ऐसे हों कि बधाई न देने पर उस को तकलीफ़ पहुंचेगी तो उस "لكم دينكم ولى دين" के अन्दाज़ में बधाई दे दे, इस की पुष्टि हिन्दिया (5/348) की एक इबारत और किफ़ायतुल मुफ़्ती (9/339) के एक जवाब से भी होती है।

मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह के इस फ़तवा से भी इस मसला का संकेत मिलता है: ''अत: जवाब का सारांश यह हुआ कि मुसलमानों का हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहारों में सबील लगाना या पान आदि बांटना अगर उन के त्यौहारों के सम्मान के लिए हो तो कुफ़्र है, और शन्ति की स्थापना और आपसी भाईचारे के उद्देश्य से हो और उन के धार्मिक कार्यकालों की सराहना अभिप्राय न हो, और यह काम उन के विशेष अवसर से अलग रास्ते में हो तो पसन्दीदा है। (किफ़ायतुल मुफ़्ती 9/339)

३: अ-राष्ट्रीय झन्डे की सलामी:

आज कल बहुत से इस्लामी और ग़ैर इस्लामी देशों में झन्डे की सलामी का प्रचलन है, उस को देश से मुहब्बत और सम्मान का प्रतीक समझा जाता है।

इस मसला पर जब हम फ़िक़्ही हैसियत से निगाह डालते हैं तो उस की अवैधता ही की तरफ़ रुझान होता है, इस की दलीलें निम्न हैं:

1- अल्लाह तआला का इर्शाद है:

"يا أيها الذين آمنوا إنما الخمر والميسر والأنصاب والأزلام رجس من

عمل الشيطان فاجتنبوه لعلكم تفلحون" (سوره مائده : ۹۰)۔

(ऐ ईमान वालो! यह शराब और जुवा और बुत और पांसे, सब गन्दे काम हैं तो इन से बचते रहो ताकि तुम मुक्ति पाओ)।

हज़रत थानवी रह० फ़रमाते हैं: अन्साब के उमूम में भी और नक़लन अनिल मुफ़्फ़स्सिर भी ऐसे (झन्डे जैसे) निशानात भी दाख़िल हैं।

(इमदादुल फ़तावा 5/646)

अल्लामा हसकफ़ी लिखते हैं:

"وكذا مايفعلونه من تقبيل الأرض بين يدى العلماء والعظماء حرام، والفاعل والراضى به آثمان، لأنه يشبه عبادة الوثن، وهل يكفر أن على وجه العبادة والتعظيم كفر وأن على وجه التحية لا، وصار آثما مرتكبا للكبيرة، وفى الملتقط: التواضع لغير الله حرام، وفى الوهبانية يجوز بل يندب القيام تعظيما للقادم (فى رد المحتار) اى إن كان ممن يستحق التعظيم" (شامى ۵/۲۷۱، ۲۷۲)۔

(इसी तरह लोग उलमा और शासकों के सामने ज़मीन को बोसा देने का जो काम करते हैं हराम है, इस का करने वाला और इस से प्रसन्न होने वाला दोनों गुनहगार हैं, इस लिए कि इसमें मूरती पूजा से समानता है, और आया क्या उस का इन्कार किया जाएगा तो अगर उपासना और सम्मान के तौर पर करे तो काफ़िर हो जाएगा और अगर आदर के तौर पर करे तो काफ़िर तो नहीं होगा लेकिन गुनाह कबीरा करने वाला होगा, और ''अलमुलतक़ित'' में है: ग़ैरुल्लाह के लिए आवभगत करना हराम है, और ''वहबानिया'' में है कि आने वाले के लिए खड़ा होना वैध बल्कि सराहनीय है ''अल्लामा शामी फ़रमाते हैं) बशर्तेकि वह सम्मान का हक़दार हो)।

इन दलीलों को देखते हुए मेरी राय में झन्डे की सलामी देना जाइज़ नहीं है, लेकिन अगर बिगाड़ का डर हो, और उस से दुशमन को मुसलमानों के विरुद्ध भ्रम फैलाने का अवसर मिल रहा हो तो दिल से उस को बुरा समझते हुए ज़रूरत के अन्तर्गत सलामी में सम्मिलित हो जाए।

(देखिए: इमदादुल फ़तावा 4/647, फ़तावा रहीमिया 6/288)

ब-बहुदेववादी तराना पढ़ने का हुक्मः

इस्लाम में बहुदेववाद को सब से बड़ी बुराई और सब से बड़ा हराम ठहराया गया है, सब गुनाह माफ़ हो सकते हैं लेकिन शिर्क की माफ़ी नहीं हो सकती।

अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"إن الله لايغفر أن يشرک به ويغفر مادون ذلک لمن يشاء ومن يشرک بالله فقد ضل ضلا مبينا" (سورۂ نساء: ۱۱٦)۔

(नि:सन्देह अल्लाह नहीं क्षमा करता उस को जो उस का भागीदार करे किसी को, और क्षमा करता है उस को सिवा जिस को चाहे और जिस ने भागीदार ठहराया अल्लाह का वह बहक कर दूर जा पड़ा)।

अत: इन तरानों को गाने की शरअी तौर पर कोई गुन्जाइश नहीं है, यदि ख़ुदा न करे इन के शिर्किया लेखों पर विश्वास करके पढ़ा तो काफ़िर हो जाएगा, अगर विश्वास न हो तब भी यह काम हराम होगा, अलबत्ता अगर शरअी तौर पर ना पसन्दीदगी की शक्ल पाई जाए तो अज़ीमत इसी में है कि इस सूरत में भी पढ़ने से इन्कार कर दे चाहे जान गंवानी पड़े, लेकिन दिल से बुरा समझते हुए इस सूरत में पढ़ने की गुन्जाइश होगी।

ज-ग़ैर शरअी फ़ैसले से लाभ उठानाः

क़ुरआन ने इस बात का हुक्म दिया है कि मुसलमान अल्लाह और उस के रसूल का आज्ञा पालन करें, ऐसी किसी अदालत या आदेश के पास मामला ले ही न जाएं जो अल्लाह और रसूल की इच्छा के विरुद्ध फ़ैसला करे।

इर्शाद है:

”قل أطيعوا الله والرسول فإن تولوا فإن الله لايحب الكافرين“ (سورہ نساء: ۲۰)۔

दूसरी जगह इर्शाद है:

”فلا وربک لايؤمنون حتى يحكموک فيما شجر بينهم ثم لايجدوا فى أنفسهم حرجاً مما قضيت ويسلموا تسليما“ (سورۂ نساء: ۶۵)۔

तो क़सम है तेरे पालनहार की वे मोमिन नहीं होंगे यहां तक कि तुझ को ही फ़ैसला करने वाला जानें इस झगड़े में जो उन में उठे, फिर न पाएं अपने जी में तंगी तेरे फ़ैसला से और स्वीकार करें ख़ुशी से)।

इन आयतों से स्पष्ट रूप से मालूम हो रहा है कि किसी मुसलमान को अपना मामला ग़ैरों के यहां ले ही नहीं जाना चाहिए, लेकिन हिन्दुस्तान जैसे देश में निश्चय ही यह मजबूरी आ ही जाती है, तो ऐसे विशेष हालात में मेरे निकट अगर किसी मसला में किताब व सुन्नत का कोई स्पष्ट और मंसूस आदेश मौजूद है और अदालत इस के विरुद्ध फ़ैसला करती है तो ऐसी सूरत में जिस के पक्ष में फ़ैसला हुआ है उस के लिए लाभ उठाना वैध नहीं है, ”لقوله فلا وربک لايؤمنون الآية“۔ अलबत्ता अगर वह ग़ैर मंसूस और इज्तिहाद वाला मसला है तो इस सूरत में भी बेहतर तो यही है कि शरअी आदेश का भरोसा करते हुए लाभ न उठाए, लेकिन इस सूरत में लाभ उठाने की गुन्जाइश हर हाल में मौजूद है।

इस मसला की पुष्टि इस वाक्य से हो सकती है:

"ثم إذا قضى بالاجتهاد فإن خالف النص لايجوز قضاء ه وإنلم يخالف النص لكنه رأى بعد ذلک رأيا آخر لايبطل مامضى ويقضي فى المستأنف بما يراه" (هنديه ٣١٢/٣)۔

-अ-धार्मिक एकता की बुनियाद ही ग़लत है:

मेरे विचार से धर्मों की एकता की सोच दो केन्द्रीय बुनियादों में से किसी एक या दोनों पर स्थापित हुआ करती है।

एक यह है कि इस के द्वारा सांस्कृतिक एकता पैदा हो जाएगी, जिस से आपसी भाई चारा बढ़ेगा, आपसी मतभेद कम होंगे, लड़ाई झगड़ों के ख़तरों में कमी आएगी, और धर्म वालों के बीच साम्प्रदायिक नफ़रत भी कम हो जाएगी जिस से दुनिया सुख व शान्ति का केन्द्र बन सकेगी।

दूसरी बुनियाद यह है कि स्वयं धर्म ही में उस की तरफ़ मार्ग दर्शन है, और उन्हीं से मालूम होता है कि सारे धर्म एक ही मंज़िल तक ले जाने के भिन्न भिन्न रास्ते हैं।

दोनों बुनियादें खोखली हैं:

लेकिन मेरे निकट दोनों बुनियादें बिल्कुल खोखली हैं।

जहां तक पहली बुनियाद का संबंध है तो हम देखते हैं कि दुनिया में जो कुछ मतभेद मौजूद हैं, उन में धर्मों का हस्तक्षेप बहुत कम है, बल्कि शायद यह कहना ग़लत नहीं होगा कि अधिकांश जंगें एक ही धर्म के मानने वालों के बीच होती हैं।

इस लिए उद्देश्य से धर्मों की एकता की अवधारणा पेश करना

निरुदेश्य और बेकार है। और जहां तक दूसरी बुनियाद का संबंध है, तो हम दूसरे धर्मों से बहस नहीं करते (यद्यपि यह सोच हमारे विचार से किसी धर्म में नहीं है), इस लिए कि दूसरे धर्मों के बारे में बताने का हक़ स्वयं उन धर्मों के मानने वालों को है, लेकिन इस्लामी दृष्टिकोण से हम पूरे विश्वास व खुले दिल से कह सकते हैं कि इस दृष्टिकोण की कोई गुन्जाइश किसी भी तौर पर नहीं है।

अल्लाह तआला का इर्शाद है:

"أفغير دين الله يبغون ... ومن يبتغ غير الإسلام دينا فلن يقبل منه وهو فى الآخرة من الخاسرين" (آل عمران: ٨٣، ٨٤، ٨٥).

(अब कोई और दीन ढूंडते हैं सिवाए दीन अल्लाह के और उसी के हुक्म में है जो कोई आसमान और ज़मीन में है स्वेच्छा से या मजबूरी से और उसी की तरफ़ सब फिर जावेंगे, तो कह हम ईमान लाए अल्लाह पर और जो कुछ उतरा हम पर और जो कुछ उतरा इब्राहीम पर और इसमाईल पर और इसहाक़ पर और याक़ूब पर और उस की सन्तान पर और जो मिला मूसा को और ईसा को और जो मिला सब नबियों को उन के पालनहार की तरफ़ से हम जुदा नहीं करते उन में किसी को और हम उसी के आज्ञा पालक हैं, और जो कोई चाहे सिवा दीन इस्लाम के और कोई धर्म सिवा उस से कदापि स्वीकार न होगा और वह परलोक में ख़राब है)।

ब-पीड़ितों का सहयोग यथा साम्थर्य अनिवार्य है:

इस्लाम की घोषणा है कि सारी मानव जाति, चाहे वह किसी भी क़बीला या धर्म से संबंध रखते हों, मानव के रूप में सम्मानित हैं, और यह कि सारे मनुष्य एक बाप हज़रत आदम की सन्तान हैं, श्रेष्ठता का स्तर:

अल्लाह का डर, आचरण और दूसरी विशेषताएं प्रशंसनीय हैं, न कि किसी विशेष वर्ग और गिरोह से संबंध रखना।

मुसलमान को मुसलमान की हैसियत से एक और ज़िम्मेदारी दी गई है कि वह न सिर्फ़ स्वयं नेकियां करे बल्कि दूसरों को भी इसे करने को कहे, बुराइयों से रोके और पीड़ित की मदद करे, और अल्लाह की ज़मीन पर न्याय को स्थापित करे, अल्लाह तआला ने बड़े विस्तार के साथ क़ुरआन करीम की सूरह आले इमरान और सूरह माइदा आदि में इन आदेशों को बयान किया है।

अत: मेरे निकट मुसलमानों पर उन पीड़ितों की मदद यथा शक्ति अनिवार्य होगी, अलबत्ता मुसलमान चूंकि स्वयं यहां विवश और पीड़ित बन चुके हैं इस लिए अवसर और समय के हिसाब से उस सहयोग की शक्लें बदल जाऐंगी, अतएव शक्ति होने ही के हिसाब से कभी मदद व ताक़त के ज़रिए होगी, कभी ज़बान से और कभी तो सिर्फ़ दिल में उस को बुरा समझ कर और पीड़ित की हमदर्दी रखने से ही सहयोग का पुण्य होगा।

ज-समाज सेवा के संस्थानों में भेदभाव अनुचित है:

मुसलमानों के साथ साथ ग़ैर मुस्लिम मां बाप और रिश्तेदारों पर भी ख़र्च करने की कई जगह बातें कही गयी हैं, पड़ौसी, अनाथ, मिसकीन और लाचार बिना धर्म व जाति के भेद भाव ख़र्च करने की बार बार ताकीद आयी है।

अल्लाह तआला का इर्शाद है:

"واعبدوا الله ولاتشركوا به شيئاً وبالوالدين إحساناً وبذي القربى

واليتامى والمساكين والجار ذي القربى والجار الجنب والصاحب بالجنب وابن السبيل” (سورۂ نساء: ٣٦)۔

इन नुसूस (हदीस व आयात) को मेरे निकट इस तरह की सेवा के लिए स्थापित किए जाने वाले संस्थानों को बिना धर्म व सम्प्रदाय के भेद भाव सब के लिए सामान्य रखना चाहिए, अलबत्ता उस में दो बातें समक्ष रखना ज़रूरी हैं:

1-एक यह कि ज़कात की रक़म शरअन ग़ैर मुस्लिमों पर ख़र्च नहीं की जा सकती। (हिदाया 1/205)

इसी तरह प्रदान की गयी चीज़ और चन्दों में प्रदान करने वाले की तवज्जोह का भरोसा ज़रूरी होता है (आम कुतुब फ़िक़्हिया जैसे शामी 3/395), अतः ज़कात के माल और ख़ास कर मुसलमानों के लिए किए गए चन्दों को ग़ैर मुस्लिमों की दवाओं आदि पर ख़र्च करना सही नहीं होगा, उन को सिर्फ़ मुसलमानों पर मुफ़्त ख़र्च किया जाए।

2- दूसरी बात यह कि अगर मान लो किसी इलाक़ा में ऐसी स्थिति हो जाए (अभी मेरे विचार से व्यवहार में कभी कभार ही ऐसा हुआ है) कि ग़ैरों के उन संस्थानों से मुसलमानों का लाभ उठाना मुश्किल हो, और मुस्लिम संस्थान ग़ैर मुस्लिमों को भी दे और उस के पास सब मुसलमान ज़रूरत मन्दों को लाभ पहुंचाना मुश्किल हो रहा हो तो ऐसी सूरत में मुस्लिम संस्थान को मुसलमानों को ही वरीयता देनी चाहिए, इस लिए कि ग़ैर मुस्लिम कहीं से भी लाभ उठा लेगा, और मुसलमान के लिए यहां भी गुन्जाइश न रखी गई तो कहां जाएगा।।

द-रिलीफ़ में यथा संभव भेद भाव न किया जाए:

इस सूरत में भी मेरे निकट ज़कात और सिर्फ़ मुसलमानों के लिए चन्दा की गयी रक़म ग़ैर मुस्लिमों पर ख़र्च नहीं की जा सकतीं, शेष राशि में रिलीफ़ के समय इस्लामी सदव्यवहार का तक़ाज़ा यह है कि सम्प्रदायिक के बजाए ज़रूरत और हाजत देखी जाए, अगर ग़ैर मुस्लिम को ज़रूरत ज़्यादा हो तो उसी को प्राथमिक्ता दी जाए, लेकिन अगर ग़ैर मुस्लिमों को देने के लिए विभिन्न संस्थान काम कर रहे हों और मुसलमानों की परेशानी समझने वाला कोई न हो तो मुसलमानों को प्राथमिक्ता देनी चाहिए।

☆☆☆

संक्षिप्त लेख

ग़ैर इस्लामी देशों में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध

डा. मुहम्मद महरूसुल मुदर्रिस

(इराक़)

वर्तमान समय प्रतिदिन नए हालात से गुज़र रहा है, जो किसी भी तरह बुद्धिजीवियों से छिपा नहीं है, इसी लिए हमारा दुनिया को दारुल हर्ब (युद्ध क्षेत्र) और दारुल इस्लाम (शान्तिपूर्ण क्षेत्र) में विभाजित करना इस संदर्भ में विचारणीय शोध का विषय बन गया है, इस विभाजन का पिछली सदियों में उस समय महत्व रहा है, जब मुसलमान एक संगठित समाज के रूप में रहते थे, और आपसी एकता व एकरूपता को क़ायम रखते हुए फैलते गए और उनका दायरा बढ़ता चला गया, अतः उनका क्षेत्र दारुल इस्लाम कहा जाता था और उनके अतिरिक्त जो क्षेत्र थे दारुल कुफ्र समझे जाते थे।

परन्तु जब विभिन्न देशों और क्षेत्रों से मुसलमानों के शासन का पतन हो गया, ग़ैर मुस्लिम देशों के लोग इस्लाम की परिधि में प्रवेश करने लगे तो इस परिर्वतित स्थिति के कारण पूर्व के विभाजन ने एक विचारणीय प्रश्न का रूप ले लिया, और इस समय इस विभाजन को स्वीकार करने से निम्न बातें अनिवार्य हो जाती हैं-

(क) अपने दीन की रक्षा के लिए दारुल कुफ्र से हर मुसलमान होने वाले व्यक्ति की हिजरत (प्रवास) की अनिवार्यता।

(ख) उन सभी क्षेत्रों के शेष मुसलमानों की हिजरत की अनिवार्यता, जहां से मुसलमानों की सत्ता समाप्त हो चुकी है।

स्पष्ट रहे कि इससे निम्नलिखित हानियों का सामना करना पड़ेगा।

(1) उनका अपनी धन सम्पत्ति को छोड़ना।

(2) अपने अधिकार में बचे सभी व्यवसायिक अथवा सामाजिक व राजनीतिक केंद्रों को छोड़ना।

(3) शिक्षा केंद्रों, इस्लामी संस्थाओं और मस्जिदों की हानि।

(4) उन देशों के शासकों के प्रस्तावों पर प्रभाव डालने के अवसर की हानि जिनके कारण इस्लामी जगत की स्थिति पर प्रभाव डालने की संभावना का समाप्त होना।

5. उनका उन सामाजिक इकाइयों से सम्बन्ध विच्छेद और उन देशों की नागरिकता की हानि, जिसके कारण विभिन्न विशेषताओं और रियायतों से लाभ नहीं उठा पाते हैं:

(क) विश्व के विभिन्न देशों में शान्ति व सुरक्षा, आदर व सम्मान बल्कि इस्लाम की दावत को लाभ पहुँचाने वाले हर तरह के सहयोग के साथ साथ यात्रा करने की अनुमति।

(ख) जिन देशों की नागरिकता उनको प्राप्त है वहां आने जाने की अनुमति, जिसके कारण दावत का काम आसान हो सकता है, और उसके न होने के कारण बहुत सी कठिनाइयों का सामना हो सकता है।

(ग) उन स्वतन्त्रताओं से लाभान्वित होने का अवसर जिन्हें वहां की सरकारें अपने नागरिकों को देती हैं, जब कि बहुत से इस्लामी देशों

में ऐसी स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं हो पाती।

(ड) महान बौद्धिक योग्यताएं जैसे, संचार व्यवस्था, सूचना के माध्यम, सुन्दर मुद्रण (छपाई), इस्लामी दावती कार्यक्रम बनाने के लिए बेहतरीन इलैक्ट्रानिक उद्योग, और विश्व के कोने-कोने से प्रकाशित किताबों की उपलब्धता, और उनसे लाभ उठाना, जब कि इनमें से अधिकतर चीजें मुस्लिम देशों में उपलब्ध नहीं हो पाती।

यही कारण है कि मैं उन लोगों का समर्थन नहीं करता जो ग़ैर इस्लामी देशों से मुसलमानों की हिजरत (प्रवास) की अनिवार्यता के समर्थक हैं, अन्यथा, नैपाल, भारत, फ़िलीपाइन, थाईलैंड, श्री लंका और म्यानमार के मुसलमान इसके अधिक ज़िम्मेदार हैं न कि अमेरिका ब्रिटेन, जापान, यूरोपीय देश, लैटिन अमेरिका, अधिकतर अफ्रीक़ी देश आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि के मुसलमान नागरिक।

क्या इसे विवेक स्वीकार कर सकता है? या यह शरीअत के उद्देश्यों के अनुकूल हो सकता है?

जब हमने ग़ैर मुस्लिम देशों में मौजूद मुसलमानों के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया. तो इस समस्या से कई बातें ऐसी जुड़ी हैं जिन पर चर्चा की आवश्यकता है जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) अपने देशों के प्रधान मंत्री के चुनाव में भाग लेने के सिलसिले में कार्य प्रणाली।

(2) शरीअत से टकराने वाले कुछ मामलों पर मजबूर किए जाने की दशा में उनका काम करने का तरीक़ा।

(3) ग़ैर मुस्लिमों को मुसलमानों पर बड़ाई प्राप्त होने की दशा में

उनके अधीन काम करने का तरीक़ा, जब कि अल्लाह तआला की तरफ़ से उसकी बिल्कुल अनुमति नहीं है।

(4) ब्याज के तहत लेन देन के मामलों में उनका तरीक़ा और यह बात किसी से छिपी नहीं है कि हनफ़ी उलमा के विचार इस सिलसिले में भिन्न है।

5. जुमा, जमाअत की नमाज़ और ईदों जो कि मुस्लिम शासकों के अनुमति की मोहताज हैं, उनको स्थापित करना।

6. ज़कात को एकत्र करना और उसका उचित उपयोग करना जबकि मालूम है कि यह मुस्लिम शासकों के दायित्व में से है।

7. इसके अतिरिक्त मुसलमानों के अत्यन्त विशेष मामले जैसे निकाह, तलाक़, विरासत, गुज़ारा भत्ता, अलगाव जैसे दूसरे मामलात जिसे आज पश्चिमी क़ानून की शब्दावली का शाब्दिक अनुवाद करने वाले विधान के विद्वानों की भाषा में पर्सनल लॉ के नाम से जानते हैं, के सिलसिले में फ़ैसला करने वाले की नियुक्ति।

मैं यहां उन विभिन्न समस्याओं में से मात्र एक समस्या अर्थात मुसलमानों का अपने बीच के मामलों में फ़ैसला करने के लिए क़ाज़ियों की नियुक्ति पर चर्चा करूंगा।

वास्तविकता यह है कि क़ाज़ियों की नियुक्ति मुसलमानों के शासकों के गुणों में से एक महत्वपूर्ण गुण है जिसे रसुलुल्लाह (सल्ल.) और उनके बाद उनके खुलफ़ा-ए-राशिदीन, विभिन्न क्षेत्रों में क़ाज़ियों की नियुक्ति के माध्यम से काम किया करते थे और यह अब तक एक सुन्नत तरीक़ा के रूप में प्रचलित है।

पश्चिमी संविधानों में है कि किसी भी देश की माँगों का दायरा कितना ही विस्तृत क्यों न हो वह तीन चीज़ों अर्थात बाहरी सुरक्षा, आन्तरिक सुरक्षा और लोगों को न्याय उपलब्ध कराने में समेटा जा सकता है।

उपरोक्त विस्तृत वर्णन अपने अत्यन्त साधारण रूप में इस्लामी देशों पर भी लागू होता है, इसलिए यह नियम है कि ''टैक्स (कर) रक्षा के लिए है'' अर्थात यदि कोई देश अपने वासियों को आन्तरिक और बाहरी सुरक्षा नहीं उपलब्ध कराता है तो उसे जनता पर आर्थिक कर लगाना वैध नहीं होगा।

और जहां तक फ़ैसले का सम्बन्ध है तो उसे, अधिकारों को उनके वास्तविक हक़ पहुँचाना, अराजकता को दूर करने और अधिकार वाले को स्वयं अपने से अधिकार प्राप्त करने से रोकने, जिसके कारण विभिन्न सामाजिक और सुरक्षा सम्बन्धी बिगाड़ का सन्देह है, जैसे शब्दों में वर्णन किया जाता है, यही कारण है कि अधिकार वाले का स्वयं क़िसास लेने के बजाए इसे ऐसे विशेष सरकारी पदाधिकारी के माध्यम से ऐसे अधिकृत और न्यायिक व्यक्तित्व के फ़ैसले के बाद प्राप्त किया जाता है, जिनके फ़ैसले को लागू करने में कोई कठिनाई नहीं आती है, और जो इन मामलों को उचित समय पर कहने के कारण न तो सेवा मुक्त किए जाते हैं और न उन्हें इसके लिए मजबूर किया जाता है।

फ्रांसीसी क्रांति के बाद विधायक, कार्य पालिका और न्याय पालिका तीनों अंगों को अलग अलग रखने के सिद्धान्त पर सहमति बन गई और प्रत्येक देश में संविधान अनिवार्य अंश बन गया।

और (न्यायिक अधिकार) के आदेश हर संविधान के क़ानून का

हिस्सा बन गए, और संविधान इसको सम्मिलित किए बिना अधूरा माना जाता है, उन संविधानों में सुल्तान अब्दुल हमीद (द्वितीय) के शासन काल में लागू किया गया उसमानी खिलाफ़त का संविधान, 1958 का इराक़ का अस्थायी संविधान (धारा 23-25), 1958 का संयुक्त अरब इमारात का अस्थायी संविधान (भाग-4: धारा 59-63), बहरीन का संविधान (भाग-4 धारा 101-103), कुवैत का संविधान (अस्थायी: धारा-163-173) और स्थायी संविधान की धारा 53) लेबनानी संविधान (धारा-30), मोरक्को का संविधान (भाग: 23-27) टयूनिशिया का संविधान (भाग-4 धारा 64-67), सूडान का संविधान (भाग 5: धारा-99-107) इत्यदि उल्लेखनीय हैं।

सिद्धान्त रूप में इफ़्ता (मसला बयान करना) उस आदेश को बयान करने को कहा जाता है जिसको पालन करने की कोई पाबन्दी नहीं होती जब कि फ़ैसला उन आदेशों का बयान करने को कहते हैं जिन्हें अनिवार्य रूप में अपनाया जाता है।

हजरत अबू मूसा अशअरी के नाम एक पत्र में हज़रत उमर इब्ने खत्ताब (रजि.) ने फ़रमाया कि तुम्हारे सामने जब कोई फ़ैसला प्रस्तुत किया जाए तो उसे लागू करो क्योंकि मात्र अधिकार बयान करने से कोई लाभ नहीं और इसमें सन्देह नहीं कि यह ऐसी वास्तविकता है जिसे उम्मत के तमाम फ़क़ीह (न्याय विधि)स्वीकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त पश्चिम के मानव निर्मित विधानों में जो चीज़ें हैं बिल्कुल वही चीज़ें इस्लामी फ़िक़्ह और प्रचलन में पायी जाती हैं। क्योंकि कानून वास्तव में उन सामाजिक परिस्थितियों के गठित नियमों के संकलन

का नाम है, जो लागू न होने की दशा में लाभहीन होते हैं, अतः आदेश का पालन वह महत्वपूर्ण चीज़ है जो फ़िक्ही या (हमारी शब्दावली में शरअी आदेश) को इस्लामी दृष्टिकोण से भी न्यायिक फ़ैसले का दर्जा दिया जाता है।

लेकिन मानव कृत संविधान के विशेषज्ञ प्रचलित विधान को क़ानून का स्रोत मानते हुए विभिन्न बहानों का सहारा लेने लगे, इनकी दलील यह है कि विधान का पालन वास्तव में समूह की चेतना की आवाज़ है और जो चीज़ प्रचलित विधान को पालन न करने वाले व्यक्ति को उसके समाज में निन्दनीय ठहरा दे वही वास्तविक जज़ा (लाभ) है।

लेकिन एक ही समय में वह दीनी व नैतिक विधानों को लाभ के तत्व से वंचित होने के कारण विधान का स्रोत नहीं मानते क्योंकि उनकी दृष्टि में ''धर्म'' (इस शब्द की जानकारी की सीमा तक) सामाजिक विधानों से हीन मात्र रीतियों और इबादतों का नाम है. इस विचार मत में इसको कार्य रूप देने के अनुसार दो त्रुटियाँ पाई जाती हैं।

उन्होंने पर्सनल लॉ के लिए सिद्धान्त निर्धारित किए, और जब यह सिद्धान्त क़ानून के रूप में अपनाने योग्य हुए तो स्वयं उसका विरोध करने का तत्व ठहराते हुए संविधान का स्रोत समझे जाने वाली रीतियों का भी इन्कार करने लगे, यहां तक कि ब्रिटेन के संविधान के अधिकतर क़ानून प्रचलित रीतियों पर आधारित हैं, इसी प्रकार लेबनान के संविधान की अधिकतर धाराएं जैसे पदों का समुदायिक बंटवारा करते हुए, मारोनी ईसाई राष्ट्रपति, सुन्नी मुस्लिम प्रधान मंत्री, शिया मुस्लिम संसद के स्पीकर की नियुक्ति, प्रचलित नियमों पर इस तरह आधारित हैं कि जब मुसलमानों ने

उसमें परिवर्तन का प्रयास किया तो उसके कारण एक बड़ा युद्ध छिड़ गया जो दस वर्ष तक चलता रहा जिसमें हज़ारों जानें नष्ट हो गईं लेकिन प्रचलित व्यवस्था ज्यों की त्यों स्थापित रही।

उस्मानी खिलाफ़त के अन्तिम दौर में ईसाइयों ने अपने धार्मिक नेता के चुनाव, वक़्फ़ की देख भाल, धार्मिक शिक्षा और अपने धार्मिक न्यायालय (जिसकी हम चर्चा करेंगे) पर आधारित धार्मिक या पर्सनल ला में स्वाधीनता प्राप्त कर ली थी और इन धार्मिक संस्थाओं की हैसियत न्यायिक समझी जाती थी और इस धर्म के सभी मानने वालों पर धार्मिक कर्त्तव्य की हैसियत से इस विभाग के आदेशों का पालन आवश्यक था. यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई आदेश होता तो उसे लागू करने के लिए सरकार के सहारे की आवश्यकता नहीं थी. इस तरह फ़ैसला बयान करने की अदालती हैसियत को अनिवार्य रूप में फ़ैसला लागू करने का अधिकार बाक़ी रहा है।

अब हम उन देशों के मुस्लिम अल्प संख्यकों की न्यायिक संस्थाओं का उल्लेख करेंगे जहां मुसलमानों के शासन का अन्त हो गया या ग़ैर मुस्लिम सत्ता के बावजूद भी वहां की जनता ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है।

तो प्रश्न यह है कि इन अदालती संस्थाओं को हम वास्तव में न्यायिक विभाग में गिन सकते हैं।

और क्या इनकी गतिविधियों को इस्लामी आदेश मान सकते हैं?

इस सिलसिले में मेरा विचार सकारात्मक है।

क्योंकि पश्चिमी विधान के नियमों के अनुसार भी उन्हें क़ानूनी दर्जा देने में कोई बुराई नहीं है, और शासकों को भारत, फ़िलीपींस और थाई लैंड

इत्यादि में मुसलमानों द्वारा स्थापित संस्थाओं के महत्व से सन्तुष्ट कराने के लिए भी इसका अपनाना उचित और लाभदायक है, और इन संस्थाओं को दूसरे देशों में जहां मुसलमानों की बड़ी संख्या मौजूद है, प्रचलित करने की आवश्यकता है।

फ़िक़्ही दृष्टिकोण, फ़िक़्ही कार्य, और इस्लामी कार्य प्रणाली के अनुसार भी इसमें गुन्जाइश है।

क्योंकि फुक्हा ने यह नियम बयान किया है कि जहां मुसलमानों में जुमा की शर्तें पाई जाती हों और उनका कोई शासक न हो जो उन्हें नमाज पढ़ा सके तो उनको चाहिए कि अपने में से किसी व्यक्ति को नमाज पढ़ाने के लिए नियुक्त कर लें. यह मसला इब्ने आबिदीन में मौजूद है।

इसी तरह यदि मुस्लिम राज्य के शासकों ने ज़कात वसूल नहीं की या या उसे ज़कात के नाम से वसूल नहीं किया या वसूल करने के बाद उसे सही मद में प्रयोग नहीं किया तो वहां के मुसलमानों के लिए वैध है कि वह किसी दावती मामलों में रूचि रखने वाले किसी अमल करने वाले आलिम के पास एकत्र कर दें. इसके बिना ज़कात अदा नहीं होगी या ऐसा कोई आलिम न मिले जिसके अन्दर यह गुण हों तो मुसलमान किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव करें जो इस कार्य को भली भांति कर सकता हो, इस विषय पर मैंने ज़कात की मद के विषय पर इस्लामी फ़िक़्ह अकेडमी भारत की ओर से आज़म गढ़ में आयोजित एक सेमीनार में एक लेख प्रस्तुत किया था जिसमें विस्तार से चर्चा हुई है।

इसी प्रकार यदि मुसलमानों का कोई शासक न हो या वह ग़ैर इस्लामी व्यवस्था में रहते हों, तो उन्हें इस बात का अधिकार है कि वे चांद निकलने

को सिद्ध करने के लिए और उसके देखने के आदेश और उससे सम्बन्धित साक्ष्य लेने के मामलों से परिचित किसी व्यक्ति को उसके लिए नियुक्त कर दें।

फिर इसके अनुसार रोज़ा रखें और इफ़्तार करें (ईद मनाएं) उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि:

मुसलमानों को अपने मामलों में फ़ैसला करने के लिए किसी व्यक्ति का चुनाव वैध है।

और मुसलमानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण उनके पर्सनल लॉ से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान है, क्योंकि वह मनुष्य की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से है।

और क़ाज़ी द्वारा दिए गए आदेश न्यायिक फ़ैसले की हैसियत रखते हैं जिनका शरीअत के अनुसार पालन करना अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त पूरे समुदाय का इस फ़ैसले से संतुष्ट होने और न सन्तुष्ट होने के कारण निन्दा झेलने की दशा में उसके पालन का तत्व मौजूद है।

इसलिए इन संस्थाओं की ओर से भारत, थाईलैण्ड और फ़िलीपींस इत्यादि जैसे देशों में किए गए फ़ैसले:

(क) स्वीकार किए जाने योग्य हैं।

(ख) उन्हें न्यायिक आदेश का दर्जा प्राप्त है।

और इसका उल्लंघन करने वाला पापी है और मुस्लिम समुदाय उस पर बाईकाट और उसके साथ हर तरह के सम्बन्ध तोड़ लेने जैसे दण्ड को लागू कर सकता है. जिस प्रकार रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने तबूक की लड़ाई

में पीछे रह जाने वाले व्यक्तियों के साथ किया यहां तक कि उन्होंने तौबा कर ली. और इसी तरह ज़कात देने योग्य होने के बावजूद ज़कात न देने वालों के साथ किया, मानों इसमें दण्ड और प्रतिबन्ध लगाने का तत्व दोनों में पाया गया. इसमें पश्चिमी वैधानिक नियमों के तत्व और इस्लामी आदेशों के तत्व दोनों मौजूद हैं।

☆☆☆

ग़ैर इस्लामी देशों में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध

डा. अब्दुल अज़ीम इस्लाही

(जद्दा)

इस्लामिक फ़िक्ह अकेडमी ने बहुत महत्वपूर्ण समस्याओं को चर्चा का विषय बनाया है. इन प्रश्नों के उत्तर के लिए नबी (सल्ल.) के ज़माने के तीन चरणों से काफ़ी रोशनी मिलती है प्रथम रसूलुल्लाह (सल्ल.) की मक्की ज़िन्दगी, द्वितीय सहाबा का हब्शा (इथोपिया) प्रवास, तृतीय हुदैबिया सन्धि।

रसूलुल्लाह (सल्ल.) के मदीना हिजरत (प्रवास) के बाद इस्लाम मज़बूत से मज़बूत होता गया, और हदीसों के संकलन व फ़िक्ह व फ़तावा के संकलन के दौर से लेकर शताब्दियों तक सत्ता और शक्ति का केन्द्र रहा है, इसलिए शायद मक्की दौर का विवरण इस तरह सुरक्षित नहीं है जैसे मदनी दौर का, हब्शा हिजरत और मुसलमानों का वहां बसने के हालात तो प्रकाश में नहीं हैं, इतिहासकार यह लिखते हैं कि किस कबीले से किन लोगों ने हिजरत की, वहां के लोगों के साथ उनके सामाजिक और आर्थिक सम्बन्ध कैसे रहे इबादत व प्रचार प्रसार की कोई व्यवस्था थी या नहीं? उन्होंने अपनी अलग बस्तियां बसाई या हब्शा वालों के साथ घुल मिल कर रहे? कभी कोई टकराव हुआ? दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हुए? इत्यादि? ये

मुसलमान खैबर की विजय के बाद लौटे, इस दौरान महत्वपूर्ण शिक्षाओं और फ़र्ज़ इबादतों पर आधारित कुरआन का बड़ा भाग अवतरित हुआ, क्या उन तक इन शिक्षाओं को पहुँचाने की कोई व्यवस्था की गई थी या उन्हें बेबस समझ लिया गया? इस तरह के बहुत से प्रश्न उत्पन्न होते हैं और आवश्यकता है कि हब्शा के प्रवास को शोध का विषय बनाया जाए और उससे सम्बन्धित विभिन्न माध्यमों से जो रोशनी मिल सकती है उसकी समीक्षा की जाए. तृतीय चरण हुदैबिया की विजय के साथ प्रारम्भ होता है जो मुसलमानों और काफ़िरों को स्वतन्त्र रूप से मेल जोल के अवसर मिले थे उनकी सीमाएं क्या थीं? इस पर भी अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर पवित्र कुरआन की से सम्बन्धित आयतें, रसूलुल्लाह (सल्ल.) का आदर्श, और उपरोक्त चरणों से सम्बन्धित जो विवरण मिलते हैं और उनकी रोशनी में भी वास्तविक उद्देश्य, ''आसानी'' दो बलाओं में से कमतर बला को चुनना, और मजबूरी के साधारण नियमों के प्रकाश में ढूंडना होगा, और वर्तमान की बदली हुई परिस्थितियां और पेचीदगियों को ध्यान में रखना होगा. इस प्रयास में इन पंक्तियों का लेखक जिस निष्कर्ष पर पहुँचा वह प्रस्तुत है:

– **(क)** लोकतान्त्रिक देशों में चुनाव में प्रश्नावली में उल्लेख किया हुआ किसी भी हैसियत से भाग लेने का सम्बन्ध हितों से है, हितों के अनुसार यदि आवश्यकता है तो क्या भाग लिया जा सकता है? हितों को कौन निर्धारित करेगा? स्पष्ट है कि इसके लिए मुसलमानों के समझदार और प्रबल लोग, उलमा, मिल्लत के शुभ चिन्तकों का एक सामूहिक मंच होना चाहिए जो उद्देश्यों का निर्धारण करें और जो वह निर्धारित कर ले तो उससे

अलग रहना क्या शरीअत के अनुसार अवैध है? क्योंकि समूह के ऊपर अल्लाह तआला का हाथ होता है, और जो समूह से अलग हुआ वह आग में डाल दिया जाएगा. बिखराव और मतभेद से कुछ भी निर्धारण कर लें कोई लाभ नहीं।

(ख) मतदान मौलिक अधिकार और सामाजिक कर्त्तव्य तो है लेकिन जब स्पष्ट रूप से मिल्ली व दीनी काम व हित जुड़े हों तो शरीअत के अनुसार अनिवार्य ठहराया जा सकता है. यदि किसी चीज़ के बिना अनिवार्य पूरा न होता हो तो वह भी अनिवार्य हो जाता है।

(ग) दलीय राजनीति, वी एच पी की व्यवस्था और दल बदल विरोधी क़ानून की मौजूदगी में दल से बाहर रह कर स्वयं अकेला कुछ नहीं कर सकता चाहे वह स्वयं नेक चरित्र का हो. इसलिए इस प्रकार के फ़ैसले में देखना होगा कि देश की परिस्थितियां और राज्य की राजनीति में हमारे फ़ैसले का क्या प्रभाव पड़ेगा? स्थानीय और निकायों के चुनाव में पार्टी से हटकर उम्मीदवारों का व्यक्तिगत गुण फ़ायदेमंद हो सकता है लेकिन देश व राज्य सतह पर उसे अपनी इन्सानियत दुशमन पार्टी को समर्थन करना होगा या अपनी सीट से वंचित होना होगा. इस लिए उस मतदान का अर्थ है कि इस्लाम और मुसलमान विरोधी दल का समर्थन और उसको मज़बूत करना है. अतः उस व्यक्ति को वोट देना और उसकी पार्टी में भाग लेना वैध नहीं हो सकता।

(घ) सिद्धान्त रूप में, रणनीति के अन्तर्गत ऐसा किया जा सकता है लेकिन अनुभव बताता है कि ''वे ऐसे लोग हैं जिनके वचन का भरोसा नहीं है'' जब तक हमारे बीच आपसी मतभेद, बिखराव, अवसरवाद, स्वार्थ,

जातिवाद, नसलकवाद जैसी बीमारियां हैं, दुश्मन हमारी कमज़ोरी को खूब समझता है, चाहे विचार धारा के स्तर पर हम कुछ फ़ैसला कर लें लेकिन व्यवाहारिक तौर पर उससे लाभान्वित होना सम्भव नहीं है, जब तक हमारे विभिन्न विचार धाराओं के नेता अपने मतभेद को भुलाकर कामन मिनिमम् प्रोग्राम के रूप में महत्वपूर्ण मिल्ली व दीनी हितों को प्राप्त करने के लिए सामूहिक प्रयास न करें।

(च) समाज का सामूहिक कर्त्तव्यों और अच्छी बातों को प्रचलित करने और बुराइयों से रोकने के लिए ग़ैर मुस्लिम भाइयों से न केवल मेल जोल आवश्यक बल्कि मुसलमान उलमा व नेताओं को भी इसमें पहल करनी चाहिए. यह हिल्फुल फ़ुज़ूल जैसा सहयोग होगा जिसका हुज़ूर (सल्ल.) ने नुबुव्वत और हिजरत के बाद भी अच्छे शब्दों में उल्लेख किया और इस प्रकार के समझौते में भागीदारी को लाल रंग के ऊँटों से भी अधिक अच्छा बताया।

-**(क)** मुसलमानों का वह वर्ग जो ग़ैर मुस्लिमों से मेल जोल रखता है साधारणत: इस्लाम से दूर और वह दीन का प्रतिनिधि नहीं होता है. ग़ैर मुस्लिम उन्हीं से इस्लाम को समझते हैं दीन दार वर्ग उनसे मिले और इस्लाम का सही प्रतिनिधित्व करे तो बहुत से सन्देह दूर हो सकते हैं, यद्यपि उत्साह और नीयत से मिली जुली बस्तियों में रहना और ग़ैर मुस्लिमों को प्रभावित करने का प्रयास करना खामोश जिहाद है. केवल इनकी सांस्कृतिक छाप से अपने आप को सुरक्षित रहने के लिए अलग बस्तियां बसाना रेत में मुंह छिपाने जैसा है. अपने अच्छे चरित्र, ज्ञान व कला, और अच्छे व्यवहार से इस हमले का सामना करने की आवश्यकता है. सुरक्षा की दृष्टि से

किसी मुस्लिम आबादी में रहने को वरीयता देना एक मजबूरी है।

(ख) समाज में एक साथ रहने वालों और मिलने जुलने वालों के सुख दुख में भाग लेना मानवीय कर्त्तव्य है. ग़ैर मुस्लिमों की शव यात्रा देखकर खड़ा होना और बीमारों को देखने जाना सुन्नत से सिद्ध है, हां शव यात्रा में भाग लेने में मतभेद है. शाफ़ई और हनफ़ी उलमा ने इसकी अनुमति दी है और पंक्तियों का लेखक भी इसका समर्थक है कि जिनसे उनके जीवन में सम्बन्ध और मेल जोल रहा है उनके मरने के बाद शव के साथ कुछ दूर चलने में शरीअत में कोई बुराई नहीं है, अलबत्ता उनके धार्मिक कर्म काण्डों में भाग न लिया जाए. अधिकतर यह देखा गया है कि ग़ैर मुस्लिम भी अपने से सम्बन्धित मुसलमानों के जनाज़े में भाग लेते हैं और नमाज़-ए-जनाज़ा के समय अलग हो जाते हैं, अतः उच्च नैतिकता का प्रदर्शन करने के हम अधिक हक़दार हैं. ग़ैर मुस्लिमों के लिए दुआ और कुरआन पढ़ना न केवल बेकार है बल्कि पवित्र कुरआन से उसकी मनाही स्पष्ट है:

ولا تصل على احدٍ منهم ابداً

''उनमें से जो मर गया उस पर कभी नमाज़ मत पढिए (सूरः तौबा-84)

(ग) ग़ैर मुस्लिमों से उपहार के लेन-देन के उदाहरण भी सुन्नत से सिद्ध है (सही बुखारी, किताबुल-हिबा, 133-141/3)। उपहार किसी समारोह के अवसर पर हो तो कोई बुराई नहीं है हां यदि यह प्रसाद, चढ़ावा या किसी पूजा पाठ के अवसर पर हो तो बेहतर है कि लेने से क्षमा मांग ले और यदि किसी कमज़ोरी से इन्कार को अनैतिकता समझकर स्वीकार कर लिया है तो बेहतर है उन्हीं में से किसी व्यक्ति को खिला दे।

(घ) यदि ग़ैर मुस्लिम लगाव के कारण सहयोग दे तो उसे स्वीकार करने में कोई बुराई नहीं है, संभावना है कि इससे उसको अधिक भलाई और संमार्ग मिलने की आशा हो लेकिन यदि कोई भविष्य में लाभ लेने के लिए कर रहा हो तो उसे अस्वीकार कर दिया जाए, क्योंकि ग़ैर मुस्लिमों के धार्मिक समारोहों और पूजा स्थलों के लिए सहयोग देना उनके विश्वास का समर्थन करना होगा जो मुसलमान के लिए उचित नहीं है।

(च) (i) इफ़्तार व ईद के अवसर पर ग़ैर मुस्लिमों को आमंत्रित करना कि इसके द्वारा उन्हें इस्लाम से क़रीब लाया जाए, उनका दिल जीता जाए, और उनकी बुराइयों से मुसलमान सुरक्षित रहें तो ऐसा अवश्य करना चाहिए. इस प्रकार के त्यौहारों में उद्देश्य से भाग लें जैसे उनके मेलों में दावती बुक स्टाल लगाना, तो इसमें कोई बुराई नहीं है, हां, उनकी धार्मिक रीतियों से दूर रहें. रसूलुल्लाह (सल्ल.) ओकाज़, जुल मजाज़ और अल-मज्ना; के मेलों में प्रचार कार्य के लिए जाते थे।

(ii) सामाजिक नैतिकता की आवश्यकता है कि यदि वे हमारे त्यौहारों में हम को शुभ कामनाएं देते हैं तो हमें भी उनको शुभकामना उनके त्यौहारों पर लौटाना चाहिए जिसको वे खुशी की चीज़ समझते हैं वह उनको मुबारक हो जब कि आदमी स्वयं उन पर विश्वास न रखता हो ''जब तुम्हें सम्बोधित किया जाए किसी संबोधन से तो तुम उससे अच्छे ढंग से संबोधन करो या कम से कम उसी तरह संबोधित करो.'' की व्याख्या में यह बात आ सकती है।

-**(क)** झण्डे की सलामी को एक राजनीतिक प्रचलन ही समझना चाहिए. इसकी कोई धार्मिक हैसियत नहीं होती है. इस आधार पर जो नेता

गण हैं वे ऐसा करते हैं तो करें, इसकी धार्मिक रूप से मनाही की आवश्यकता नहीं है, वे धर्म के प्रतिनिधि नहीं होते न यह काम धार्मिक है।

(ख) ऐसे शिर्कपूर्ण (अनेकश्वरवाद) राष्ट्रगान से बचना अनिवार्य है लेकिन जहां झगड़ा लड़ाई का सन्देह हो वहां मजबूरन ऐसे गाने वालों के साथ खामोशी से भाग लेता है तो उसके दीन व ईमान में इन्शा अल्लाह कोई कमी नहीं आऐगी क्योंकि हर मुसलमान का विश्वास होता है कि ज़मीन व आसमान या जो कुछ उनके बीच में है वह हमारे लिए है न कि वह हमारे पूज्य है. ''ईमान का अर्थ होता है मौखिक रूप से इक़रार करना और दिल से प्रमाणित करना और ये दोनों यहां मौजूद नहीं है''।

(ग) जब दोनों पक्ष मुसलमान हों तो उचित यही है कि वे अपने मामले अपनी पंचायतों और जहां तक संभव हो शरअी अदालतों में ले जाया करें. देश में लागू गवाही का क़ानून और दूसरे क़ानूनों का सहारा लेकर अपने मुसलमान भाई के विरुद्ध ऐसी अदालतों में मामले ले जाना, और अपने पक्ष में फ़ैसला होने पर उससे लाभान्वित होना उचित नहीं है. झूठे मामले को जो ऐसी अदालतों में ले गया, स्पष्ट है वह अपने पक्ष में फ़ैसला होने पर उससे लाभान्वित होगा चाहे इस फ़ैसले में हक़दार की हानि हो रही हो. लेकिन वह आखिरत की पकड़ से नहीं बच सकता।

-**(क)** इन्सानों के बीच बिगाड़ और अलगाव के कारण धर्म नहीं है बल्कि उनके अन्दर प्रवेश पाने वाले ग़लत रूझान जैसे स्वार्थ, शोषण, नस्लवाद, क्षेत्रवाद इत्यादि. जहां एक धर्म के लोग रहते हैं, इसीलिए धर्म पर आरोप लगाना उचित नहीं है और सामाजिक जीवन से धर्म को निकाल देना भी उचित नहीं है. इसलिए इस्लामी दृष्टिकोण से यह स्वीकार्य नहीं है.

अल्लाह की मर्ज़ी होती है कि सभी एक रास्ते पर चलें, इसलिए अपने विश्वास और इबादतों पर डटे रहते हुए मानव एकता के आधार तलाश किए जाऐं।

(ख) प्राचीन काल से दलितों को ऊँची जाति वालों ने अपने अन्याय और शोषण का निशाना बनाया लेकिन हमने भी अपने शासन काल में उसके सुधार का कोई विशेष प्रयास नहीं किया लेकिन शासक वर्ग ने ऊँची जाति वाले हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध सुदृढ़ किए और दलितों को अन्याय और अपमान की चक्की में पिसते हुए छोड़ दिया अन्यथा आज उनकी बहुसंख्या मुसलमान होती. अब भी यदि हम इस सिलसिले में कुछ कर सकें तो यह एक धार्मिक कर्त्तव्य को पूरा करना माना जाएगा. जब बागडोर थी तो कुछ नहीं किया, फिर उसकी प्रतीक्षा में बैठना उचित नहीं है।

(ग) जो कल्याण कारी संस्थाएं मुसलमान स्थापितों करें उनको मुसलमानों के लिए विशेष न बनाऐं. हर जानदार की मदद नेकी है, हां समान परिस्थितियों में वरीयता अवश्य दी जानी चाहिए, उनसे दुहरा सम्बन्ध होने के कारण।

(घ) आपात कालीन स्थिति में और त्वरित सहायता में अन्तर न हो लेकिन स्थायी आबादी बसाने में मुसलमानों को वरीयता और विशेषता हो. इस अन्तर का कारण थोड़ी हिचक से समझ में आ सकता है।

☆☆☆

लिखित विचार

ग़ैर इस्लामी देशों में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध

मौलाना वलीउल्लाह मजीद क़ासमी

जामेअतुल फ़लाह आज़म गढ़

.

–(**क**) वर्तमान लोकतान्त्रिक सत्ता का आधार इस बात पर है कि विधान का स्रोत केवल जनता की सामूहिक संस्था है. देशवासी स्वयं विधान बनाने और उसके अनुसार शासन व्यवस्था चलाने के अधिकृत हैं. बहुसंख्या जिसे उचित समझे वह वैध है और संविधान के अनुसार उचित, और जिसे अनुचित ठहरा दे वह कानून के अनुसार अपराध है. लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता संप्रभु होती है इसलिए मतदान का अर्थ यह होता है कि वह अपना प्राप्त प्रभुत्व का अधिकार दूसरों को हस्तान्तरित करता है, और पवित्र कुरआन और रसूलुल्लाह (सल्ल.) की सुन्नत से बेपरवाह लोगों को विधान बनाने का अधिकार देता है।

इसके विपरीत इस्लाम का आधार इस बात पर है कि केवल अल्लाह वह हस्ती है जिसका अज्ञापालन किया जाना चाहिए, किसी दूसरे के लिए संविधान बनाना उस समय उचित है जब वह अल्लाह तआला के मार्ग दर्शन के प्रकाश में विधान बनाऐं, अल्लाह तआला के अलावा किसी और को क़ानून बनाने का अधिकार देना शिर्क है. यदि कोई मुसलमान अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को क़ानून बनाने का अधिकारी नहीं समझता, लेकिन

ऐसी संस्था में भागीदार है जो स्वयं को संविधान बनाने का हक़दार समझती हों और संवधिान बनाने की प्रक्रिया में सहयोगी भी हो तो ऐसा व्यक्ति बहुत पापी हैं, लेकिन यदि इस बात का सन्देह हो कि यदि मुसलमान उसकी सदस्यता न स्वीकार करें या चुनाव में न भाग लें तो उनके शेष बचे अधिकार भी समाप्त हो जाऐंगे, तो मजबूरी के दर्जे में इन दो बुराईयों में से कम को सहन किया जा सकता है ताकि धर्म और उसकी निशानियों और मिल्ली पहचान के बहुमूल्य धरोहर को बचाने में सहायता मिल सके।

यह भी ध्यान में रहे कि जो चीज़ आवश्यकता पड़ने पर वैध हो जाती है वह आवश्यकतानुसार ही वैध होती है इसलिए उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति ग़ैर मुस्लिमों को मतदान करके ही हो सकती है तो मुसलमानों को सदस्य बनने से बचना चाहिए ताकि वह सीधे ग़ैर शरअी क़ानून से वफ़ादारी और संविधान बनाने में भागीदारी न हों, और यदि ग़ैर मुस्लिमों द्वारा इन हितों की प्राप्ति संभव न हो तो फिर किसी मुसलमान को आगे बढ़ने की अनुमति होगी, लेकिन उसके मन में इसकी बुराई स्पष्ट होनी चाहिए और इसके साथ ही इस व्यवस्था से बचने का प्रयास होना चाहिए और दूसरे लोग भी इस प्रयास में पीछे न रहें।

(ख) मतदान अमली कुफ्र और घृणित पाप में सहयोग है, मजबूरी की स्थिति में अनुमति है लेकिन इस्लामी शान के अनुसार बचना अच्छा है. दूसरे रास्तों से अपनी हैसियत मनवाने का प्रयास होना चाहिए, छूट पर अमल की गुंजाइश है लेकिन अनिवार्य किसी भी स्थिति नहीं है।

(ग) देखा जा रहा है कि सदस्य अपनी पार्टी लाइन पर ही चलते हैं इसलिए केवल किसी सदस्य की अपने व्यक्तिगत गुणों और स्थानीय

आवश्यकता और हितों को देखते हुए फ़ासीवादी विचारधारा की पार्टी के किसी सदस्य को वोट देना उचित नहीं है और न ही ऐसी पार्टी का सदस्य बनना वैध होगा कि जिसके कारण धार्मिक हितों को हानि पहुँचती हो।

(घ) समाज में शान्ति व सुरक्षा की स्थापना के लिए ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिलकर काम किया जा सकता है जिसके लिए हदीसों में उल्लिखित हिल्फ़ुल–फ़ुज़ूल है।

–**(क)** साधारण परिस्थितियों में मुसलमानों के लिए उचित नहीं कि वह ऐसी जगह बसें जहां ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हों बल्कि वहां से हिजरत करना अनिवार्य है ताकि वह और उनके बच्चे ग़ैर इस्लामी संस्कृति व सभ्यता से सुरक्षित रहें इसलिए कि अनजाने में इन्सान बहुसंख्कों की संस्कृति में ढलना शुरू हो जाता है, विशेष रूप से भारत में दंगों की पृष्ठभूमि में सुरक्षा की दृष्टि से मिली जुली आबादी में रहना अनुचित है. लेकिन कोई व्यक्ति यह समझता है कि ग़ैर मुस्लिमों से प्रभावित नहीं होगा बल्कि वह अपने व्यवहार और चरित्र से इस्लाम का प्रचारक सिद्ध होगा तो ऐसे व्यक्ति को उनके बीच रहने में कोई बुराई नहीं है. क्योंकि महान सहाबा और उनके बाद के बुजुर्गों (ताबईन) ने विभिन्न नगरों और देशों को उस समय अपना वतन बनाया जबकि वहां उनके अलावा अल्लाह का कोई नाम लेने वाला न था।

(ख) ग़ैर मुस्लिम की शव यात्रा में भाग लेना या अन्तिम संस्कार में वहां मौजूद रहना ठीक नहीं है लेकिन यदि कोई निकट सम्बन्धी हो तो शवयात्रा से दूर रहकर और अन्तिम संस्कार जहां हो रहा हो वहां से हटकर भाग ले सकता है।

ग़ैर मुस्लिमों के लिए पवित्र कुरआन के माध्यम से पुण्य पहुँचाना हराम है।

(ग) त्यौहार और धार्मिक समारोहों के अवसर पर उपहार तो वैध है लेकिन मूर्तियों पर चढ़ाई हुई चीज़ प्रसाद अवैध है किसी मुसलमान के लिए उसका लेना वैध नहीं है।

(घ) मस्जिदों और मदरसों में ग़ैर मुस्लिमों के सहयोग को स्वीकार किया जा सकता है लेकिन उनसे चन्दा मांगना अनुचित है इसलिए कि यह इस्लामी महिमा के विरुद्ध है लेकिन यदि चन्दा दिए बिना छुटकारा न हो तो मांगने वालों को मालिक बनाने की नियत से देने की गुंजाइश है।

(च) ग़ैर मुस्लिमों के त्यौहार और धार्मिक समारोहों में भागीदारी उचित नहीं है, इसी प्रकार त्यौहार के लिए भी बधाई देना मना है।

-**(क)** झण्डे की सलामी में आदर सम्मान की मानसिकता होती है और किसी के सम्मान के वैध होने के लिए यह शर्त है कि वह उसका अधिकारी हो, और किसी का सम्मान योग्य होने के लिए उचित तर्क आवश्यक है और झण्डे के लिए कोई उचित दलील उपलब्ध नहीं है. इसलिए सलामी वैध नहीं है, लेकिन यदि मात्र ध्वजारोहण हो तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

(ख) जिन राष्ट्रीय गानों में देश की ज़मीन को पूज्य (इलाह) का दर्जा दिया गया हो उसे पढ़ना और गाने के दौरान सम्मान में खड़ा होना हराम है।

(ग) ग़ैर मुस्लिम के न्यायालयों के ग़ैर शरअी फ़ैसलों का समर्थन करना और उनसे लाभान्वित होना वैध नहीं है।

-(**क**) सर्वधर्म समानता की विचार धारा किसी स्तर पर भी स्वीकार्य नहीं है।

(**ख,ग**) पीड़ित ग़ैर मुस्लिमों की सहायता और उनके दुख दर्द में भागीदारी, जन सेवा की नीयत से ग़ैर मुस्लिमों को लाभ पहुँचाना, प्राकृतिक आपदा के अवसर पर ग़ैर मुस्लिमों की सहायता वैध और उचित है बल्कि पुण्य का कारण है।

☆☆☆

परिचर्चा

परिचर्चा:

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याऐं

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी:

उपस्थित सज्जनों! फ़क़ीहों की दृष्टि में दारुल इस्लाम और दारुल कुफ़्र का विभाजन और आधुनिक युग में जो देश हैं उन पर इस विभाजन को लागू करना और दारुल कुफ़्र में अमारत-ए-शरईया की व्यवस्था की शरअी हैसियत और मुसलमानों की न्याय व्यवस्था (दारुल क़ज़ा) की स्थापना और उनके फ़ैसलों को लागू करने का अधिकार, हमें इन सब विषयों पर चर्चा नहीं करना है बल्कि इस प्रश्नावली में जो बिन्दू उठाये गये हैं वहीं तक अपनी चर्चा को सीमित रखना है। इस चर्चा को प्रारम्भ करने के लिए देश के एक बुजुर्ग विद्वान मौलाना अफ़ज़ालुल हक़ जौहर क़ासमी से मैं निवेदन करता हूँ कि वह जो कुछ कहना चाहते हैं वह संक्षेप में व्यक्त कहें।

मौलाना अफ़ज़ालुल हक़ जौहर क़ासमी

विभिन्न विषयों पर सभी आदरणीय उलमा ने अपने विचार और तर्क प्रस्तुत किये हैं और इस समस्या को समझने का प्रयास किया है। भारत की दो तीन समस्याएं महत्वपूर्ण हैं। पहली समस्या यह है कि भारत ऐसा देश है जिसका आधार धर्म माना जाता है। अत: सदैव से आज तक यही होता रहा

है, धार्मिक आधार पर यह निर्धारित कर दिया गया है कि ब्राह्मण सबसे ऊँची जाति है और चौधरी सबसे नीची ज़ाति है। यही बात इतनी दृढ़ता के साथ कही जाती है कि आज तक जात-पात की समस्या समाप्त नहीं हुई और न हो सकती है। यहाँ तक कि मुसलमान आये, अरब से आये, मदीना व मक्का से आये, बड़े-बड़े उलमा आये, लेकिन यहाँ आकर सब एक ही रंग में रंग गये। यहाँ अगर ब्राह्मण सबसे अच्छी और सबसे बड़ी जाति थी तो सैयद सबसे बड़ी जाति मान ली गई। पूरे देश को चार स्थानों में विभाजित कर दिया गया। जैसे हिन्दू धर्म में विभाजन था वैसे ही मुसलमान भी विभाजित हो गये। यह एक मौलिक समस्या है जो समाप्त होनी चाहिए। आप (सल्ल०) समानता लेकर आये थे, "سورالانسان طاهر" इन्सान का झूठा पवित्र है' आप के सम्बन्ध में लिखा है कि इन्सान चाहे जिस जाति से भी हो मुस्लिम होगा या ग़ैर मुस्लिम हो उसका झूठा पवित्र है।

आपकी किताबों में यह बात लिखी हुई है "तुम सब आदम से हो और आदम मिट्टी से बनाये गये थे" इस समानता की शिक्षा देनी चाहिए थी, आपने नहीं दी, बल्कि यहाँ एक ऐसी बात जो बिल्कुल ग़लत थी और इसकी कोई गुंजाइश नहीं थी वह आपने स्वीकार कर ली। यह एक बड़ी समस्या है और इस समस्या पर चर्चा होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि भारत की हैसियत क्या है? इस पर चर्चा का अवसर इस लिए नहीं है कि इस समय भारत का संविधान बन चुका है, संविधान को बनाने वालों में गाँधी जी ने अम्बेडकर को नियुक्त किया था। वहीं उन लोगों ने 6 या 7 आदमी नियुक्त किये थे, जिनमें मौलाना आज़ाद, नेहरू, पटेल, अम्बेडकर भी थे। ऐसे ही और आदमी भी थे उन्होंने संविधान की बुनियाद रखी थी।

पूरी दुनिया में इसका उदाहरण नहीं। संविधान कहता है, मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं अतः एक ब्राम्ह्ण एक चमार और सैयद पठान सब बराबर हैं। हैसियत के अनुसार कोई अन्तर नहीं है। महिला व पुरुष में भी अन्तर नहीं है, अन्तर है पुरुष और महिला का, लेकिन पद और वोट के अनुसार कोई अन्तर नहीं, सबका वोट बराबर है, चाहे वह ऊँची जाति का हो या नीची जाति। यह बात बहुत आश्चर्यजनक है, बहुत बड़ी बात है जो भारत को दी गई है हमें इसको कुछ नहीं करना है, हमें इसका पालन करना है, हमें इस पर ध्यान देना है, इसको बढ़ाना है। इस समय भारत में जो लड़ाई चल रही है वह इस लिए चल रही है कि सब बराबर हैं, या वही ज़ात-पात चले जिसका नाम वाजपेई, आडवानी और जोशी है। वह कहते हैं हिन्दुत्व, तो पूरा देश हिन्दू होगा, पूरे देश में हिन्दू सरकार होगी उसके लिए वे धीरे-धीरे काम कर रहे हैं, अल्लाह ने उनको असफल कर दिया अन्यथा आगे वह पता नहीं क्या करते। वह लड़ाई लड़ी जा रही है, भारत में इसी लिए लड़ी जा रही है कि सैक्युलरवाद रहे या हिन्दूवाद। इस लड़ाई में अल्लाह तआला ने आपकी सहायता की। हम हैदराबाद के लोगों को बधाई देते हैं और उन लोगों को बधाई देते हैं जिन्होंने इस व्यवस्था को पलटने में बड़ा योगदान दिया है। तो हमारी मौलिक समस्या यह है कि हम इस देश को क्या बनाना चाहते हैं? वे कहते हैं कि हिन्दू देश रहेगा, हम कहते हैं संयुक्त देश रहेगा। संविधान ने आपका साथ दिया है और संविधान ने जो अब तक काम किया है वह आपके समर्थन में किया है। वह चाहते हैं संविधान बदल जाये हम चाहते हैं कि संविधान न बदले, इस आधार पर समस्या का समाधान ढूँडना चाहिए। इस तरह की कुछ बाते हैं जिनको मौलिक रूप से छोड़कर सुलझी

समस्याओं में वोटों में मत पड़िये वह तो एक छोटी समस्या है। वोटों ने जो आप देखें क्या कर दिया, किसी ने कल्पना भी नहीं की थी जो हो गया। यह वोट की शक्ति से हुआ और एक-एक वोट बड़ा क़ीमती है। तो वोट में ताक़त बहुत है। इसलिए यह कहना कि वोट देना हराम है, अवैध है, घृणित है यह सब बेकार की बातें हैं। इस देश में हम बड़ी ताक़त हैं। जो लोग इसे हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते हैं उनके विरुद्ध लड़ने के लिए यह सबसे बड़ा हथियार है। इसलिए इस हथियार को नष्ट नहीं करना चाहिए। इन्हीं कुछ बातों के साथ मैं अपनी बातें समाप्त करता हूँ।

डा. सऊद आलम क़ासमी:

सज्जनों! एक तो यह निवेदन है कि जिन लोगों ने ग़ैर मुस्लिमों से मस्जिद के लिए चन्दा लेने के सम्बन्ध में सकारात्मक मत व्यक्त किया है वह कोई क़ुरआन व सुन्नत की दलील प्रस्तुत कर दें। हम तो पढ़ते हैं:

"وما كان للمشركين ان يعمروا مساجد الله شاهدين على انفسهم بالكفر"

''शिर्क करने वालों का यह काम नहीं कि वह मस्जिदों का निर्माण करें जब कि वह स्वयं अपने कुफ़्र की गवाही दे रहे हैं" या क़ुरआन व सुन्नत के अलावा सहाबा (रसूल के साथियों) से कोई ऐसी चीज़ मिलती है तो प्रस्तुत करें। दूसरा प्रश्न इस सम्बन्ध में यह है कि मुसलमानों को ग़ैर मुस्लिम आबादी में मिलकर रहना चाहिए या अपनी अलग आबादी बना लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध में हमें यह भी कहना चाहिए कि नबियों का जो मिशन है वह यह है कि अल्लाह ने भारत को हमें एक इनाम के रूप में दिया है कि अपना दीन (धर्म), ईमान, क़ुरआन और अपने रसूल की सुन्नत

उनके सामने प्रस्तुत कर सकें इस अवसर को हमें नष्ट नहीं करना चाहिए। मैं आपके सामने वह हदीस भी प्रस्तुत करना चाहता हूँ जिसमें अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया "वह मोमिन जो लोगों के साथ रहता है और उनकी तरफ़ से होने वाली पीड़ा पर सब्र करता है वह अच्छा है उस मोमिन से जो लोगों से मिल जुल कर नहीं रहता है और उनकी तरफ़ से आने वाली पीड़ा पर सब्र नहीं करता है" इस तरह की जो चीज़ें हमारे सामने हैं उसमें उम्मत का यह कर्त्तव्य है कि उसको प्रस्तुत करे। सकारात्मक भी और नकारात्मक भी। गै़र मुस्लिम बहुल बस्तियों में रहने के नतीजे में यदि वे सताये जायें या मारे जायेंगे तो उनका फै़सला क़यामत में (जब सब इकट्ठा होंगे) हज़रत ज़करिया (अलै0) और हज़रत ईसा (अलै0) के साथ होगा, अतः यह मत जिन लोगों ने दिया है कि गै़र मुस्लिम आबादी में रहना चाहिए और इस पर हमें यह भी बताना चाहिए कि दीन की दावत तर्क-वितर्क के साथ (हुज्जत पूरी करके) पहुंचाना हमारा कर्त्तव्य है, इसीलिए यह उम्मत खड़ी की गई है इसके बाद कोई दूसरी उम्मत नहीं आयेगी:

बे ख़बर तू जौहर-ए-आइना-ए-अय्याम है
तू ज़माने में ख़ुदा का आखिरी पैग़ाम है

(ऐ मुसलमानों तुम इतिहास के दर्पण की वास्तविकता से अनभिज्ञ हो चुके हो हालाँकि तुम अपने युग में अल्लाह के अन्तिम संदेश के वाहक हो)

तीसरी बात मुझे यह कहनी है कि ऐसा नहीं है कि भारत की सामाजिक समस्याओं में पाकिस्तान के उलमा के विचारों से हमें कोई बहुत

अधिक लाभ पहुँच सकता हो, मैं अपनी समझ के अनुसार कहता हूँ कि इसमें बहुत सी ग़लत फ़हमियाँ पैदा होंगी और इन ग़लत फ़हमियों के जन्म लेने का हमें अवसर नहीं देना चाहिए। ऐसी समस्यायें जो इस तरह की नहीं हैं हमारे समाज में अवश्य उनका विचार हमारे यहाँ महत्वपूर्ण हो सकता है। चुनाव के सम्बन्ध में हमारे यहाँ फिक़्ह अकेडमी का तरीक़ा रहा है कि ऐसी समस्याओं के विशेषज्ञों की आवश्यक संख्या हमारे यहाँ होती थी लेकिन अब वह नहीं है। संविधान, संसद, मताधिकार की समस्याएं और बहुत सी ऐसी बारीकियां हैं जिनमें हमें विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, जिनको उलमा नहीं कर पाते तो हम चाहते हैं कि इनसे भी हम लाभान्वित हों।

मौलाना मुहम्मद अरशद क़ासमीः

आदरणीय सभाध्यक्ष और उपस्थित सज्जनों! छोटे-छोटे प्रश्नों के बजाये सभी भागों पर आधारित एक प्रश्न रखना चाहूँगा, इसमें सन्देह नहीं कि इस्लामी व्यवस्था के अलावा तमाम अन्तर्राष्ट्रीय और स्वयं गढ़ी हुई शासन व्यवस्थाएं ग़लत हैं। तो मुसलमान जहाँ भी हों, शासन व्यवस्था के अधीन हों, चाहे राजशाही हो या प्रजातन्त्र हो या सैक्यूलर सरकार हो तो उन्हें चाहिए कि धर्म और राजनीति दोनों में अन्तर को निडर होकर प्रस्तुत करें। प्रजातन्त्र और राजशाही व्यवस्था इस्लामी शासन व्यवस्था से टकराती हैं। बद्र युद्ध के अतिरिक्त दूसरे युद्धों में रसूलुल्लाह (सल्ल०) झण्डे का प्रयोग किया करते थे लेकिन इसकी हैसियत मात्र झण्डे की थी, इसको आवश्यकता से अधिक आदर और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। लेकिन इस्लामी सेना का क़दम कभी नहीं रुका बल्कि दिन प्रतिदिन विभिन्न देशों

में अपना झण्डा ऊँचा किया करते थे। इसी प्रकार इस्राईली सरकार (अल्लाह की उस पर फटकार हो) की समस्या भी बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसकी तरफ़ मेरे गुरू जनाब बदरुल-क़ासमी, (अल्लाह उनकी रक्षा करे) ने ध्यान आकर्षित कराया। चूँकि इस सरकार की स्थापना अन्याय और बर्बरता के आधार पर हुई है अतः किसी मुसलमान का इनके साथ, इस्लाम की दावत या युद्ध और मार-काट के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं होना चाहिए। यही मेरा मत है।

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानीः

अल्लाह आपको अच्छा बदला दे। वास्तविक समस्या यह है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक सज्जन से पूछा कि ज्ञान किसे कहते हैं तो उन्होंने बताया "बुराई के मुकाबले भलाई को समझना" तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने उत्तर दिया कि यह कोई ज्ञान नहीं है। बुराई की तुलना में भलाई को हर व्यक्ति जानता है। "ज्ञान नाम है, जहाँ दो बुराइयाँ हों और उनसे बचना संभव न हो तो उन दोनों में कौन बुराई छोटी है" तो मुसलमान जिन समस्याओं को झेल रहे हैं और जिन राजनीतिक व्यवस्थाओं का सामना कर रहे हैं उनकी रोशनी में यह बात प्रस्तुत की जाती है कि प्रजातन्त्र तुलनात्मक रुप से इनके लिए अधिक उचित है।

डा. मसफ़र अल क़हतानीः

चर्चा के निचोड़ की समीक्षा करने में जो सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है वह यह कि समीक्षा करने वाले को चाहिए कि सबसे पहले उन नये हालात और घटनाओं का पूर्ण रूप से और बारीकी से पड़ताल करें, जिन्हें क़ानून के विशेषज्ञों की भाषा में, और किसी सीमा तक फ़क़ीहों की शब्दावली में

फ़िक़्ही दृष्टिकोण कहा जाता है। और इसमें किसी तरह की ख़राबी के कारण, उसके आदेशों पर उसका प्रभाव पड़ता है और यह बिगाड़ उस समय सामने आता है जब किसी समस्या के सम्बन्ध में ऐसी दलील प्रस्तुत की जाती है जो न केवल उसकी वास्तविकता और सार्थकता से बिलकुल अलग होती है बल्कि अधिकतर, खुले रूप में उनके बीच मेल-मिलाप संभव नहीं होता। इसलिए हमें समस्या की वास्तविकता को जानने का प्रयास करना चाहिए और किसी तरह के बाहरी प्रभाव से प्रभावित हुए बिना भली भाँति समझ लेना चाहिए, जिसके कारण समस्या की वास्तविकता को समझने के बाद उसके अनुसार उचित दलीलें प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे, जिनमें सन्देह के लिए कोई जगह नहीं होगी, और यह मामला मात्र, निष्कर्ष और तर्क देने तक ही सीमित नहीं है बल्कि नई समस्याओं के सिलसिले में फ़िक़्ही बारीकियों को निकालने में भी इस तरह के मामले देखने में आते हैं, बल्कि उलमा को भी चाहिए कि जब वह इस तरह के मामलों पर चर्चा करें तो इस तरह की दलीलों और सूक्ष्म परीक्षण के साथ ध्यान दिया करें।

दूसरी चीज़ जिसका सम्बन्ध इनमें से अधिकतर समस्याओं से हुआ करता है, वह इससे भी अधिक घातक है जो उलमा ने सिद्धान्त रूप से हितों के तीन प्रकार बताये हैं; पहला जो भरोसे योग्य हो, यह वह है, जो क़ुरआन व सुन्नत, इज्मा (सर्वसम्मति) और जो 'क़यास-ए-जली' (खुले अनुमान) के अनुसार हो, दूसरा जो भरोसा योग्य नहीं है, जिसकी कोई हैसियत नहीं और न जिसको तर्क बनाया जा सकता है, और न तर्क के रूप में उसे प्रयोग किया जा सकता हो, जो क़ुरआन व सुन्नत से टकराता हो और वह सर्वसम्मति (इज्मा) के विरुद्ध हो। तीसरा वह जिसे मसलेहत

मुरसला कहा जाता है जिसे न तो शरीअत ने ग़लत कहा और न ही उसे भरोसे योग्य समझा है। और वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की अधिकतर समस्याएं इसी प्रकार की मसलेहत मुरसला को दलील के रूप में प्रस्तुत कीं उन्होंने उसे पूर्ण तर्क के रूप में नहीं प्रस्तुत किया, जिसका न कोई नियम हो और न कोई सिद्धान्त हो। जिन्हें किसी को भी दलील के रूप में प्रयोग करने वाले, या मुज्तहिद (नई समस्याओं पर कुरआन व सुन्नत से निष्कर्ष निकालने वाला) को अपनाना अनिवार्य न हो और उनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि जिन समस्याओं के हितों को तलाश कर रहे हैं। उसका सम्बन्ध आवश्यकता से हो। दूसरी शर्त यह है कि हित मौलिक हों, न कि साधारण, अर्थात इसका लाभ सारे मुसलमानों को पहुॅच रहा हो न कि किसी विशेष वर्ग तक, जिनके हित सीमित हों और दूसरों को उनसे हानि हो रही हो। तीसरी बात यह है कि हित वास्तविक हों या कल्पित, जिसकी तरफ़ बुद्धिजीवियों ने ध्यान आकर्षित किया है और इन तीनों शर्तों का इमाम ग़ज़ाली ने भी उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त दूसरे फ़क़ीहों ने भी अपनी किताबों में लिखा है यहाँ तक कि इमाम शातबी ने मुज्तहिद के लिए दो शर्तें अनिवार्य ठहरायी हैं। पहली शर्तों यह है कि शरीअत के उद्देश्य को समझने में उसको पूर्णता प्राप्त हो। दूसरी शर्त यह है कि इसके अतिरिक्त उनके अन्दर इज्तिहाद की अन्य शतों जैसे किताब व सुन्नत का गहरा ज्ञान, और मत भेद की भी जानकारी होनी चाहिए। इस प्रकार के अच्छे विषयों पर मैं सभाओं में ज़ोर दिया करता हूँ; और मैं समझता हूँ कि भारत के उलमा की पूर्णता, जागरुकता, और विवेक चाहे वह फ़िक़्ह पर चर्चा हो अथवा राजनीतिक चर्चा हो या सामाजिक समस्याओं से उनका सम्बन्ध हो, पर

अच्छी दलील है।

मौ0 खालिद सैफ़ुल्लाह रहमानीः

सज्जनों! डा. मस्फ़र ने बहुत महत्वपूर्ण बिन्दू की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया है। मैं विशेष रूप से इसका उल्लेख इस लिए करता हूँ कि हज़रत क़ाज़ी साहब हमेशा इस पर बल देते थे कि न्याय व्यवस्था या समाज पर विचार करते हुए सैद्धान्तिक कार्य प्रणाली को सामने रखना चाहिए। केवल फ़िक़्ही अंशों पर सन्तुष्ट हो जाना हमारे लिए पर्याप्त नहीं होगा, इनके महत्व से इन्कार नहीं, तो मैं समझता हूँ कि मसलेहत मुर्सला और उसको समस्याओं पर चस्पा करने की जो चर्चा शेख मस्फ़र ने फरमायी है, वह बहुत महत्वपूर्ण है।

मौलाना जलालुद्दीन उमरीः

आदरणीय सभाध्यक्ष, सम्मानित उलमा! इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी जिस प्रकार की मौलिक और महत्वपूर्ण समस्या को छेड़ती रहती है उससे हम सब अवगत हैं। हममें से बहुतों नें इसके सेमीनारों में भी भाग लिया है, इस समय जो विषय चर्चा में है, मेरा विचार है कि वह बहुत ही महत्वपूर्ण और मौलिक है। वर्तमान परिस्थितियों से इनका बड़ा गहरा सम्बन्ध है, और इन पर मेरा विचार है कि हम में से बहुत से लोग सोचते रहते होंगे। यह एक मौलिक समस्या जिस पर कल से चर्चा चल रही है, बीच-बीच में भी आती रही है वह ग़ैर मुस्लिमों से सम्बन्ध की समस्या है। कल इस पर विस्तार से चर्चा हुई लेकिन आज भी अन्य उप-विषयों के अन्तर्गत इसका उल्लेख होता रहा। मेरा विचार है कि इसमें मौलिक बात जो देखने की है, वह यह है कि इस्लाम की कुछ मौलिक शिक्षाएं हैं और उसके विश्वास हैं

और वे मौलिक विचार है जिन पर पूरी इस्लामी शरीअत आधारित है। हमें इस बात का प्रयास करना होगा और देखना होगा कि इन सम्बन्धों में इस्लाम की मौलिक विचार धारा और उसके विश्वास और उसकी मौलिक शिक्षाएं प्रभावित न हों। यदि कहीं उनको हानि पहुँचती है या मौलिक शिक्षाएं प्रभावित होती हैं या उसके विश्वासों (Creeds) पर ठेस लगती है, तो स्पष्ट है कि हमें इससे बचना होगा।

यह बात इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि जिन देशों में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं जैसे भारत, जबकि 15 करोड़ मुसलमान यहाँ रहते हैं। लेकिन आदमी यदि यह देखे कि 110 करोड़ के बीच 15 करोड़ हैं तो उनका महत्व बढ़ जाता है। जहाँ भी वे अल्पसंयक होंगे किसी न किसी प्रकार बहुसंख्यकों का दबाव होगा। इसमें इस बात की संभावना है कि हम कुछ ऐसे क़दम उठा लें जो शरीअत के अनुकूल न हों या कम से कम शरीअत की प्रकृति के प्रतिकूल हों। इस लिए जब आदमी दबाव में किसी समस्या पर सोचता है तो इस प्रकार की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। यह दबाव आप जानते हैं कि राजनीतिक भी होता है और कभी-कभी सामाजिक भी होता है, और सम्बंधों का होता है, और कुछ अपनी कमियों का एहसास भी इसमें सम्मिलित होता है। इसी कारण समस्याओं की पड़ताल करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना होगा कि हमारी कोई चीज़, हमारा मौलिक सोच विचार, हमारी तौहीद का विश्वास, शिर्क से हमारी दूरी, रिसालत पर हमारा विश्वास, आख़िरत पर हमारा विश्वास और उसकी बुनियाद् सद्व्यवहार प्रभावित न हो। इसके बाद जो व्याख्यायें हों इनमें मतभेद हो सकता है और उस मतभेद को हमें सहन करना होगा। हाँ अकेडमी की

बहुसंख्या या मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड जैसी कोई संस्था, अगर कोई फ़ैसला करती है तो उसका सम्मान हमारा कर्त्तव्य होगा। लेकिन हर हाल में यह मानकर चलना होगा कि व्याख्या के अन्दर हमारे बीच मतभेद हो सकता है लेकिन उसकी मौलिक बातों को स्वीकार करते हुए।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहूँगा कि इस्लाम ने जो नैतिक शिक्षाएं दी हैं वे बिल्कुल सामान्य हैं। उनमें आप को कोई ऐसी बात नहीं मिलेगी जिससे समझा जाये कि यह केवल मुसलमानों के लिए ही है। उदाहरण स्वरूप क़ुरआन ने दयानत, अमानत, सतीत्व की रक्षा और सच्चाई, इस तरह की अनगिनत शिक्षाएं दी हैं और मुसलमानों को उनका पालन करना अनिवार्य बनाया है। हम सब जानते हैं कि इस मामले में मुस्लिम व ग़ैर मुस्लिम का कोई भेद नहीं है। अगर मुस्लिम बुराई करता है, चोरी करता है तो उसे भी दण्ड मिलेगा। ग़ैर मुसलमान करता है इस्लामी सरकार उसे भी सज़ा देगी। मैं इस फिक्ही चर्चा को नहीं छेड़ रहा हूँ कि ग़ैर मुस्लिम पर इन क़ानूनों का पालन अनिवार्य होगा या नहीं? लेकिन इस्लाम के अनुसार ये बुराइयाँ ग़ैर मुस्लिम के लिए भी अवैध हैं। इसी प्रकार मुसलमान यदि ग़ैर मुस्लिम से कोई मामला करे तो इस्लामी राज्य में वह इस्लामी नियमों का पाबन्द होगा। बल्कि इब्ने क़ुदामा कहते हैं कि कोई मुसलमान यदि किसी ग़ैर मुस्लिम देश में शरणार्थी बन कर जाये तो वहाँ भी वह धोखे की बात नहीं कर सकता, बहुत स्पष्ट लिखा है, इसलिए कि उन्होंने कहा है कि इस आधार पर उसे अनुमति मिली है कि वह वहाँ के क़ानून का उल्लंघन नहीं करेगा। और वहाँ धोखा नहीं देगा, तो स्पष्ट है कि जिस चीज़ की दूसरे देश में जाने के बाद भी अनुमति नहीं है तो अपने देश में इसकी अनुमति नहीं

दी जा सकती। इस्लाम की बहुत सी शिक्षाओं में आप देखेंगे कि मुसलमानों को उनमें सम्बोधित किया गया है "जैसे मुसलमान वह है जिसकी ज़बान और हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें," तो यह बात, मेरा विचार है कि मुसलमानों के समाज को सामने रखकर कही गई है। सम्बोधन मुसलमानों और मुस्लिम समाज से है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि ये बातें केवल मुसलमानों के लिए हैं, इसमें स्पष्ट है कि ग़ैर मुस्लिम भी आते हैं और उनके साथ भी हम उसी सुरक्षा का रवैया अपनायेंगें।

तीसरी बात यह है कि आप देखेंगे कि इस्लाम मुसलमानों के चरित्र को, नबी (सल्ल०) के चरित्र की तरह बनाना चाहता है। अत: मुसलमानों को चाहिए कि वह नबी (सल्ल०) के चरित्र को समझें क्योंकि यह उनके लिए आदर्श है। पवित्र क़ुरआन ने बिल्कुल प्रारम्भिक दौर में फ़रमाया:

"انک علی خلق عظیم"

''आप निस्सन्देह चरित्र की पराकाष्ठा पर हैं" और फ़रमाया:

"فقد لبثت فیکم عمراً من قبلہ افلا تعقلون"

''मै तुम्हारे बीच एक उम्र तक रहा, क्या तुम सोचते नहीं हो?"

अर्थात आपका चरित्र और आपका जीवन आदर्श इस बात की दलील था कि आप सच्चे हैं और अल्लाह के रसूल हैं, तो मुसलमानों का चरित्र जितना ऊँचा होगा, ग़ैर मुस्लिम समाज में स्वयं एक प्रमाण बन जायेगा। सबूत होगा इस बात का कि इस्लाम एक सच्चा दीन है, इस तरह हम उनके साथ जो व्यवहार करेंगे उसका हमें ध्यान रखना होगा। वे आयतें जिनका यहाँ हवाला दिया गया है: 'मुसलमान काफ़िरों को मित्र न बनायें:

"لا یتخذالمؤمنون الکافرون اولیاء"

इनसे सम्बन्ध न रखने की बात या उनसे मित्रता की मनाही की गई है। मेरा विचार है कि बुद्धिजीवी स्वयं इस पर सोचें। देखने की चीज़ यह है कि इन चीज़ों का उन निर्देशों से सम्बन्ध युद्ध की दशा में है या शान्ति की दशा में है?

यदि किसी देश से आप युद्ध की दशा में हैं तो उस समय जो आदेश आप लागू करेंगे वे बिल्कुल अलग होंगे, उससे, जो शान्ति की दशा में लागू करेंगे। पवित्र क़ुरआन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ईमान वाले ग़ैर मुस्लिमों के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे।

"لا ینھاکم اللہ عن اللذین لم یقاتلواکم فی الذین ولم یخرجواکم من دیارکم ان تبرواھم وتقسطوا الیھم"

अल्लाह इस बात से नहीं रोकता कि उनके साथ अच्छा व्यवहार करो जिन्होंने तुम से दीन की बुनियाद पर लड़ाई नहीं की और तुमको तुम्हारे घरों से नहीं निकाला, और यह कि उनके साथ न्याय करो। न्याय का अर्थ यह भी बताया गया है कि उनका हिस्सा उनको अदा करो। उनका हक़ उनको अदा करो, यह व्यवहार अपनाने को कहा गया है, फिर इसके बाद आगे फ़रमाया, अल्लाह उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करने से तुम्हें रोकता है, जिन्होंने तुम्हें मक्के से निकाला, तुम्हारे साथ अत्याचार किया, उनके साथ दूसरा व्यवहार होगा। इसलिए कि वे इस समय युद्ध की दशा में हैं, इनसे युद्ध चल रहा है, इन अपराधों के कारण। मेरा विचार है, कि इस तरह की जितनी आयते हैं उनको उसी पृष्ठभूमि में देखना होगा, तभी हम उसका सही अर्थ निर्धारित कर सकेंगे। इस सम्बन्ध में एक विशेष बात जिसकी तरफ बहुत से मित्रों ने ध्यान आकर्षित किया है, मैं चाहता हूँ कि मैं भी वे

दो शब्द कह लूँ। वह यह है कि यह उम्मत वास्तव में दावत देने वाली उम्मत है, इसे दावत का काम करना है, इस देश में भी और पूरी दुनिया में भी। "शहादत अलन्नास" लोगों पर गवाही का कर्त्तव्य पूरा करे, भलाई का आदेश दे और बुराई से रोकने का कार्य करे, यह उम्मत का कर्त्तव्य है और यह कर्त्तव्य उस पर लागू होता है, ग़ैर मुस्लिमों में रहकर, तो इसके अनुसार आप देखें, यदि आप जिसको संबोधित कर रहे हैं उसके साथ आपका व्यवहार ऐसा हो कि दावत के दरवाज़े बन्द हो जायें तो मानो, दावत की राह में आप रुकावट बने। आपका व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि वह महसूस करे कि इसे मुझसे सहानुभूति है और आप उसके शुभ चिन्तक हैं। पैग़म्बरों का एक स्पष्ट दिखने वाला गुण यह होता था कि वे उपदेश देने वाले थे और सच्चे होते थे और शुभ चिन्तक होते थे। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि हमारा स्वभाव उपदेश देने का होगा, भला चाहने का होगा तभी उनके दिल खुलेंगे। नबी (सल्ल०) के सम्बन्ध में फ़रमाया "ऐसा लगता है कि यदि वह ईमान न लायें तो आप जान दे देंगे" यदि यह स्थिति नहीं है तो निश्चित है कि दावत के दरवाज़े नहीं खुलेंगे।

यदि किसी व्यक्ति के बारे में मालूम हो कि वह आपका शुभ-चिन्तक नहीं है। उपरी दिल से आपसे मामला कर रहा है, आपकी मित्रता भी उन्हीं हितों से सम्बन्धित है। वह आपके इस बड़े सन्देश कि, अल्लाह के दीन को वह स्वीकार करे, आसान नहीं होगा। इसलिए इस दृष्टि को भी सामने रखना चाहिए और उपदेश देने वाला और सच्चा बन कर सामने आना होगा।

एक समस्या यहाँ चुनाव की बार-बार आई है, इस सम्बन्ध में मैं दो चार बातें कहना चाहूँगा। एक बात तो यह कि हममें से हर एक का विश्वास

है कि इन्सान के लिये क़ानून देने का अधिकार अल्लाह को ही है, इस्लाम अल्लाह का दीन है और किसी दूसरे व्यक्ति को अथवा किसी राष्ट्र को या किसी बिरादरी को या किसी उच्च वर्ग को या किसी पार्लियामेंट को क़ानून देने का अधिकार नहीं है। हमारे यहाँ क़ानून देने वाला वास्तव में अल्लाह है और यह बात क़ुरआन में बहुत सी आयतों में कही गई है, फ़िक़्ह में कही गई है। यहाँ तक कि फ़िक्ह और फ़िक़्ह के सिद्धान्तों में स्पष्ट कर दिया गया है कि नबी (सल्ल०) को भी असली क़ानून देने वाला नहीं माना जाता, बल्कि असली क़ानून देने वाला अल्लाह है और उसी को क़ानून बनाने का अधिकार है। अब आप यह देखिये कि आप ऐसे देश में रह रहे हैं (भारत हो या अमेरिका, ब्रिटेन हो या यूरोप का कोई भी देश) जहाँ अल्लाह का क़ानून लागू नहीं है, वहाँ अल्लाह क़ानून बनाने वाला नहीं माना जा रहा है। और न यह देखा जा रहा है कि किस मामले में अल्लाह का आदेश क्या है? बल्कि वे अपना क़ानून लागू कर रहे हैं। इसमें आपका क्या रवैया होगा? यह है वास्तविक प्रश्न। क्या ऐसा रवैया होगा जिसमें आप यह कहें कि हम इस क़ानून को नहीं मानते, तो उसके साथ दूसरी परेशानियाँ पैदा होंगी। नबी (सल्ल०) मक्का में थे वहाँ इस्लामी क़ानून लागू नहीं था लेकिन ग़ैर इस्लामी क़ानून के अन्तर्गत आपने जीवन व्यतीत किया और उसके साथ-साथ अल्लाह का दीन प्रस्तुत करते रहे। अब यहाँ चुनाव की स्थिति जब आती है तो उसमें केवल देखने की चीज़ है कि यह जानते हुए कि पार्लियामेंट को या किसी संस्था को क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है। वर्तमान स्थिति में हमारे लिए क्या बेहतर स्थिति होगी? जिसमें मुसलमानों का, अल्लाह के दीन का हित, जिस से अच्छी तरह हासिल हो सके। यह

समस्या है इसमें मत भिन्नता हो सकती है और इससे हमारी राहें खुलती हैं। मान लीजिए दावत की राह खुलती है; अपनी बात रखने के अवसर मिलते हैं, या हमारे हितों की सुरक्षा होती है, तो इसमें भाग लेने की एक सूरत निकल आती है। लेकिन इसके साथ-साथ अनिवार्य होगा कि आप यह वास्तविकता भी स्पष्ट करते रहें। केवल इसी को लक्ष्य न बना लें कि इस संसार में किसी मनुष्य को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि दूसरे मनुष्य पर राज करे। राज करने का अधिकार केवल अल्लाह को है, और यह कि इस संसार में किसी भी गिरोह या पार्टी को क़ानून बनाने का अधिकार हम देने के लिए तैयार नहीं हैं। और संसार में अत्याचार और दंगे हो रहे हैं उनका मौलिक कारण यही है। यह अत्याचार उसी समय मिटेगा, चाहे अमेरिका कर रहा हो या यूरोपीय देश अत्याचार कर रहे हों, या इस्राइल की तरफ़ से अत्याचार हो रहा हो, या कहीं भी अत्याचार हो रहा हो, यह इसी कारण है कि यहाँ अल्लाह तआला को क़ानून बनाने वाला नहीं माना गया, और उसके क़ानून का पालन नहीं हुआ अन्यथा न्याय हर जगह स्थापित हो सकता था। यह बात दुनिया के सामने कहने की आवश्यकता है।

एक बात बार-बार यहाँ छेड़ी गई है, वह यह कि अत्याचार के विरुद्ध बहुत से लोग काम करते हैं और बहुत से वर्गों पर अत्याचार हो रहा है। अब इनके लिए न्याय की आवाज़ उठाना मुसलमान का कर्त्तव्य है। नबी (सल्ल०) मक्के में जब दावत दे रहे थे। शायद 20-25 लोग मुसलमान थे लेकिन आप देखेंगे कि मक्की सूरतों में हर प्रकार के अन्याय को चुनौती दी गई है, बीस लोग हैं, हिजरत करते-करते उनकी गिनती डेढ़ सौ से अधिक हो गई थी, दो सौ हो गई थी लेकिन जिस समय यह सूरतें अवतरित हुईं

विशेषरूप से अन्तिम पारे की सूरत तो इसमें आप महसूस करेंगे कि मुसलमानों ने अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई:

"فلا اقتحم العقبة وما ادراک ما العقبة فک رقبة او اطعام فی یوم ذی مسغبة یتیماً ذا مقربة او مسکیناً ذا متربة"

मगर उसने कठिनाई भरी घाटी से गुज़रने की हिम्मत न की, तुम्हें क्या पता वह घाटी क्या है? किसी को दासता से मुक्ति दिलाना या भूखमरी की स्थिति में किसी रिश्तेदार अनाथ या मिट्टी में पड़े हुए को खाना खिलाना या किसी ग़रीब को खिलाना।

"کلا بلا تکرمون الیتیم ولا تحاضون علی طعام المسکین تاکلون تراث اکلا لماً وتحبون المال حباً حماً"

"हरगिज़ नहीं तुम अनाथ का आदर नहीं करते, और ग़रीबों को खाना खिलाने पर दूसरों को नहीं उकसाते हो और विरासत का सारा माल समेट कर खा जाते हो और माल से अधिक प्रेम रखते हो"

इन आयतों में किसको सम्बोधित किया जा रहा था। मुसलमान तो यह काम नहीं करते थे, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ थी और उसे चुनौती दी जा रही थी। यह तस्वीर मुसलमान की इस देश में उभरनी चाहिए कि वह अत्याचार के विरुद्ध है और न्याय का ध्वजा वाहक है। वहाँ तो दस-बीस आदमी मुसलमान थे, उस समय यह आवाज़ उठाई गई। आज जब हम यहाँ समझते हैं कि एक करोड़ की आबादी है तो क्या हम आवाज़ नहीं उठा सकते? न्याय करने वाले आप बनकर उठिये फिर देखिये दुनिया की तस्वीर भी बदल सकती है।

एक बात यह कही गई है कि क्या ग़ैर मुस्लिमों की सहायता भी ली

जा सकती है। मेरा विचार है कि इसकी गुंजाइश है और यह एक महत्वपूर्ण चीज़ है, नबी (सल्ल०) ने बाद में उसे याद भी किया है और दूसरे यह कि पवित्र क़ुरआन ने स्पष्ट रूप में कहा है कि:

"تعاونوا على البر والتقوى ولا تعاونوا على الاثم والعدوا"

''नेकी और अल्लाह से डर के कामों में सहयोग करो'' नेकी का वास्तविक अर्थ है अच्छा व्यवहार और अधिकारों का देना। यदि किसी के अधिकारों को छीना जा रहा है तो उसमें एक दूसरे का सहयोग हम करेंगे। अल्लाह से दुआ है कि इस सेमीनार में जो बातें और चर्चाएं छिड़ी हैं उनमें हम किसी सही नतीजें पर पहुँचे और लाभ दायक बातें हमारे सामने आयें।

मुफ़्ती अनवर अली:

प्रश्न संख्या-1 के भाग (अ) में एक विचार यह आया है कि कुछ ऐसी राजनीतिक पार्टियाँ हैं जो चुनाव में भाग लेती हैं उन्होंने खुल्लम खुल्ला इस्लाम और मुसलमानों का विरोध अपनी पार्टी का उद्देश्य बना लिया है। लेकिन कुछ प्रत्याशी स्वयं अच्छी आदत के हों और मुसलमानों के साथ उनका व्यवहार अच्छा हो, तो क्या मुसलमानों के लिए इनकी पार्टी की विचारधारा से अलग होकर व्यक्तियों के व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर उन्हें मतदान करना वैध होगा? इस प्रश्न के उत्तर में एक मत सुल्तान अहमद इस्लाही का आया है, उन्होंने ऐसी पार्टी को मतदान करने की वैधता का एक कथन नक़ल किया है, मेरा विचार है कि यह मत सामान्य मुसलमानों के लिए अत्यन्त अनुचित है और मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ, मौलाना अफ़ज़ालुल हक़ जौहर क़ासमी ने मतदान के बारे में जो अपना

विचार अभी कुछ देर पहले प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त मूल्यवान है। भारत में मुसलमानों को वोट का महत्व समझना चाहिए। वोट के हराम या मकरूह (घृणित) होने का फ़तवा हमारी दशा को देखते हुए बिल्कुल अनुचित है।

मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा नदवीः

मिली जुली आबादी में मुसलमानों के बसने के सम्बन्ध में एक मत यह है कि जहाँ मुस्लिम आबादी है उसके स्थानान्तरण की अनुमति न दी जाये। इसलिए कि साधारण अवस्था में इसकी अवश्यकता नहीं पड़ती है, हाँ यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये कि सतीत्व और सम्मान पर आँच आये या उनकी जान व माल की रक्षा कठिन हो जाये या दीन की रक्षा असंभव हो जाये तो उस समय अनिवार्य है कि वहाँ से प्रवास कर जायें। लेकिन यह अनिवार्य है कि कोई मनुष्य नया घर बनाना चाहता हो तो ऐसी दशा में ग़ैर मुस्लिम आबादी के अन्दर अपना मकान न बनाये, यह उचित होगा। दूसरी बात यह है कि त्यौहार के सम्बन्ध में जो विचार आया था कि धार्मिक त्यौहार या अधार्मिक त्यौहार, तो धार्मिक त्यौहार के सम्बन्ध में लगभग इतना है, अधार्मिक त्यौहार की जो बात जिन लोगों ने की है शायद वह उचित न हो, अधार्मिक त्यौहार को दो भागों में बांटा जाना चाहिए, कुछ वे समारोह हैं जैसे शादी ब्याह और इस प्रकार के समारोह। इन समारोहों के सम्बन्ध में, भेंट स्वीकार करना उसमें भाग लेना तो इसमें कोई बुराई नहीं है। जिसको हम कह सकते हैं कि यह कभी-कभी होते हैं, लेकिन वे समारोह, यद्यपि वे धार्मिक तो नहीं है लेकिन वे कभी-कभी नहीं बल्कि लगातार वर्ष भर चलते रहते हैं, हमारे विचार में इस प्रकार के त्यौहार जो उनके यहाँ रीति बन चुके हैं जिसे वे पूरे साल करते रहते हैं उनका उपहार स्वीकार करना

वैध नहीं होना चाहिए, क्योंकि यदि हम उपहार स्वीकार करते हैं तो इस दशा में मानों हम दूसरे शब्दों में उनका उत्साह बढ़ा रहे हैं। मानो हम कहते हैं कि जो कुछ तुम कर रहे हो, सही कर रहे हो, मानो एक तरह से आप उसपर सहमत हैं, और ग़ैर इस्लामी त्यौहार पर सहमति प्रकट करना भी उचित नहीं है। इसलिए कि यह भी एक पाप है जो पाप में सहयोग के अन्तर्गत आता है। दूसरी बात यह कहनी है कि धार्मिक त्यौहार के सम्बन्ध में जो उनके प्रसाद या इस तरह की भेंट हैं, निश्चित तौर पर उनका स्वीकार करना अवैध है, हाँ एक स्थिति में स्वीकार करना वैध हो सकता है, वह यह है कि यदि कोई आदमी परेशान हो और परेशानी की हालत में मरने के निकट हो ऐसी ही स्थिति में स्वीकार करना वैध होना चाहिए, साधारण स्थितियों में वैध नहीं होगा।

मौलाना अतीक़ अहमद क़ासमीः

ग़ैर मुस्लिम देशों में आबाद मुसलमानों की कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं का विषय बहुत महत्वपूर्ण और प्रश्नों का निचोड़ है, और आप जो भी फ़ैसला करेंगे या जो भी सन्देश यहाँ से जायेगा, उसका दायरा केवल भारत नहीं होगा। इस बात को आप ध्यान में रखें, जैसा कि आप अवगत हैं कि मुसलमानों की कम से कम आबादी 50 प्रतिशत और कुछ लोगों का विश्लेषण 60 प्रतिशत है उन देशों में आबाद है जहाँ वे अल्पसंख्यक हैं। स्वयं भारत को आप लीजिए। यहाँ जो आबादी मुसलमानों की है 15-20 करोड़ तक, यह आबादी इतनी असाधारण है कि बहुत से इस्लामी देशों को आप समेट लीजिए और एकत्र कर लीजिए तब भी इतनी बड़ी संख्या नहीं बनती। इसके अतिरिक्त विश्व का कोई देश ऐसा नहीं जहाँ मुसलमान

आबाद न हों चाहे वह अमेरिका व यूरोप के देश हों, हर महाद्वीप और हर देश में मुसलमानों की आबादियाँ हैं जहाँ वे अल्पसंख्यक होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनकी उन देशों मं सक्रीय भूमिका है। आप जो फ़ैसला करेंगे उसका सम्बन्ध केवल भारत से नहीं होगा बल्कि जहाँ-जहाँ मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं चाहे वह अमेरिका, यूरोप, एशिया या आस्ट्रेलिया हो, सबसे इस समस्या का सम्बन्ध होगा और जो आदेश आप देंगे उससे उनका सम्बन्ध होगा। ये समस्यायें गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं। मान लीजिए चुनाव की राजनीति की बात हो, उसमें भाग लेने न लेने की बात हो, बहुत सी मौलिक और लम्बे समय तक प्रभाव डालने वाली समस्याएं हैं। कोई फ़तवा, कोई फ़ैसला यदि यहाँ से जाता है जो उम्मत और इस्लाम के हित में न हो, यदि कोई ऐसा विचार जाता है जिसके आधार पर मुसलमान असाधारण कठिनाइयों में फँस जायें। यह बड़ी परीक्षा की घड़ी होगी। हम सबको इस समस्या के सभी पहलुओं पर विचार करके जिन बिन्दुओं पर चर्चा हो उनपर ध्यान पूर्वक विचार करके हमें कोई निर्णय लेना होगा, और मैं समझता हूँ कि यह विषय एक-डेढ़ साल पहले भेजा गया था। लोगों ने लेख लिखे, चर्चाएं कीं, एक समय बीत जाने के कारण कुछ बातें ध्यान से ओझल सी हो गईं। हम मस्तिष्क पर फिर से ज़ोर डालें और इस विषय के जो विभिन्न बिन्दू हैं उन पर वार्ता करें। मुसलमानों की आबादी अलग हो या मिली जुली हो, स्पष्ट है कि इसमें जो भी मत आप व्यक्त करेंगे वह चाहे फ़ैसला हो या फ़तवा या अनुमोदन उस पर दोनों के प्रभाव पड़ेंगे और दोनों पहलुओं को आपको ध्यान में रखना होगा। एक पहलू तो यह कि ग़ैर मुस्लिम मुहल्लों में जो मुसलमान आबाद हैं और उनकी संख्या बहुत कम है उनमें यदि दीनी

जागरुकता नहीं है, अपने विश्वास व ईमान और दीनी पहचान सुरक्षित रखने की भावना न रही, अपना पाठ्य क्रम न हो, मदरसे न हों, तो इसका बड़ा ख़तरा है कि मात्र दीनी अमल में कमी बल्कि विश्वास की हद तक हमारे बच्चे ख़तरे में पड़ जायेंगे और उनका दीन व ईमान खतरे में पड़ जायेगा। दूसरी तरफ़ यह पहलू भी है, कि यदि मुसलमान ग़ैर मुस्लिमों के साथ रहते हैं, वे पक्के मुसलमान हैं उनका चरित्र इस्लामी चरित्र हो तो उनके यहाँ रहने और उनके नैतिकता और व्यवहार से इस्लाम की दावत की राहें खुलती हैं। यह अवसर उपलब्ध होते हुए हम अपने ग़ैर मुस्लिम भाइयों तक इस सन्देश को पहुँचायेंगे जिस सन्देश को पहुंचाने के लिए हम भेजे गये हैं। दोनों पहलुओं की तुलना व विश्लेषण करते हुए हमें कोई बीच का फ़ैसला करना है जो कुल मिलाकर उम्मत, इस्लाम और स्वयं इस देश के लिए लाभदायक हो। बहर हाल विषय बहुत महत्वपूर्ण है। जो कमेटी इस पर प्रस्ताव संकलित करे। जो चार प्रश्न उठाये गये थे और उनके चार-चार भाग थे उनमें तीन भागों की "समस्या प्रस्तुति बयान हो चुकी है" जो चौथा प्रश्न है उसके सिलसिले में दो 'समस्या प्रस्तुति' प्रस्तुत करना शेष है। इस समय सबसे पहले मैं चाहूँगा कि वह भी आपके सामने प्रस्तुत कर दिया जाये, उसके बाद बात चीत और चर्चा का सिलसिला शुरू किया जाये।

हम अपने आदरणीय मेहमान जनाब मुहम्मद ग़फ़्फ़ार शरीफ़ को दिल की गहराइयों से धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हितों को देखते हुए इस्लामी फ़िक्ह में तज्दीद (नवीनीकरण) के विषय पर बहुमूल्य बिन्दुओं पर आधारित अच्छा शोध प्रस्तुत किया। अब हमारे आदरणीय मित्र जनाब बद्र क़ासमी साहब इस पर एक संक्षिप्त टिप्पणी

करेंगे। फिर उसके बाद इस विषय पर चर्चा होगी।

मौलाना बदरुल हसन क़ासमीः

मैं अपने भाई डा. मुहम्मद ग़फ़्फ़ार शरीफ़ को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस विषय पर मूल्यवान विचार व्यक्त किया जिसकी मुसलमानों को अत्यन्त आवश्यकता है, और उम्मत की कठिनाइयों और समस्याओं पर प्रकाश डाला। वास्तविकता यह है कि यह विषय जिसपर हमारे आदरणीय मेहमान विचार प्रकट कर रहे थे वह बहुत ही सम्पूर्ण विषय है, जिसमें उन्होंने फ़िक्हुन्नवाज़िल में इज्तिहाद के बिन्दुओं को प्रस्तुत किया, शब्द इज्तिहाद का भारतीय उलमा की दृष्टि में एक विशेष भाव है। जब वह इन जैसे विषयों पर विचार प्रकट करते हैं। तो अत्यन्त सावधानी और बचकर बात करते हैं। आदरणीय मेहमान की बातों और भारतीय उलमा के विचारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि इज्तिहाद वास्तव में उन समस्याओं के समाधान का नाम है जो समस्या के रूप में सामने आते रहते हैं और इतिहास के हर दौर में इस बात का प्रयास होता रहा है। और धर्म में ऐसे उलमा व विद्वान पैदा हुए जिन्होंने इज्तिहाद का सहारा लिया। अपने विचार प्रकट किये और अपने समय की नई-नई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। आपने अपने भाषण में खुले दिल से विभिन्न पहलुओं को सम्मिलित किया। जैसे आसानियां पैदा करने के नियम, मस्लेहत लाने वाले नियम और बुराई से बचने के उपायों का उल्लेख किया। हर तरह के मतभेद से दूर होकर दूसरे मतों जैसे ज़ैदीया, शीया इत्यादि की किताबों और उनकी विशेष दलीलों का भी उल्लेख किया। और यह केवल इसलिए कि मुसलमानों के बीच एकता पैदा की जाये और यह एक महत्वपूर्ण चीज़ है। यहाँ मैं साधारण

रूप से चर्चा की विधि पर संक्षेप में बात करना चाहता हूँ इसलिए कि हम लोग इन जैसी छोटी आंशिक समस्याओं में इज्तिहाद में भी सहमति पर बल देते हैं, और निस्संदेह यह एक संवेदनशील विषय है। उन्होंने साथ में अपना यह विचार भी प्रकट किया कि फ़ुक़्हा ने यह नियम बनाया है कि सर्व सम्मति वाले मामले में मतभेद होते हैं, और चार दशाओं में मतभेद उत्पन्न होने की संभावना है। मेरे विचार में ये दशाएं शोध और अध्ययन की साधारण विधि से बहुत हद तक समरूप नहीं हैं। आपने बहुत हद तक इस बात का प्रयास किया कि विस्तृत दशाओं में कुछ कट्टरता मसलक वालों और अपने विचारों पर कट्टरता के साथ जमें रहने वालों के बीच विचारों में भी सामंजस्य स्थापित किया जाये। इसमें कोई हानि नहीं कि न्यायधीश उनके विचारों के अनुसार फैसला दें जैसे हनफ़ी और शाफ़ई उलमा के मतानुसार नबीज़ (शराब की एक प्रकार) पीने वाले को दण्डित करने की समस्या, तो न्यायधीश को चाहिए कि उनके मसलक के अनुसार फ़ैसला दें लेकिन इन तमाम चीज़ों में वही बात अनिवार्यतः हमारे सामने आ जाती है जिससे हम बचना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त दो चीज़ें विचार योग्य हैं; पहली बात तो यह है कि इस प्रकार की आंशिक चर्चाएं फ़िक़्ह की किताबों में मौजूद हैं चाहे वह हन्फ़ी मसलक की हों, शाफ़ई की हों या मालिकी की हों। इस तरह की आंशिक चर्चायें उन किताबों में मौजूद हैं जिनका उल्लेख सामंजस्य स्थापित करने वाली बहसों में कम किया जाता है बल्कि उन्हें फ़क़ीहों की दृष्टि में मौजूद विभिन्न उलमा के कथन (आसार) की एक क़िस्म समझी जाती है। नबीज़ का उल्लेख जब अरब के माहौल की पृष्ठिभूमि में किया जाता है तो

उससे केवल शराब समझी जाती है क्योंकि सहाबा, के बीच भी इसमें काफ़ी मतभेद था। यही सन्देह सामने आया कि नबीज़ आम बोल-चाल में शराब ही को कहा जाता था, लेकिन यही समस्या जब विभिन्न किताबों में मुसन्निफ़ इब्ने शैबा और इमाम सरखशी की अल-मबसूत में वजू के सम्बन्ध में बयान की जाती है तो वह नबीज़ ही समझा जाता है क्योंकि सहाबा जैसे हज़रत इब्ने अब्बास और हज़रत उमर (रज़ि0) और दूसरे आदरणीय सहाबा नबीज़ का प्रयोग किया करते थे, तो वहाँ किसी ने नशा पैदा करने वाली शराब का अर्थ नहीं लिया है। तो इस क़िस्म की शब्दावलियों से कभी-कभी विशेष रूप से हनफ़ी मसलक में दूसरी आंशिक चर्चाएं निकल आती हैं। इसलिए आपका यह पहलू एक हद तक शोध चाहता है, फिर भी सामूहिक रूप से उनका विचार बहुत अच्छा मूल्यवान और शोध पर आधारित है, मैने स्वयं इससे लाभ उठाया है क्योंकि उन्होंने अपने भाषण के बीच 'मवालात (सहयोग) विला (अभिभावक) बनाना बराअ् (सम्बन्ध तोड़ लेना) जैसे प्रश्नों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण और सूक्ष्म बिन्दुओं का उल्लेख किया है और मवालात का अर्थ क्या है? और मुसलमानों को उन शोधों की आवश्यकता है विला,बराअ और मवालात जायज़, मवालात बिल-ग़ैर जायज़ और मवालात हराम क्या हैं?

इसमें संदेह नहीं कि यह अत्यन्त अच्छी और नये क्षितिज को खोलने वाली चीज़ है। इसीलिए उन्होंने इन मतभेदों पर प्रकाश डाला, जिन्हें आजकल के भावुक नौजवान, चार मसलकों के सम्बन्ध में अधिकतर उछाला करते हैं कि जब रसूलुल्लाह (सल्ल०) का एक दीन मौजूद है तो इन मसलकों की क्या आवश्यकता है जो कि बिल्कुल ही अज्ञानता की बातें

करते हैं क्योंकि हम आज भी विभिन्न देशों जिनमें कुवैत भी सम्मिलित है, वहाँ के जवानों को देखते हैं कि कुछ उनमें दोनों हाथ उठाते हैं (रफ़अ यदैन) और कुछ नहीं उठाते हैं। इस तरह के मतभेद तो इस दौर में भी हो रहे हैं। एक ही समस्या में शेख अब्दुल अज़ीज इब्ने बाज़ भूतपूर्व सर्वोच्च मुफ़्ती सऊदी अरब का मत कुछ और, शेख अलबानी का मत कुछ और होता है। एक ही चीज़ को एक सुन्नत कहते हैं और दूसरे बिद्अत (नई बातें प्रारम्भ करना) कहते हैं तो जब हमारे इस दौर में भी इस तरह के मतभेद पाये जाते हैं तो चारों इमाम या उनके अतिरिक्त दूसरे आदरणीय इमामों पर आरोप लगाना उचित नहीं। अल्लाह डा. मुहम्मद ग़फ्फर शरीफ़ को अच्छा बदला दे कि उन्होंने इस बिन्दू पर भरपूर और विस्तार से चर्चा की और उसकी आंशिक चर्चाओं को भी नहीं छोड़ा, मैं उनको दिल की गहराइयों से धन्यवाद देता हूँ।

मौलाना ज़ुबैर अहमद क़ासमी:

मुस्लिम, ग़ैर मुस्लिम सम्बन्धों के दायरे के बारे में मैं कहना चाहता हूँ कि इस सम्बन्ध में हमारे सामने कुरआन व सुन्नत की एक दलील मौजूद है।

"لا یتخذالمؤ منون الکافرین اولیاء من دون المؤمنین ومن یفعل ذالک فلیس من اللہ من شیئٍ الا عن تتقوا منھم تقاۃ"

मुसलमान काफ़िरों को मोमिनों के बजाये दोस्त न बनाएं, और जो व्यक्ति ऐसा करता है तो अल्लाह से उसका कोई लेन देन नहीं मगर यह कि तुमको उनसे कोई डर और प्रबल सन्देह हो। इस आयत और नबी (सल्ल०) की दूसरी हदीसों की रोशनी में ग़ैर मुस्लिमों के साथ सम्बन्धों

के आदेश सरलता से मालूम हो जाते हैं। हज़रत थानवी ने आयत का अनुवाद इस तरह किया है कि मुसलमानों को खुले या छिपे तौर पर काफ़िरों को दोस्त नहीं बनाना चाहिए। शब्द "تتقوامنهم تقاة" तुमको उनसे डर और प्रबल सन्देह से तात्पर्य ऐसा डर है जो वास्तविक हो, कोई कल्पना न हो। उपरोक्त आयत का हानि से बचना उद्देश्य है,। इसलिए केवल दिखावटी दोस्ती की अनुमति है, वास्तविक दोस्ती वैध नहीं है। अब अच्छा व्यवहार अर्थात आतिथ्य सत्कार हानि से बचने के लिए हो या मेहमान के सत्कार के तौर पर हो, दुख और ग़रीबों की स्थिति में आर्थिक सहायता करना और नेकी और एहसान जो युद्धरत न हो उसके साथ वैध और जो (मुसलमानों के विरुद्ध) युद्धरत हों उसके साथ अवैध है। सूरः मुम्तहिना की आयत "अल्लाह तुमको नहीं रोकता उनके साथ नेकी से जिन्होंने तुम से लड़ाई नहीं........" में इस बात को स्पष्ट किया गया है। इस कुरआनी आदेश के बाद अब आवश्यकता नहीं है कि ग़ैर मुस्लिम सम्बन्धों के हर अंश को चर्चा का विषय बनाकर समय नष्ट किया जाये। ग़ैर मुस्लिमों से सम्बन्ध की हर वह क़िस्म जो दीन में ख़ुशामद और मेल मिलाप के वे रूप जो दीन व ईमानी सम्मान के विरुद्ध हों, या किसी भी ग़ैर इस्लामी या कुफ़्र व शिर्क के आदर और मर्यादित करने का कारण बने उसे किसी भी तरह वैध नहीं कहा जा सकता।

मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवी:

धन्यवाद! मौलाना ज़ुबैर साहब आपकी बात सैद्धान्तिक और मौलिक है। बहर हाल सिद्धान्त निर्धारित करने के बावजूद आंशिक बातों से सामंजस्य बहुत आवश्यक है। जो नये प्रश्न आयेंगे उनसे सामंजस्य उन्हीं सिद्धान्तों के

अन्तर्गत स्थापित करना होगा और इसी लिए हम बैठे हैं।

मुफ़्ती नज़ीर अहमद कश्मीरीः

कल की समस्या प्रस्तुति में झण्डे की सलामी का प्रश्न भी था, इस सिलसिले में एक बिन्दू सदैव विचार योग्य होना चाहिए कि झण्डा किसी राष्ट्र में पूज्य जैसा है या नहीं? शायद अधिकतर दशाओं में दुनिया में कोई भी क़ौम झण्डे को पूज्य नहीं समझती, फिर यह सलामी देने की समस्या मात्र झण्डे तक सीमित नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त भी आदर के विभिन्न प्रकार हैं, जो नये युग में पाये जाते हैं। जैसे किसी का देहान्त होता है तो 21 तोपों की सलामी दी जाती है, और किसी व्यक्ति की मौत पर कुछ मिनट का मौन रखा जाता है मानों ये नये युग में आदर व्यक्त करने के तरीक़े हैं, इसलिए झण्डे की सलामी को तो शिर्क (अिनेकश्वरवाद) की श्रेणी में सम्मिलित करना वास्तव में अनगिनत मुसलमानों को कठिनाई में डालना है। जो मुसलमान विदेशों में काम कर रहे हैं वे अगर झण्डे की सलामी से बचेंगे तो उनके लिए अपनी नौकरी को बचाना कठिन होगा। यह तो एक बिन्दू था, दूसरी बात मुझे यह प्रस्तुत करना है कि मतदान वकालत है अथवा शहादत (गवाही) है। यह निश्चित तौर पर अकेडमिक विचार है लेकिन साथ-साथ उम्मत की दशा को सामने रखना अनिवार्य है, मात्र दृष्टिकोण पर वार्ता करना काफी नहीं। अमली तौर पर यह भी आवश्यक है, जब कि यह महसूस किया जा रहा है कि मतदान के फलस्वरूप स्थिति बदल गई है।

दूसरी तरफ़ हममें से कोई व्यक्ति यह विचार रखता है कि मतदान नहीं करना चाहिए क्योंकि वह ग़ैर मुस्लिम है, और लोकतन्त्र ग़ैर इस्लामी

चीज़ है तो यह प्रश्न नहीं है कि लोकतन्त्र इस्लामी है अथवा ग़ैर इस्लामी है? प्रश्न यह है कि वर्तमान प्रजातन्त्र में हम चुनाव में भाग लें या न लें? इस तरह की बात कभी नहीं सोची जानी चाहिए कि उम्मत को चुनाव से रोकने का किसी भी नीचे से नीचे स्तर का प्रयास नहीं करना चाहिए। हाँ रही अनिवार्य कहने की बात तो अनिवार्य कहना भी इतना कठिन है, इसलिए कि अनिवार्य कहने के लिए जिस स्तर के तर्क की आवश्यकता है शायद मतदान करने के लिए उस स्तर का तर्क मिलना बहुत कठिन है, हाँ यह उसी अवस्था में है जब वोट को गवाही की श्रेणी में रखा जाये। लेकिन यह स्पष्ट है कि मतदान को ग़ैर मुस्लिम देशों में भी ग़ैर मुस्लिम के पक्ष में गवाही का अर्थ लिया जाना कठिन है, जैसा कि फ़िक़्ही लेखों में कुछ लेखक जिनमें मौलाना बुरहानुद्दीन और दूसरे उलमा हैं, जिनका मानना है कि यह मुस्लिम देशों के लिए हो सकता है, ग़ैर मुस्लिम देशों के लिए नहीं। गवाही हो या वकालत मतदान से बचने का प्रस्ताव बिलकुल नहीं होना चाहिए इसके बहुत हानिकारक प्रभाव होंगे।

मौलाना बदरुल हसन क़ासमीः

मौलाना ने जो प्रश्न उठाया है, इससे पहले कई बुज़ुर्गों ने इस प्रकार की बात लिखी है कि अनिवार्य कहने के लिए ठोस दलील चाहिए। सिद्धान्तः यह बात है कि किसी चीज़ को व्यक्ति अपनी तरफ़ से अनिवार्य नहीं ठहरा सकता। यहाँ दलील होने और न होने का प्रश्न नहीं है प्रश्न यह है कि हम मतदान क्यों करते हैं? हम चुनाव में भाग क्यों लेते हैं? अगर मुसलमान किसी राज्य या देश में यह महसूस करते हैं कि यदि हम मतदान

में भाग न लें तो मुसलमानों की जान माल सुरक्षित नहीं रहेगी तो केवल हानि से बचने के लिए या बुराई से बचने के लिए जिस स्तर का ख़तरा होगा उसी स्तर के आदेश होंगे कि यह अनिवार्य है, सुन्नत है, घृणित है, या हराम है? लेकिन इसको इससे ज़ोड़ना कि कुरआन में प्रमाण हो या अनिवार्यता के लिए कोई स्पष्ट हदीस या दलील हो, मैं नहीं समझता कि इसका दोनों प्रश्नों से जोड़ क्या है? जब हम किसी लोकतांत्रिक देश में चुनाव में भाग लेने की समस्या को उठाते हैं तो इस आधार पर नहीं कि अल्लाह ने हमें आदेश दिया है कि तुम वहाँ जाकर चुनाव करो और उसमें भाग लिया करो। हमारे यहाँ तो समस्या केवल यह है कि भारत जैसे देश में हम अल्पसंख्यक हैं और हमारी सुरक्षा के लिए संभावित रूप से 900 मिलियन हिन्दू और ईसाई और दूसरे लोगों के बीच में जो रास्ते हो सकते थे वे केवल यह कि हम यहां लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लें ताकि संसद हमारे वोट से वंचित न रहे। अब हमारे लिए अनुचित या अनिवार्य है तो इसी स्तर का आदेश होगा। वोटिंग के लिए भी। अगर भाग न लेने से मुसलमानों की जान व माल सुरक्षित रहते हैं तो भाग लेने की आवश्यकता नहीं है हालाँकि आप भाग इसलिए लेते हैं कि मुसलमानों की जान व माल की सुरक्षा उससे जुड़ी हुई है। मैं समझता हूँ कि हमारे सम्मानित उलमा को इस पहलू से सोचना चाहिए कि चुनाव में भाग न लेने से किस स्तर का ख़तरा है इसके अनुसार यह निर्धारित करें कि यह हराम है, अनिवार्य है या घृणित है या शरअी आदेश की जो अन्य श्रेणियाँ (दर्जे) हैं।

मौलाना अख़्तर इमाम आदिलः

मैं अपने लेख में प्रत्याशी (उम्मीदवार) के रूप में भाग लेने की तीन

दशाएं बयान करुंगा, जायज़ (वैध) ना जायज़ (अवैध) वाजिब (अनिवार्य)। और मतदान करने वाले की हैसियत से भी चार क़िस्में हैं; जिसमें एक क़िस्म वाजिब (अनिवार्य) और तीन क़िस्मों को हलात पर निर्भर रखा है। झण्डे की सलामी के सम्बन्ध में जो बात मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह साहब से जोड़ी जाती है जिसकी कोई दलील नहीं बयान की जाती है, इसकी तुलना में जो बात हज़रत थानवी और दूसरे बड़े लोगों से जोड़ी जाती है वह दलीलों से भरपूर है और वह झण्डे के बारे में कल जो मौलाना बद्र साहब ने बात कही और दूसरे लोगों ने भी लिखा है कि युद्ध में इस्लामी झण्डे को बहुत आदर और सम्मान इस्लामी ज़माने में भी मिलता है, वास्तव में फ़ुक़हा की इस बात को सामने रखना चाहिए कि फ़ुक़हा के अनुसार किसी के लिए आदर के रूप में खड़ा होना हराम नहीं है यदि वह व्यक्ति आदर योग्य हो तो उसके सम्मान में खड़े होना मात्र वैध ही नहीं बल्कि पसन्दीदा है।

प्रश्न यह है कि जिन रिवायतों को हम प्रस्तुत करते हैं वह इस्लामी झण्डे से सम्बन्धित हैं, हज़रत थानवी ने स्पष्ट किया है कि जो ग़ैर इस्लामी झण्डे हैं ग़ैर मुस्लिम देशों के झण्डे हैं उनके लिए हम इन रिवायतों को किस तरह लागू कर सकते हैं। जहाँ तक इसका प्रश्न है वास्तव में हम उसको पूजा नहीं कहते हैं कि यह शिर्क है, लेकिन कम से कम अवैधता की श्रेणी में अवश्य आता है। जो कोई आदर योग्य न हो या किसी ऐसी चीज़ के सम्मान के लिए खड़ा होना जो सम्मान योग्य न हो उसके लिए हम खड़ें हों और उसका आदर करें, इस पर हमें विचार करना चाहिए। हम यह नहीं कहते हैं कि शिर्क है या उसकी पूजा के लिए हम खड़े हो रहे

हैं, यह एक मूर्ति है या नहीं इस दौर में हमें इसको सोचना है। दूसरी बात यह है कि कल मौलाना सऊद आलम साहब ने मस्जिदों एवं मदरसों के लिए ग़ैर मुस्लिमों से चन्दा लेने की स्थिति में कोई दलील मौजूद है या नहीं, के सम्बन्ध में बात कही थी। मुश्रिकों ने जो अल्लाह के घर काबा का निर्माण किया था निश्चित रूप से वे मुश्रिक थे, उन्होंने पवित्र कमाई से उसका निर्माण किया। हुज़ूर (सल्ल०) ने उस निर्माण को बाक़ी रखा और उसको मस्जिद के लिए स्वीकार किया। तो हमारे लिए एक आधार मौजूद है कि सहायता ले सकते हैं।

मौलाना बदरुल हसन क़ासमी:

मौलाना अख़्तर इमाम आदिल ने मेरी तरफ़ जो बातें जोड़ी हैं कि झण्डे का सम्मान मुसलमानों के प्रारम्भिक युग में पाया जाता था। मैने खड़े होने और बैठने का कोई प्रश्न ही नहीं छेड़ा। यहाँ भी जो बुनियादी चीज़ सोचने की है वह किसी भी देश में, चाहे भारत हो या कोई ग़ैर इस्लामी देश हो, हर व्यक्ति को उस पर मजबूर नहीं किया जाता है कि वे झण्डे को सलामी दे, या खड़ा हो यह साधारण आदेश नहीं है मात्र वह लोग जो मंत्री मण्डल में हों या कहीं झण्डा उठाया जा रहा हो तो आप खड़े रहें। मैने केवल यह उल्लेख किया था कि झण्डे का प्रयोग हज़रत इब्राहीम (अलै0) ने प्रारम्भ किया। उन्होंने हज़रत लूत (अलै0) को बचाने के लिए झण्डा लेकर चढ़ाई की और उनको बचाया जैसा कि मुसन्निफ इब्ने शैबा में है।

दूसरी बात मैंने यह कही थी कि झण्डे का प्रयोग हुज़ूर (सल्ल०) ने हर लड़ाई और जिहाद में विभिन्न आकार के छोटे और बड़े झण्डे का प्रयोग किया, और एक अवसर पर फ़रमाया:

"نحن احق با لوفاء منهم"

''हम मुशिरिकों की तुलना में वफ़ादारी के अधिक हक़दार हैं'' तो झण्डे से वफ़ादारी का क्या सम्बन्ध, जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़रमा रहे हैं कि यह वफ़ादारी की एक निशानी है। तो मेरी दलील यह है कि झण्डे को निशानी के रूप में अपनाया जा सकता है परन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि वह भारत में ही हो, कुवैत में भी हो सकता है, सऊदी अरब में भी हो सकता है कहीं भी हो सकता है।

तीसरी बात इसके अतिरिक्त यह है कि मौता की लड़ाई के अवसर पर हज़रत जाफ़र तय्यार के पवित्र हाथ कट गये, उसके बाद भी वह प्रयास करते रहे कि झण्डा ऊँचा रहे, यह ऊँचाई जो है इससे केवल मैने इस बात को तर्क बनाया कि यह इस बात की पहचान है कि झण्डे को निशानी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। मान लीजिए हमारे मंत्री मौजूद हैं वहाँ पर पाँच-दस हमारे मुस्लिम मंत्री बैठे हुए हैं। सब के सब तराने के समय खड़े हैं या झण्डा फ़हराने के समय खड़े होते हैं तो यदि मुस्लिम मंत्री नहीं खड़े होते हैं तो देश द्रोही समझे जायेंगे, इससे उनको सज़ा हो सकती है। इससे उनकी नागरिकता निरस्त हो सकती है तो क्या यह ख़तरा मोल लेकर फ़िक़्ह की दृष्टि से मुसलमान मंत्री के ऊपर यह अनिवार्य ठहराया जा सकता है कि वे झण्डे का सम्मान न करें बल्कि बैठे रहें, वहाँ पर विद्रोह का माहौल दिखायें? इस तरह समस्या का समाधान नहीं होता है बल्कि उलझता है, इसलिए मैं समझता हूँ कि समस्याओं को वर्तमान संदर्भ में समझना उचित है।

मौलाना बुरहानुद्दीन सम्भली:

मुझे केवल एक स्पष्टीकरण देना है न कोई बात न कोई टिप्पणी, इस समय इस्लामी झण्डे के सम्बन्ध में जो चर्चाएं हुई हैं उससे मुझे यह महसूस हुआ कि सलामी का अर्थ समझने में कुछ कमी रह गई है कि कुछ लोगों ने उसे कुफ़्र कह दिया या शिर्क कह दिया तो मैं चाहता हूँ कि हज़रत शाह वलीउल्लाह (रह0) ने इस सिलसिले में एक बहुत ही विवेकपूर्ण और बहुत ही सूक्ष्म अन्तर समझाया है उसे प्रस्तुत कर दूँ। इबादत और सम्मान के सिलसिले में आप लोग सुन लें और जिनको याद है वह ताज़ा कर लें, "इबादत चरम श्रेणी की दासता प्रकट करना है" यह है इबादत। और स्पष्ट है कि जिसके सामने अपने आपको बहुत ही निचले दर्जे का बना कर प्रस्तुत किया जाये तो वह बहुत ही आदरणीय होगा। और एक है बड़ाई स्वीकार करना, इसमें चरम श्रेणी की दासता प्रकट नहीं होती बल्कि मध्यम श्रेणी की दासता प्रकट होती है अर्थात हम जिसके सामने दासता को प्रकट करते हैं वह आदरणीय होता है मध्यम श्रेणी का। तो फ़रमाया कि चरम श्रेणी की दास्ता प्रकट करना जिसे कहते हैं वह अल्लाह के अतिरिक्त किसी के लिए वैध नहीं है। नबियों के बीच इसपर सर्व सम्मति रही है जिसे मध्यम श्रेणी का सम्मान कहते हैं वह अल्लाह के अतिरिक्त दूसरे के लिए हो सकता है और कभी कभी दोनों के दिखने में अन्तर नहीं होता है, नीयत के अनुसार अन्तर होता है। कभी कभी दिखने में अन्तर होता है जैसे अल्लाह के अतिरिक्त दूसरों के लिए सजदा करना। यह इस उम्मत के लिए दिखने में इबादत के लिए सीमित हो गया है अब अल्लाह के अतिरिक्त दूसरों को सजदा नहीं कर सकते। लेकिन हम नमाज़ में भी खड़े होते हैं। किसी व्यक्ति के लिए खड़े होने में चरम श्रेणी के आदर की कल्पना नहीं

होती, बल्कि मध्यम श्रेणी के आदर की कल्पना होती है, तो यह वैध होगा ऐसे सज्जनों के लिए भी, और ऐसी चीज़ों के लिए भी, जो पूर्ण रूप से आदर योग्य हैं। इस चर्चा में विचार करते समय यह ध्यान रहे कि आदर और चीज़ है, इबादत और चीज़ है। इबादत तो ग़ैर अल्लाह के लिए हराम है हाँ सम्मान के लिए जगह है।

अब यह चर्चा रह जायेगी कि हम लोग जो सलामी झण्डे को देते हैं वह झण्डा सम्मान योग्य है या नहीं? और सलामी का तरीक़ा इबादत वाला न हो। ग़ैर इबादत वाला हो, और ग़ैर इबादत वाले तरीक़े में इबादत के अतिरिक्त जो सम्मान होता है उसके शब्द आकृति और कर्म (अमल) में भी अन्तर होगा, कहीं नीयत से अन्तर होगा, बस मुझे इतनी बात प्रस्तुत करनी थी।

मौलाना अतीक़ अहमद बस्तवीः

अब मैं सभाध्यक्ष डा. ख़ालिद मज़्कूर साहब से निवेदन करता हूँ कि वह हम सबको इस चर्चा के विषय पर अपने मूल्यवान और मौलिक विचारों से सुशोभित करें जो हम सबके लिए इस दौर में लाभदायक हो सके और मार्ग द्वीप बन सके।

डा. ख़ालिद अब्दुल्लाह अल-मज़्कूरः

सज्जनों! मैं आप की चर्चा, वार्ता और बहुमूल्य विषयों, विशेष रूप से इस महत्वपूर्ण विषय का दिल की गहराइयों से सम्मान करता हूँ जिस पर हमने पिछली रात वार्ता की, और जिसकी एक कड़ी आज सवेरे की यह बहस भी है, और इसके अतिरिक्त जिस पर उर्दू और अरबी भाषाओं में कई बहुमूल्य लेख प्रस्तुत किये गये लेकिन समय की कमी के कारण इन तमाम

चर्चाओं पर विस्तृत बात-चीत न हो सकी, इस्लामी कान्फ्रेंस संगठन की आलमी फ़िक़्ह अकेडमी के साथ तमाम फ़िक़्ही अकेडमियों की यह विशेषता रही है कि इसमें विभिन्न बहुमूल्य और महत्वपूर्ण लेख प्रस्तुत किये जाते हैं लेकिन इसके लिए एक प्रस्तुत कर्त्ता की नियुक्ति की जाती है जो इन सारे लेखों और चर्चाओं का निचोड़ प्रस्तुत करता है, क्योंकि तमाम लेखों को प्रस्तुत करने और उनपर चर्चा के लिए समय नहीं होता है। इसलिए इन तमाम लेखों का निचोड़ तैयार किया जाता है और फिर चर्चा होती है।

आदरणीय भाइयो! वास्तविकता यह है कि सामूहिक इज्तिहाद की संस्थाएं, जिनमें आप की यह सम्मानित संस्था भी सम्मिलित है, की भारत के उलमा और वहाँ के बसने वालों के बीच बहुत महत्व है।

वास्तविकता यह है कि विभिन्न विषय जो सेमीनार के लिए निर्धारित किए जाते हैं विशेष रूप से वर्तमान काल और उसकी नये-नये, अन्वेषण, त्वरित विकास, मीडिया जिसने केवल पूरे विश्व को एक गांव में नहीं बदल दिया है बल्कि एक ऐसे घर जैसा बना दिया है जिसमें छोटे-छोटे कमरे हैं। इन तमाम चीज़ों पर सामूहिक इज्तिहाद की आवश्यकता है। इस इज्तिहाद का तरीक़ा भी वही है, अर्थात पवित्र कुरआन व सुन्नत की अन्तिम दलीलें, इसी प्रकार इज्तिहाद के विभिन्न माध्यमों में से उलमा व फ़ुक़्हा का इज्तिहाद भी है, चाहे वह रिवायती बुनियादों पर ही क्यों न हों। इस संदर्भ में क़ुरआन व हदीस के बाद आदरणीय फ़ुक़्हा के बनाए हुए शरीअत के नियम व सिद्धान्त और उसकी हैसियत भी वही हैं जो हदीस के आधार पर बनाऐ गये नियम व सिद्धान्तों की हैं क्योंकि यह भी वास्तव में कुरआन व हदीस से ही निकाले गये हैं। इसी प्रकार हम इस सम्बन्ध में इस ज़माने की

आवश्यकताओं के अनुसार बौद्धिक दलीलों का सहारा भी ले सकते हैं जिन्हें इस दौर के मुसलमान समझते हों।

हमारे उलमा-ए-सल्फ़ (पूर्वजों) ने अपने-अपने दौर में इज्तिहाद करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है और हर संभव समस्याओं में इज्तिहाद किया। लेकिन हर समय की कुछ नई चीज़ें और खोजें हुआ करती हैं। यह इस्लामी शरीअत की विशेषतायें और उसकी बुनियादी दलीलें (क़ुरआन व सुन्नत); नियमों व सिद्धान्तों की नरमी है जो हर समय और हर दौर की नज़ाकतों और हितों को ध्यान में रखती है। मगर शर्त यह है कि वह अन्तिम दलीलों और अन्तिम सबूतों से टकराती न हों।

हमारी इस चर्चा की बैठक और कल और आज की बात का निचोड़ भी उप महाद्वीप में घटित होने वाली घटनाओं और कष्टों का विश्लेषण करना है, लगभग यही स्थिति उत्तरी अमेरिका और यूरोप की है, जब वहाँ मेरा सफ़र होता है तो मैं वहाँ भी यही सवाल रखता हूँ और विभिन्न समस्याओं पर सोचने और समझने का पर्याप्त अवसर मिलता है फिर मैं कह रहा हूँ कि इस तरह की समस्याओं में इज्तिहाद की कड़ी आवश्यकता है। पक्ष में विपक्ष में, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों तरह की दलीलें मौजूद हैं। स्पष्ट है जब तक इज्तिहाद जारी रहेगा हर तरह की दलीलें प्रस्तुत की जायेंगी, और विचारों में मतभेद होते रहेंगे। हर मुज्तहिद का एक विचार हुआ करेगा लेकिन हम इस इज्तिहाद के कारण आपसी मतभेद, रंजिश, अपनी बड़ाई जताना, नाराज़गी आदि के शिकार न हों। बल्कि वास्तव में यह एक प्रयास होता है। यदि कोई व्यक्ति हितों, अन्तिम दलीलों एवं शरअी नियमों व सिद्धान्तों को समझने और उनके बीच एकता पैदा करने की क्षमता रखता

है तो वह कोई प्रश्न (समस्या) बयान करता है । मुझे आशा है कि ड्राफ्टिंग कमेटी जब इस सेमीनार के प्रस्तावों को तैयार करेगी तो उसमें हितों, अन्तिम दलीलों, शरई नियमों व सिद्धान्तों तीनों को ध्यान में रखेगी और जब आप लेखों के निचोड़ का अध्ययन करेंगे तो उसे-ज्ञान का भण्डार पायेंगे। हम अरब के लोगों को जिनकी भाषा में कुरआन अवतरित हुआ, और जिनकी नस्ल में अन्तिम नबी (सल्ल०) आये, हम इस समय भारतीय उलमा की अधिक आवश्यकता महसूस करते हैं। हम ग़ैर अरब उलमा के अधिक ज़रूरतमंद हैं जिन्होंने इमाम बुखारी से लेकर वर्तमान के उलमा, भारत, उज़बकिस्तान "ما وراء النهر" के फुक़्हा ने महान सेवाएं की हैं। फ़िक़्ह की किताबें लिखी, हदीस की व्याख्या क़ुरआन की तफ़्सीर, इन्हीं ग़ैर अरब उलमा की लिखीं हुई हैं। हमें चाहिए कि इनसे बिना किसी भेद भाव के लाभान्वित हों, क्योंकि इस्लाम तक़्वा (अल्लाह का डर) के अतिरिक्त अरब वालों और अजम वालों के बीच किसी आधार पर भेद भाव नहीं करता। जब हम इस मैदान में उतर रहे हैं तो यह मत समझिये कि मैं आपसे आगे निकल जाउँगा, बल्कि आप हमसे बहुत आगे हैं।

निश्चित रूप से इस समय आप ऐसे महाद्वीप में हैं जहां ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक हैं। वास्तव में मैं एक निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता हूँ जब मैं कुवैत के एक क्षेत्र में गया तो वहाँ एक अनोखा दृश्य देखने में आया। मैं चकित रह गया कि वह बोहरा मुसलमानों का एक गिरोह जिनकी संख्या लगभग 12 हज़ार है जैसा कि मेरे मित्र बदरुल-क़ासमी ने बताया कि जब उनका कोई सरदार, पता नहीं उन्हें क्या कहा जाता है, आये तो वे लोग अच्छे ढंग से एक चौड़े मैदान में एक क़तार में खड़े हो गये, उनका पहनावा एक,

उनके मर्द और औरत सब के सब एक क्रम (तरतीब) और व्यवस्था में प्यार, मुहब्बत, सहयोग, भाई चारा, रिश्ते-नातें की भावना से वशीभूत होते हैं, सब के सब मेहनती होते हैं और हर तरह के भेद भाव से दूर रहते हैं, हम मुस्लिम अल्पसंख्यक ग़ैर इस्लामी देशों में एकता व सहयोग, आपसी सम्बन्धों को स्थापित करने के अधिक योग्य हैं। और हमारे आंशिक मत भेद इसमें आड़े न आयें। हर मुज्तहिद का अपना विचार होता है, हमें चाहिए कि ऐसे सामूहिक नियम व सिद्धान्त निर्धारित करें जो मिल्लत के सामने आने वाले ख़तरों का सामना करें, और मीडिया की तरफ़ से ख़तरनाक हमले जो हमारे घरों को सामाजिक और शैक्षिक रूप से नष्ट कर रहे हैं, इन जैसी दूसरी अन्य समस्याओं के लिए एकता पैदा कर सकें।

जब आप बड़ी बड़ी समस्याओं का समाधान करने के लिए उठ खड़े होंगे और इस सम्बन्ध में एकता व सहयोग का प्रदर्शन करेंगे तो उनमें मौजूद छोटे-छोटे मतभेद इन्शा अल्लाह स्वयं मिट जायेंगे और हम इनके अनुकूल व प्रतिकूल दोनों पहुलुओं को सामने रखेंगे तो मतभेद की संभावनाएं कम हो जायेंगी।

क्या ही अच्छा होता कि उपमहाद्वीप जिसका स्वयं एक ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक और आर्थिक महत्व है और उसका राजनीतिक क्षेत्र में अपना एक प्रभाव है, जहाँ मुसलमान सबसे बड़ा अल्पसंख्य गिरोह हैं, उनके यहाँ भी इसी प्रकार की एकता सहमति, व्यवस्था, संगठन और तरतीब पाई जाये, चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्र में हो ताकि वे इन क्षेत्रों में अपनी अच्छी छाप छोड़ सकें, और यही मेरी पूरी वार्ता कि यह निचोड़ है की उम्मत बड़ी-बड़ी समस्यायें और महत्वपूर्ण राजनीतिक और

सामाजिक मामलों को हल करने पर सहमत हो जाये। इस सम्बन्ध में मीडिया जिसने पूरी दुनिया को एक गॉव बल्कि एक परिवार में बदल दिया है की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इस तरह की बैठकें, इन्टरनेट, सेटेलाइट चैनल और टेलीफ़ोन से बात-चीत के माध्यम से आयोजित की जा सकती हैं। इस तरह वर्ष में एक बार मिलने की बजाये प्रतिदिन विचार विमर्श का अवसर मिलेगा और यही मेरे कहने का उद्देश्य है।

और इसी की तरफ़ मैं लोगों को बुलाता हूँ, वे समस्यायें जिनका उल्लेख लेखों और चर्चाओं में किया गया है और जिनमें मुज्तहिदीन में आपस में मतभेद होता है, यह मानव प्रकृति है, हमारे पुरखों के बीच मतभेद पाया जाता है, सहाबा किराम के बीच हुज़ुर (सल्ल०) के समय में मतभेद पाया गया तो हमारे बीच इज्तिहादी मतभेद पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इससे यह मालूम हुआ कि सामूहिक इज्तिहाद और सामूहिक इज्तिहाद की संस्थाएं, वास्तव में समय की अवश्यकता हैं, ताकि मुसलमान इस सिलसिले में सहमत हो सकें। बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि हम उम्मत की महत्वपूर्ण और बड़ी समस्याओं को वरीयता दें, और उन मामलों की तरफ़ ध्यान दें जिनका उम्मत सामना कर रही है। इन जैसी आंशिक समस्याओं को इन्शाअल्लाह (यदि अल्लाह चाहे) छोटे-छोटे सिम्पोज़ियम और चर्चा कार्यक्रमों के माध्यम से समाधान ढूंडा जा सकता है जिसमें कुछ उलमा अपने विचार प्रस्तुत करेंगे, फिर उसका प्रस्ताव तैयार किया जायेगा।

इसी तरह इस्लामिक फ़िक्ह अकेडमी को चाहिए कि वह फ़ुक्हा के साथ हर मैदान के विशेषज्ञों अर्थात मेडीकल, प्रशिक्षण, राजनीति, अर्थशास्त्र

आदि के विशेषज्ञों को भी सम्मिलित करें, क्योंकि यही विशेषज्ञ समस्याओं की वास्तविकता और महत्व को स्पष्ट करेंगे और फ़ुक़हा उन समस्याओं पर प्रकाश डालेंगे और उनके आदेश बतायेंगे। भारत के उलमा दुनिया भर में हर क्षेत्र में अपने ज्ञान की पूर्णता के कारण जाने जाते हैं, मैं यह चाहता हूँ कि इस अकेडमी से ऐसे विशेषज्ञ सम्बद्ध रहें जो हर उस क्षेत्र में कमाल (पूर्णता) रखते हों, जिनपर अकेडमी सेमीनार किया करती है, जब वित्त (Finance) पर बात करें तो उस क्षेत्र के विशेषज्ञ मौजूद हों, मेडीकल साईंस पर बात करें तो मेडीकल साईंस के विशेषज्ञ मौजूद हों और जब प्रशिक्षण पर बात करें तों प्रशिक्षण के विशेषज्ञ मौजूद हों, और इस तरह हम महत्वपूर्ण समस्याओं और पहले से मौजूद अनुभव दोनों को एक साथ एकत्र कर पायेंगे।

अल्लाह से दुआ है कि वह हमें और आपको अपनी ख़ुशी के लिए अमल करने की तौफ़ीक़ दे और हम सब के बीच एकता और सहमति पैदा कर दे और वही हर चीज़ के लिए सक्षम है।

☆☆☆